रचना-संदर्भ : कथा-भाषा

पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु'



प्रतिभा प्रकाशन

होशियारपुर-146001

प्रथम संस्करण : 1989

मूल्य : साठ रुपये

प्रकाशक : प्रतिभा प्रकाशन
11/22 टैगोर नगर,
होशियारपुर-146001 (पंजाब)

मुद्रक : मानस प्रिंटिंग प्रेस, 9/4753,
पुराना सीलमपुर, दिल्ली-110031

RACHANA SANDARBH : KATHA BHASHA
by Pandey Shashi Bhooshan 'Shitanshu' Rs. 60.00

समर्पण

विचार और उसके कार्यान्वयन
के बीच
कड़ी का
काम करने वाली
शक्तिरूपा
कर्म-संगिनी
के लिए
पहली प्रति !

भूमिका

'रचना-सन्दर्भ और कथा-भाषा' कथा-लेखन के संदर्भ में एक ओर कथा-भाषा की पहचान की सैद्धान्तिकी को निरूपित करती है, तो दूसरी ओर इस सैद्धान्तिकी के आलोक में कुछ कथाकृतियों, कुछ कथाकारों और विधा-शेप के रूप में नयी कहानी की भाषा का विवेचन प्रस्तुत करती है।

विवेच्य कृति की सैद्धान्तिकी में कथा-भाषा के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए भाषा के सौन्दर्यात्मक प्रकार्य के अन्तर्गत क्रियाशील रहने वाली अप्रस्तुति का विवेचन किया गया है तथा इसके तकनीकी पक्ष को यथासंभव लचीलापन देते हुए 'गोदान', 'मैला आंचल', 'अलग-अलग वैतरणी' जैसी कृतियों में लगातार सर्जनात्मकता की टकराहट की गूंज-अनुगूंज को सुना गया है। कहना न होगा कि इन तीनों ही कृतियों के संदर्भ में प्रोक्ति-स्तर पर विशेष ध्यान देते हुए कथा-भाषा का रेखांकन किया गया है। 'गोदान' और 'वैतरणी' के भाषिक संदर्भ में भाषिक वैशिष्ट्य को उजागर करने का प्रयास अधिक रहा है, पर 'मैला आंचल' के संदर्भ में पूरी कथाकृति की निर्वचनात्मकता को कथा-भाषा के विश्लेषण के जरिये उद्घाटित करने की चेष्टा की गई है। अज्ञेय और हजारी प्रसाद द्विवेदी को कथा-भाषा के संदर्भ में उनकी भाषिक शैली के वैशिष्ट्य की पहचान कराई गई है तथा उनकी भाषिक सजगता, सूक्ष्मता और अर्थगर्भिता की चेतना को स्पष्ट किया गया है। नई कहानी की भाषा पर विचार करते हुए भाषा के विभिन्न स्तरों पर नये कहानीकारों के द्वारा किये गये प्रयोगों को उपलब्धि के आधार पर मूल्यांकित किया गया है। यद्यपि यह पहचान भाषा के विविध स्तरों के आधार पर की गई है तथापि इसमें भाषा के शैलीगत वैशिष्ट्य को प्रमुखता दी गयी है।

'रचना-संदर्भ और कथा-भाषा' के सभी आलेख, शोध-पत्रों और पत्रिकाओं में पूर्व प्रकाशित हैं। 'गोदान-विषयक निबंध' का एक भाग 'शैवाल' (अमृतसर) *तथा दूसरा भाग 'कथाकार प्रेमचन्द' (सम्पादक: राम दरश मिश्र) में प्रकाशित* है। 'अलग-अलग वैतरणी' की कथाभाषा से संबद्ध आलेख कल्पना (हैदराबाद) 1972 के अंक में प्रकाशित हुआ था। 'मैला-आंचल' विषयक निबंध 'प्राधिकृत'

अमृतसर, 1984 के प्रवेशांक में प्रकाशित हुआ था। 'अज्ञेय की कथाभाषा' विश्वनाथ प्रसाद द्वारा सम्पादित 'अज्ञेय' (दिल्ली : नेशनल) में संकलित है। यह आलेख सबसे पहले भागलपुर विश्वविद्यालय की 'शोध पत्रिका' (1972) में छपा था। 'हजारी प्रसाद द्विवेदी की कथा-भाषा' शीर्षक आलेख सबसे बाद का आलेख है, जो 1986 के मार्च महीने में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की संगोष्ठी में पढ़ा गया था।

आज कथाभाषा-विषयक एक संक्षिप्त सैद्धान्तिकी के साथ इन सारे अनुप्रायोगिक अंशों को पाठकों के हाथों में सौंपते हुए मुझे प्रसन्नता हो रही है, क्योंकि इन सारे ही निबंधों का चिन्तन-मनन कथाभाषा की गतानुगति की पहचान वाली परम्परा से बहुत अलग-थलग है, जो कथाभाषा की पहचान के विकसित हो रहे स्वरूप को हमारे सामने प्रस्तुत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। मेरा विश्वास है कि इन निबंधों से रचना, रचनाकार और विधा के विषय में भाषिक पहचान कर पाने की नयी लीक बन सकेगी।

इस पुस्तक के प्रकाशन के अवसर पर मैं अपनी जीवन-संगिनी के प्रति हार्दिक आभार ज्ञापित करता हूं, जिन्होंने अपनी गृह-अवस्था में मुझे लिखने-पढ़ने की पूरी सुविधा प्रदान कर रखी है। इस पुस्तक की पाण्डुलिपि को तैयार करने में मुझे सुश्री रजनी बाला ने जो आत्मीय और महत्वपूर्ण सहयोग दिया है, उसके लिए मैं उसके उज्ज्वल भविष्य की हार्दिक शुभकामना करता हूं। वह मुझे अपनी ज्येष्ठ पुत्री पिंकी का रूपान्तरण ही लगती है। प्रतिभा प्रकाशन, होशियारपुर के श्री मदन तायर ने इसे जिस तत्परता, व्यवस्था एवं सुरुचिपूर्णता के साथ शीघ्र प्रकाशित करने का साहस दिखलाया है, इसके लिए मैं श्री तायर को हार्दिक धन्यवाद ज्ञापित करता हूं।

—पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु'

टीचर्स फ्लैट-12,
विश्वविद्यालय-परिसर,
अमृतसर-143005

विषय-सूची

रचना-संदर्भ । कथा-भाषा

रचनात्मक संदर्भ में कथाभाषा का क्या स्वरूप है और इसका अभिज्ञान किस तरह किया जाना चाहिए, यह मीमांसा का विषय है। सर्जक साहित्यकार सर्जना के क्षणों में मन में घुमड़ते हुए संवेदन-आवेगों को संवेदन की प्रकृति और मन के अनुरूप विधा-विशेष में अभिव्यंजित करता है। सभी अभिव्यंजित रचना कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, ललित निबंध जैसे अलग-अलग काव्य-रूपों का स्वरूप ग्रहण कर पाती है।

यहां पहला प्रश्न यह उभरता है कि क्या सर्जनात्मक भाषा की प्रकृति-पहचान के लिए विधा की भिन्नता विचारणीय है अथवा सभी विधाओं में सर्जनात्मक साहित्य की भाषिक प्रकृति, इसका विधान, इसका शिल्पन एक जैसा ही होता है। कहना न होगा कि सामान्य भाषा को विशिष्टता देते हुए ही सर्जनात्मक भाषा अपने को स्वरूपित करती है और उसकी यह विशिष्टता सभी विधाओं में उपस्थित होती है। हां, इसमें अनुपात का अन्तर अवश्य होता है। किन्तु कहीं कुछ ऐसा है जो विधा और विधा की भिन्नता, निजता-निहंगता के आधार पर भी सर्जनात्मक भाषा को अलगाता है और इसके स्वरूप-वैभिन्य को हमारे सामने उपस्थित करता है। इस प्रश्न से आंखें बचाना सही नहीं होगा, क्योंकि यह प्रश्न समीचीन तौर पर अपना उत्तर मांगता है। जहां सभी विधाओं में सर्जनात्मक भाषा की प्रकृति की एक जैसी विशिष्टता परिलक्षित की जा सकती है, वहीं विधागत अन्तर के कारण इसकी प्रकृति-परक विलक्षणता, व्यवच्छेदकता को भी रेखांकित किया जा सकता है।

सर्जनात्मक भाषा की पहचान के संदर्भ में प्रायः विश्व साहित्य में सबसे पहले काव्य-भाषा को उदाहृत किया जाता है। प्रश्न है कि काव्य-भाषा और कथाभाषा की प्रकृति में क्या अंतर है? भाषा के प्रकार्यों की बात करने वाले भाषाविदों ने भाषा के कई प्रकार के प्रकार्य माने हैं। सर्जनात्मक भाषा की विशिष्टता को पहचानने के लिए भाषा की इस प्रकार्यमूलता का ज्ञान अपेक्षित है। मेलिनोवस्की ने सबसे पहले भाषा के दो प्रकार के प्रकार्यों की बात की थी— 1. तथ्यात्मक (Pragmatic) 2. जादुई। (Magical) । इसके बाद कार्ल बूहलर ने भाषा के तीन प्रकार्यों का निर्देश किया—

1. निर्देशात्मक (Representational) प्रकार्य, 2. अभिव्यंजनात्मक (Expressive) प्रकार्य और 3. इच्छात्मक (Conative) प्रकार्य। मुकारोवस्की वह पहला व्यक्ति था जिसने भाषा के चौथे प्रकार्य की बात करते हुए सौन्दर्यात्मक प्रकार्य (Aesthetic Function) को रेखांकित किया। कहना होगा कि यह सौन्दर्यात्मक प्रकार्य ही सर्जनात्मकता का प्राणधर्म है। बिना इसके सर्जनात्मक भाषा का विन्यास नहीं हो सकता। भाषा के प्रकार्यों की बात करते हुए यह बताया गया है कि भाषा का पहला प्रकार्य सूचनात्मक (Informative) है, जिसे अभिधेयात्मक (Denotative) भी कहते हैं। जैसे—'आज बाजार में आग लग गई।' इस वाक्य में भाषा का सूचनात्मक-अभिधेयात्मक प्रकार्य काम कर रहा है। भाषा का दूसरा प्रकार्य इच्छात्मक (Conative) प्रकार्य है। इच्छात्मक प्रकार्य दो रूपों में सामने आता है। एक ओर इसमें निवेदन के स्वर मुखर होते हैं, तो दूसरी ओर आदेश के स्वर। 'आप कृपया शांत रहें' और 'चुप रहो' जैसे वाक्य क्रमश: निवेदन और आदेश के उदाहरण हैं। दैनिक जीवन में भाषा के इस प्रकार्य का अधिकाधिक उपयोग होता है। भाषा का तीसरा प्रकार्य अभिव्यंजनात्मक (Expressive) है। इसमें किसी कथन पर बल देने के लिए भावावेशवश शब्दों अथवा वाक्यों को दोहराया जाता है। जैसे—'राम सिमिर, राम सिमिर, राम सिमिर, राम रे' अथवा 'विहग-विहग फिर चहक उठे ये कुंज-कुंज/ कलकूजित कर उर का निकुंज। चिर सुभग-सुभग।' भाषा का चौथा प्रकार्य सम्पर्क-सामाजिक (Phatic) प्रकार्य है। इस प्रकार्य में टेलीफोन पर की जाने वाली बातचीत—'हां जी, हां जी' अथवा 'हैलो-हैलो' कहना, अचानक आपस में मिलते हुए एक-दूसरे को नमस्कार निवेदित करना, अभिवादन देना, दुआ-सलाम करना आदि सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त रेल में या बस में यात्रा करते हुए पास बैठे अपरिचित यात्री से मौसम के विषय में बात करना भी सम्पर्क-सामाजिक प्रकार्य के अन्तर्गत आता है। भाषा का पांचवां प्रकार्य अधिभाषात्मक (Maya-Linguistics) है। इस प्रकार्य में भाषा जो कहती है, उसे ग्रहण नहीं कर भाषा जो व्यंजित करती है, उसे ग्रहण किया जाता है। दैनिक जीवन में भाषा के ये सारे प्रकार्य भाषा के सामान्य प्रकार के बतौर रूपायित होते हैं, किन्तु भाषा का एक प्रकार्य वह है जो सामान्य भाषा के प्रकार्य की प्रकृति को या तो बाधित कर देता है अथवा इस पर अतिरिक्त नियम का आरोपण कर देता है। यह प्रकार्य ही भाषा का सौन्दर्यात्मक प्रकार्य है। 'विचलन' और 'समांतरता' जैसे अभिलक्षण भाषा के इस सौन्दर्यात्मक प्रकार्य में समाहित हो जाते हैं। भारत में भरत से लेकर आनंदवर्धनाचार्य तक जितने आचार्यों ने रस, अलंकार, रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि, औचित्य जैसे सिद्धांतों और सम्प्रदायों का उल्लेख किया है तथा काव्य की शब्द-शक्तियों के साथ गुण, दोष आदि की जो व्यापक चर्चा की है एवं पश्चिम में अरस्तू से लेकर अद्यतन

आलोचक तक ने सर्जनात्मक भाषा की विशेषता की पहचान के लिए जिन-जिन अभिलक्षणों का निर्देश किया है, उन सबका समाहार भाषा के 'सौन्दर्यात्मक प्रकार्य, के अन्तर्गत हो जाता है। इस मीमांसा से यह स्पष्ट हो जाता है कि जब आधार भाषा भाषा के सौन्दर्येतर प्रकार्य के साथ-साथ सौन्दर्यात्मक प्रकार्य का निरूपण करती है तब सर्जनात्मक भाषा उत्पन्न होती है। इस निरूपण की प्रकृति कुछ इस तरह की होती है, जिसमें आधार भाषा के सामान्य प्रकार्य तो पृष्ठभूमि में चले जाते हैं और विशिष्ट प्रकार्य अग्रप्रस्तुत हो उठते हैं।

रामस्वरूप चतुर्वेदी 'समकालीन यथार्थ और कथाभाषा की समस्याएँ' शीर्षक अपने आलेख में 'वाक्य-विन्यास' की जिस विविधता का निर्देश करते हैं तथा 'एक राजा था' जैसे वाक्य के जिस अनेक वाक्य-रचनात्मक विकल्प को दर्शाते हैं, उसके मूल में भाषा को सौन्दर्यात्मक प्रकार्य ही क्रियाशील दीखता है, चाहे वाक्य संरचनात्मक वैविध्य का संदर्भ हो, चाहे वाक्य-विन्यास से क्रिया के हर जाने का प्रसंग। दोनों ही स्थलों पर भाषा के सौन्दर्यात्मक प्रकार्य का 'विचलन' नामक अभिलक्षण क्रियाशील होता है, जहाँ वर्णन की मिट्टी को छोड़कर अनुभव वाली पानी की भाषा सक्रिय हो पाती है। वर्णन-प्रधान ठोस गद्य मे चाहे बिम्बों का प्रयोग किया जाए या अर्थ की गूंज-अनुगूंज उत्पन्न करने वाली भंगिमा का, आधार-भाषा की सपाटता के जरिये भाषा की सजग चेतना कभी सक्रिय नही हो सकती। इसके लिए भाषा की सर्जनात्मकता का चेक भाषा-वद् मुकारोवस्की द्वारा निर्दिष्ट सौन्दर्यात्मक प्रकार्य वाला अग्रप्रस्तुतीकरण अपेक्षित होता है।

.. प्रश्न यह है कि कथाभाषा के संदर्भ में भाषिक सर्जनात्मकता की आखिर कौन-सी कसौटी सामने लायी जाये, जिससे काव्यभाषा से कथा-भाषा का आनुपातिक अंतर स्वरूपित-निरूपित हो सके। रामस्वरूप चतुर्वेदी का विचार है कि भाषिक सर्जनात्मकता की कोई तराजू नही होने पर भी कहा जा सकता है कि 'उपन्यास की भाषा ऐसी हो, जो कविता की सघन सर्जनात्मक भाषा और गद्य की सामान्य वर्णन-प्रधान भाषा के बीच में हो।' (समकालीन यथार्थ और कथाभाषा की समस्याएँ, सामाजिक यथार्थ और कथाभाषा, सम्पादक-सच्चिदानंद वात्स्यायन, दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1986, पृष्ठ 40)। चतुर्वेदी जी अज्ञेय के विचारों से अभिप्रेरित हैं। स्वयं अज्ञेय कथाभाषा के संदर्भ में अनुपात का ऐसा ही दृष्टिकोण रखते हैं। उनके शब्दों में 'एक मिश्र रूपक का सहारा लें तो कह सकते हैं कि साधारण व्यवहार में आदमी ठोस धरती पर चल रहा होता है, उपन्यास में वह हवा में उछलता भी रहता है लेकिन कविता मे आकर वह एक साथ नभचर, जलचर और थलचर हो जाता है। ठोस धरती पर चलते हुए वह साथ-साथ समुद्र में तैरता भी चलता है। बल्कि कभी-कभी

अथाह सागर में गोते भी लगाता चलता है।' (अज्ञेय : सर्जना और संदर्भ, दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, 1985, पृष्ठ 348)

कथाभाषा के लिए यह नुक्ता भी विचार का माना गया है कि बताना और सम्प्रेषित करना—ये दो अलग-अलग प्रक्रियायें हैं और कथाभाषा बताती नहीं, सम्प्रेषित करती है। पर इस सम्प्रेषणशीलता के लिए भी भाषा के सौन्दर्यात्मक प्रकार्य को ही ग्रहण किया जाएगा। यह रचनाकार के अनुभव-सामर्थ्य और उसकी संवेदन-क्षमता पर निर्भर है कि जो भाषा उसे प्राप्त हुई है, उस भाषा की परत-दर-परत को वह कैसे छीलता, उघाड़ता और प्रस्तुत करता है। हिन्दी में कथाभाषा की परम्परा बहुत पुरानी नहीं है। इसलिए भी इस भाषा को संवेदना के अनुरूप सम्प्राप्त करने और स्वरूपित करने की समस्या अधिक है। यथार्थ के साथ जो उसकी टकराहट है, वह टकराहट भी संवेदना के आधार पर ही इसे महत्ता प्रदान करती है। इसीलिए सामान्य कथाभाषा की तरह कभी एकरेखीयता पर नहीं चलती, बल्कि वह वक्रता और आवृत्ति के जरिये अपनी संवेदना को रूप-रंग प्रदान करती है। पर ऐसा करना भी तभी संभव हो पाता है जब भाषा के अन्य प्रकार्यों के अतिरिक्त हम सौन्दर्यात्मक प्रकार्य से भी काम लेने लग जाते हैं। पर यहां यह बात स्मरण रखने की है कि कथाभाषा में जो सौन्दर्यात्मक प्रकार्य क्रियाशील होता है, उसे सहज-स्वाभाविक रूप में उभरना चाहिए। गोविन्द मिश्र जब यह कहते हैं कि, 'अर्थ उन्हें ऐसे स्वाभाविक ढंग से मिला, जैसे बच्चे को बोलना आ जाता है या चिड़िया को उड़ना, जबकि सामाजिक यथार्थ जैसे शब्द कमरे के भीतर तैयार किये गये हैं, जैसे छुपकर हथियार बनाये जाते हैं' तब अप्रस्तुति की साभिप्रायता की स्वभाविकता हमारे सामने उभर आती है। लेखक चाहे भाषा का जैसा प्रयोग करे किन्तु उसे सर्जनात्मक बनाने के लिए अप्रस्तुति का होना आवश्यक है। भाषा चाहे नदी की तरह प्रवाहित हो रही हो या नहर की तरह, वह झील की तरह हो या सरोवर की तरह, वह भीतर की ओर मुड़ी हो या बाहर का निरूपण करने वाली हो, पर कथाभाषा में हर-कहीं उसकी इस रहस्यात्मक अप्रस्तुति वाली शक्ति की पहचान हमें करनी पड़ेगी।

अप्रस्तुति के संदर्भ में कथाभाषा प्रोक्ति के स्तर पर सर्वाधिक अप्रस्तुत होती है। कोई पूरा विवरण, कोई पूरी घटना, कोई पूरा दृश्य, कोई पूरी भंगिमा, कोई पूरी, शृंखला, अर्थ-गूंज कथाभाषा में पूरे पाठ के संदर्भ में प्रोक्ति-स्तर पर सौन्दर्यात्मक प्रकार्य उपस्थित करती अप्रस्तुत हो जाती है। भले ही इसके मूल में प्रतीकात्मकता हो या सांकेतिकता, बिम्बात्मकता हो या भाषिक प्रयोगशीलता पर होता यह भाषा का सौन्दर्यात्मक प्रकार्य ही है।

कथाभाषा के स्वरूप-निरूपण पर प्रो० काफ० निजाम ने नई कथा के

संदर्भ में व्याकरणिकता को रेखांकित करने का प्रयास किया है तथा यह दिखाया है कि किस तरह कथाभाषा में गौण माने जाने वाले रूप स्तर पर भी विचलन कथाभाषा का प्राण-तत्त्व बनकर उपस्थित होता है। मांटो की कहानी 'खोल दो' की पंक्तियों को निजाम ने उद्धृत किया है, 'गोरा रंग है और बहुत खूबसूरत है···मुझ पर नहीं, अपनी मां पर थी···उम्र सत्रह वर्ष के करीब है ···।' यहां द्रष्टव्य है कि पहला वाक्य 'है' पर समाप्त होता है, वाक्यांश भी और तीसरा वाक्य भी; लेकिन बीच का वाक्य 'थी' पर पूरा होता है, यह भूतकाल को निरूपित करने वाला है। यहां क्रियात्मक रूपिम का विपथन (Deflection) व्याकरण की भूल नहीं है, बल्कि साभिप्राय तौर पर सिराजुद्दीन की मनःस्थिति का द्योतक है। जो कुछ सामने है, उसमें सकीना की मृत्यु संभव है। इसीलिए 'थी' का प्रयोग साभिप्राय है, लेकिन मन चाहता है कि इसे जीवित रहना चाहिए। इसलिए 'है' का प्रयोग साभिप्राय रूप में उभरता है। इस तरह 'है' के प्रयोग के बीच रूप-स्तर का यह विपथन अप्रस्तुत होकर भाषा के सौन्दर्यात्मक प्रकार्य को उपस्थित करता है, जिससे यहां कथाभाषा सार्थकता और साभिप्रायता प्राप्त कर लेती है।

कथाभाषा को सहज-सरल रखने के आग्रह के मूल में समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से पाठक और गृहीता का संदर्भ सामने आता है। यहां कथाकार पाठक-निर्माण की चेतना अनुप्राणित दीखता है। हिन्दी-कथाभाषा के निर्माण में पाठक को प्रशिक्षित करते चलने का ऐसा प्रयास एक ओर अज्ञेय की कथाभाषा में प्राप्त होता है, तो दूसरी ओर हजारी प्रसाद द्विवेदी की कथाभाषा में। किंतु यह प्रयास ऐसा नहीं है, जो भाषा के सौन्दर्यात्मक प्रकार्य को झटके देकर अलग छोड़ दे और केवल पाठक-निर्माण की चेतना के आधार पर कथाभाषा को सामान्य-सहज बना दे।

कथाभाषा में स्थल-तत्त्व और कालतत्त्व को निरूपित करने का अच्छा अवकाश होता है। काल और स्थल के नुक्ते भी यथार्थ के आयाम ही हैं। समय-तत्त्व की प्रखर चेतना भाषिक अभिव्यक्ति के जरिये समय की एक-एक सांस की जीती-जागती पहचान कराती है और स्थल तत्त्व स्थानीय रंगत को उपस्थापित करता है। दोनों को ही कथाभाषा संवेदनशील यथार्थ के रूप में निरूपित करने में अधिक समर्थ होती है। देश और काल के साथ चरित्र का संयोग होता है। कथाभाषा में विशेष देश और विशेष काल की संदर्भिता में विशेष पात्र भी आते हैं। ये पात्र विशेष देश-काल के अनुरूप भाषा का प्रयोग तो करते ही हैं, पर उसके अतिरिक्त अपनी विशिष्ट भाषा का प्रयोग कर सकने के लिए स्वतंत्र भी होते हैं। इस प्रक्रिया में भी भाषा का सौन्दर्यात्मक प्रकार्य क्रियाशील होता है। पर यहां यह द्रष्टव्य है कि कथाभाषा में रूपकात्मकता की

जगह संसर्गमूला लाक्षणिकता का अधिक प्रयोग होता है। याकोब्सन ने इसी को 'मेटानिमिक' भाषा के रूप में देखा है। यहां कथाभाषा और काव्य-भाषा के बीच परस्पर सम्पर्कन होता चलता है और सम्पर्कन में एक तनाव की सृष्टि भी होती है। कथाभाषा परस्पर के इस तनाव से बहुत-कुछ प्राप्त करती है।

कथाभाषा में यथार्थ का ही एक और आयाम कूट-भाषा (Code Language) या प्रति भाषा (Anti Language) का रचाव है। कथाभाषा मे जहाँ संदर्भवश कूट भाषा की पूरी गुंजायश होती है वहीं प्रति-समाज में जीने वाले अपराधकर्मियों की प्रति-भाषा भी कथात्मक यथार्थ की अभिव्यक्ति-संभावना को उजागर करती है। पर यह भाषा भी विचलन या विपथन के रूप में ही कथा-भाषा में उपस्थित होती है। यथार्थ के नाम पर यह भी दर्शनीय होता है कि कथाभाषा जिस कलाकृति को स्वरूपित करती है, उसमें 'मॉनूमेंट' के अतिरिक्त 'डाक्यूमेंट्स' के कौन-कौन से अंश उपस्थित हैं। इस प्रलेखीकरण को भी यथार्थ के नाम पर ही निरूपित और उद्घाटित किया जाता है। यह प्रलेखीकरण तब सामान्य होता है जब कथाभाषा इसे पाठ की पृष्ठ-प्रस्तुति में उपस्थित करती है, किन्तु यह तब अधिक सार्थक, गहन और महत्त्वपूर्ण बनकर सामने आता है जब कथाभाषा मे यह अप्रस्तुत हो उठता है। यानी यहां भी भाषा के सौन्दर्यात्मक प्रकार्य से मुक्ति सम्भव नही है। कथाभाषा की एक विशेषता स्मृति की श्रृंखला भी है, जिसके सहारे वह स्मृति का संशोधन, सम्पादन, नवीकरण, आदि करती रहती है। इससे एक ऐतिहासिक क्रमिकता तो बनती ही है, पर बड़ी बात यह कि स्मृति-कथा में कथारस उपस्थित करती है, जिससे पाठक का आत्मीय लगाव बन पाता है।

इस प्रकार संवेदना और यथार्थ—दोनों के आंतरिक और बाह्य पहलुओं पर विचार करने के बाद केवल यह तथ्य शेष बच जाता है कि कथा-भाषा अप्रस्तुति के सहारे ही अपने मर्म का रूपायन करती है। निश्चय ही यह रूपायन संरचना और प्रोक्ति के स्तर पर सर्वाधिक होता है, इसके बाद वाक्य, शब्द और अर्थ के घटक-तत्त्वों के आधार पर। अतः कथाभाषा की पहचान भाषा के सौन्दर्यात्मक प्रकार्य—अर्थात् अप्रस्तुति के आधार पर की जानी चाहिए।

जिस कथाभाषा में भाषा के सौन्दर्यात्मक प्रकार्य अथवा अप्रस्तुति-करण का निर्वाह नहीं होता है, उस कथा में साभिप्राय तौर पर कुछ भी कहने को नहीं हुआ करता है। जिस कथा का ताना-बाना जितना सार्थक और महत्त्वपूर्ण होगा, उसके भाषिक विन्यास मे सौन्दर्यात्मक प्रकार्य का महत्त्व उतना ही अधिक होगा। यहाँ यह तथ्य स्पष्ट हो जाना चाहिए कि भाषा के दूसरे प्रकार्य भी अपनी भूमिका

बदलकर सौन्दर्यात्मक प्रकार्य के रूप में उपस्थित हो सकते हैं तथा यह भी वि सौन्दर्यात्मक रूप मे अग्र-प्रस्तुति के विचलन, विपथन, समांतरता और विरलता जैसे अभिकरण दोहरी भूमिकाओं मे उपस्थित हो सकते हैं, जिससे कभी विचलित समांतरता या समांतरित विचलन, विचलित विपथन या विपथित विचलन की स्थिति सामने आ सकती है। वस्तुतः अब कथाभाषा पर विचार करना ऐसे नये दृष्टिकोण से ही संभव है, केवल शब्दों की जाति-प्रजाति और भाषा-विज्ञान के यांत्रिक वर्गीकरण के आधार पर कथाभाषा की न तो सार्थक शैलीमापकमी पहचान की जा सकती है और न उसका निर्वचनात्मक उद्‌घाटन ही किया जा सकता है।

एम० ए० के० हैलीडे ने भाषिक प्रकार्यों का उल्लेख अपने ढंग से किया है। उसके अनुसार भाषिक प्रकार्य तीन होते हैं—1. विचारात्मक (Ideational) 2. अन्तर-वैयक्तिक (Inter-personal) और 3. पाठात्मक। वह पुनः इन तीनों प्रकार्यों के दो-दो उपभेद करता है। विचारात्मक के क्रमशः 1. आनुभविक (Experiential) और 2. तार्किक (Logical) प्रकार्य होते हैं। अन्तर-वैयक्तिक के क्रमशः 1. वक्ता और श्रोता विषयक अभिवृत्ति (Attitude of speaker) और 2. वाचिक प्रकार्य (Spoken Function) जैसे दो उपभेद होते हैं तथा पाठात्मक प्रकार्य के—1. सूचनात्मक प्रकार्य और कथ्यात्मक प्रकार्य जैसे दो भेद निर्दिष्ट किए जाते हैं। हैलीडे के द्वारा निर्दिष्ट जो भाषिक प्रकार्य हैं, उससे विधा की प्रकृति भी स्पष्ट होती है। हैलीडे जिस अन्तर-वैयक्तिक प्रकार्य का उल्लेख करते हैं, वह प्रकार्य सर्वाधिक रूप में नाटक में देखने को मिलता है। इसके बाद यह अंतर-वैयक्तिक प्रकार्य प्रायः प्राप्त नहीं हो पाता है। यहां भाषिक सघनता की गुंजायश अत्यधिक होती है। दूसरे शब्दो मे सौन्दर्यात्मक प्रकार्य वहां सर्वातिशयी रूप में क्रियाशील होता है, किन्तु जैसे-जैसे भाषा का अंतर-वैयक्तिक प्रकार्य सामने आने लगता है वैसे-वैसे सौन्दर्यात्मक प्रकार्य की सघनता कम होने लग जाती है।

कथा की प्रकृति को देखते हुए अक्सर लोगों ने यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि इस विधा मे रचनाकार अधिकाधिक तौर पर सामाजिक सरोकार को पेश करता है। इसलिए इस भाषा मे समाज-भाषा के विभिन्न स्तर और उसके वैभिन्न्य के अनेक प्ररूप हमे देखने को प्राप्त होते हैं। इसलिए कथा-भाषा में जहां एक ओर मार्जित, परिष्कृत आधार-भाषा का निर्वाह सर्जक-कथाकार करना चाहता है, वहीं दूसरी ओर उसे वैयक्तिक-भाषा (Idiolect), वर्ग भाषा (Class-Language), विभाषा (Dialect) आंचलिक भाषा (Regional/I cal colour), कूट भाषा (Code-Language), प्रति भाषा (Anti-Language) प्रयुक्ति-भाषा (Register) के निर्वाह के भी अनेकानेक

उदाहरण प्राप्त होते हैं। कथा-भाषा का आयाम बहुमुख और व्यापक होता है। भाषा के कई प्रकार के स्तर उसके भीतर समाहित हो जाते हैं। विधा की दृष्टि से कथा-साहित्य को 'प्रोटीन फॉर्म' माना गया है। इसका आशय इस विधा के बहुरूपियापन से है। इस कारण इसके अन्तर्गत कई और विधाओं का सहज समावेश संभव होता है। अपनी इस समाहारी प्रकृति के कारण कथाभाषा में पत्र की भाषा, डायरी की भाषा, जीवनवृत्त की भाषा, संस्मरण की भाषा, यात्रावृत्त की भाषा, निबन्ध की भाषा, व्याख्यान की भाषा, अर्जी की भाषा, दवा का नुस्खा बनाने की भाषा, एलान की और घोषणा की भाषा, न्यायाधीश के निर्णय की भाषा, सबका सहज समावेश हो जाता है।

मिखाइल बख्तिन ने अपने आलेख 'The verbal Texture of the novel' में लिखा है कि किसी भी कथा-साहित्य की संघटना में बुनियादी प्रारूपों को शैलिकीय दृष्टि से निम्नलिखित रूपों में रेखांकित किया जा सकता है—1. रचनाकार की तात्कालिक साहित्यिक कथात्मकता, जो असंख्य विविधताओं में प्रस्तुत होती है। 2. दैनंदिन जीवन की वाचिक कथात्मकता के विविध रूपों का शैलीकरण, जो विविध रूपों में प्रस्तुत होता है। 3. प्रतिदिन के पत्र, डायरी जैसे आलेख का अर्ध-साहित्यिक रूपों में शैलीकरण, 4. रचनाकार की कला-इतर साहित्यिक भाषा का आचार-शास्त्रीय, दार्शनिक, वैज्ञानिक, तार्किक, भाषण-शास्त्रीय, नृजाति-विज्ञानपरक, सूचनात्मक आदि रूपों मे वैविध्यपूर्ण उपस्थापन और 5. कहानी में आने वाले पात्रों की भाषा का व्यक्तिपरक निरूपण। (मिखाइल बख्तिन; 'The verbal Texture of the novel', एस्थेटिक्स ऐंड द डेवलपमेंट ऑफ लिटरेचर, सोशल साइंसिज टुडे, मस्कवा, 1980, पृष्ठ 78)

बख्तिन की मान्यता है कि कथा-साहित्य वह विधा है, जिसमे सामाजिक वैविध्य के सर्वाधिक निरूपण की गुंजाइश होती है। इसके साथ ही इसमें वैयक्तिक वाणी के वैविध्य को भी स्वरूपित करने की संभावना निहित होती है। इसीलिए यह विधा किसी भी राष्ट्रभाषा के आंतरिक स्तरीकरण के आधार पर सामाजिक बोलियों, वर्ग-व्यवहारों, पीढ़ी की भाषाओं अवस्था भेद की भाषाओं, परम्परागत भाषाओं या अधिकारियों की भाषाओं, विशेष वृत्त की भाषाओं, समाज-राजनीतिक दिनों और यहां तक कि घंटों की भाषाओं, प्रतिदिन की नारेबाजी की भाषाओं को अपनी आंतरिक संघटना में नियोजित करती है। यह सारा-कुछ उपन्यास जैसी विधा के लिए अनिवार्य तौर पर पूर्वापेक्षित होता है, जिससे इसकी ऐतिहासिक अस्मिता हमारे सामने आती है। इस भाषा के सामाजिक वैविध्य और वैयक्तिक स्वरों के द्वारा ही उपन्यास कथ्य-बिन्दु को सही गूंज दे पाता है। इससे ही इसके द्वारा निरूप्य वस्तुओं और विचारों का स्वर अभिव्यंजित हो पाता है।

कथाभाषा में कुछ और चीजें भी दर्शनीय होती हैं। इसमें एक ओर तो रचनाकार की भाषा का ब्यौरा होता है, जिसे दूसरे शब्दों मे उपन्यास से व्यवहृत भाषा-वैविध्य के रूप में देखा जाता है, दूसरी ओर इसमे एक साथ उभरने वाली कुछ ऐसी शैलियाँ भी सामने आती हैं, जिन्हें समग्र उपन्यास की शैली मे रेखांकित किया जा सकता है। विधा एक होने के बावजूद कृति की विशिष्ट प्रकृति के कारण भी कथाभाषा की प्रकृति में अंतर आ सकता है।

कथाभाषा का सम्बन्ध एक ओर संवेदना से बिठाया जाता है और दूसरी ओर जीवन-जगत् के यथार्थ से। यह जीवन-जगत् का यथार्थ तथ्य के जरिये सत्य के संधान में सहायक होता है। इसके लिए पश्चिमी विचारकों ने Versimilitude जैसे अभिलक्षण की चर्चा की है, जिसके जरिए यथार्थ की पहचान की जा सकती है। पर कथा-साहित्य में जो यथार्थ प्रस्तुत किया जाता है, वह इतना सुव्यवस्थित होता है कि वह घटना के एक-एक खाके को हमारे सामने पेश कर देता है, जिससे जगह के साथ-साथ लोक-सीमा, संदर्भ, प्रतिभागी, पर्यवेक्षक—सबकी पहचान संभव हो पाती है 'Versimilitude' निकट तौर पर यथार्थ के दूसरे पहलू से जुड़ा हुआ है। जिसे 'Cradibili y' भी कहा जाता है। कोई भी कथा-साहित्य उस सीमा तक Cradible होता है जितना यह ओवरलैप कर सकता है अथवा यह हमारे यथार्थ का वास्तविक मॉडेल का Plausible विस्तार होता है।

कथा-भाषा का यथार्थ बिल्कुल वही यथार्थ नही होता, जो दुनियावी जिन्दगी मे पाया जाता है। दुनियावी जिन्दगी का यथार्थ, यथार्थ संख्या दो है। साहित्य-सृजन में यथार्थ-संख्या, एक यथार्थ-संख्या दो में रूपांतरित हो जाती है, पर यह रूपांतरण किसके सहारे होता है? कहना न होगा कि इस प्रक्रिया मे तकनीक के साथ-साथ भाषा का सौन्दर्यात्मक प्रकार्य क्रियाशील होता है। तकनीक मे एक ओर अवास्तव को वास्तव में रूपांतरित करने वाले फंतासी जैसी तकनीक कथा-भाषा में उपस्थित होती है जिसके मूल में मेनिप्पिय क्रियाशील होती है, तो दूसरी ओर यह तकनीक व्यंग्य के रूप में भी सामने आती है। यह सही है कि कथा का विन्यास यथार्थ घटनाओं से होता है। पर यथार्थ घटनाएं मर्जनात्मक रूप ग्रहण करती हैं और इस प्रक्रिया मे भाषा का सौन्दर्यात्मक प्रकार्य संवेदना से एकतान होकर हमारे सामने आने लगता है। इसीलिए कथाभाषा की पहचान न तो केवल व्याकरण के आधार पर की जा सकती है, और न भाषाविज्ञान के घटक-तत्त्वों के आधार पर। स्थूल व्याकरण संवेदना को पकड़ नही पाता और निरा भाषा विज्ञान आधार-भाषा की प्रकृति को तो स्पष्ट कर सकता है, किन्तु रचना-विशेष मे जिस ऊर्जा, आवेग और भंगिमा की क्रियाशीलता प्राप्त होती है, उसे वह उद्घाटित नही कर सकता। कथा अपने-आप मे एक समग्र संरचना होती है।

इसकी सम्यक् पहचान के लिए प्रोक्ति की अवधारणा के परिज्ञान और भाषा के सौन्दर्यात्मक प्रकार्य के अभिकरणों का ज्ञान अपेक्षित होता है। विधा के रूप में एक गीत की भाषा की पहचान जिस रूप में की जा सकती है, कथा की भाषा की पहचान उससे काफी अलग रूप में दरकार होती है। गीत में वस्तु की संरचना पर प्रकाश डालना अपेक्षित नहीं होता। इसके मूल में केन्द्रक शब्द होता है किंतु कथा का केन्द्रक 'प्रोक्ति' बनती है। अतः इसकी वस्तु-संरचना का परिज्ञान अपेक्षित होता है। यहाँ प्रोक्ति क्रियाशील होती है। इसलिए कथाभाषा की पहचान भाषिक स्तर के आधार पर विशेष रूप में प्रोक्ति की क्रियाशीलता की पहचान कर पाने की है। प्रोक्ति अपने-आप में वाक्य की वह सुविन्यस्त तार्किक शृंखला है जिसमें एक ऐसा पूर्ण कथन प्रस्तुत होता है, जिसका अपना संदर्भ होता है।

यदि आज बिखरे हुए,ढेर सारे सिद्धान्तों के बीच से कथाभाषा की बुनियादी पहचान के लिए कुछ संघटनात्मक अभिलक्षणों की बात करनी पड़े तो हमें उन बुनियादी सूत्रों की ओर ध्यान देना होगा जो हर सिद्धान्त के मूल में रूपान्तरित होकर भी अवश्य सक्रिय दीखते हैं। इस दृष्टि से चेक भाषाविद् मुकारोवस्की का सौन्दर्यात्मक प्रकार्य वाला अप्रप्रस्तुति सिद्धान्त ही वह महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है, जिसके आधार पर कथाभाषा की सार्थक पहचान की जा सकती है। अप्रप्रस्तुति के चारों अभिलक्षणों—1. विचलन, 2. विपथन, 3. समान्तरता और 4. विरलता—के आधार पर अर्थ, प्रोक्ति, वाक्य, शब्द जैसे भाषिक स्तरों पर सामान्यतः कथाभाषा की पहचान सरलता से की जा सकती है। कथाभाषा की इस पहचान-प्रक्रिया में प्रोक्ति की सोद्देश्यता का विशेष महत्त्व है, क्योंकि यदि कथाभाषा का अध्ययन 'शैली-मापक्रमी' (Stylometric) प्रकृति का होगा तो इसमें केवल भाषिक वैशिष्ट्य का उल्लेख करना अपेक्षित होगा; पर यदि अध्ययन का संकल्प विशेष पाठ या कथाकृति की सार्थकता, साभिप्रायता को उन्मीलित करना होगा तो कथाभाषा के अध्ययन की प्रकृति को निर्वचनात्मक होना होगा, जिससे इसमें निहित मर्म की पड़ताल की जा सके। यद्यपि ऐसा मानने के कई खतरे भी हैं कि किसी एक सिद्धान्त के आधार पर कथाभाषा की पहचान की जा सकती है। पर यदि बुनियादी तौर पर कथाभाषा के संघटक तत्त्वों को मूलभूत अभिलक्षणों में समेट लिया जाए तो ऐसे खतरों से बचा जा सकता है। कहना न होगा कि अप्रप्रस्तुति के आधार पर कथाभाषा के इन मूलभूत सूत्रों की पहचान सहजता से की जा सकती है।

'अप्रप्रस्तुति' अपने चार अवयवों या अभिकरणों के सहारे स्वरूपित होती है: 1. विचलन (डिविएशन), 2. विपथन (डि-फेमिलियराइजेशन), 3. समांतरता (पेरेलेलिज़्म) और 4. विरलता (रेयरनेस)। इनमें 'विचलन' और 'समांतरता'

'अग्रप्रस्तुति' के पूर्व-स्वीकृत अभिकरण हैं और इनका पूर्व विवेचन प्राप्त होता है।

साहित्य की भाषा सामान्य भाषा से दो अनिवार्य रूपों में अपने को विलगाती है। एक ओर यह नियमन या मानक से उन्मुक्तता की मांग करती है, दूसरी ओर यह अतिरिक्त नियमन से लैस होकर चलती है। एक में अनियमितता है, तो दूसरे में अतिरिक्त नियमितता। पहला 'विचलन' है और दूसरा 'समांतरता'। 'विचलन' में सामान्य गद्य-भाषा के मानक (नार्म) से अतिक्रमण होता है। यह अतिक्रमण अव्याकरणिकता (अनग्रामेटिकेलिटी) और अस्वीकार्यता (अन-ऐक्सेप्टिबिलिटी) जैसी दो दिशाओं में होता है। पहली दिशा में ध्वनि, शब्द, रूप, वाक्य, वाक्यातीत या प्रोक्ति जैसे स्तर क्रियाशील होते हैं, तो दूसरी दिशा में अर्थ-स्तर सक्रिय होता है।

'समांतरता' में समता और विरोध की दो दिशाएं खुलती हैं। विविध प्रकारों की आवृत्ति-निर्भर समांतरता और विरोधी समांतरता। 'समांतरता' की इन दोनों ही दिशाओं में भाषा के सभी स्तर क्रियाशील होते हैं। रोमन याकोब्सन (रोमन याकोब्सन, 'ग्रामेटिकल ऐंड इट्स रशऐसट'—लैंग्वेज 42, 1966, पृष्ठ 399-422) और एस० आर० लिविन (एस० आर० लिविन, लिंग्विस्टिक स्ट्रक्चर्स इन पोयट्री, पेरिस : मूतन, 1962 पंचम मुद्रण, 1967, पृष्ठ 19-41) ने 'समांतरता' पर अच्छी तरह विचार किया है।

'विपथन' (डि-फ्लेक्शन) की मूल धारणा भी अतिक्रमण को लेकर चलती है। पर यह अतिक्रमण रचनाकार के निजी भाषा-प्रयोग के मानक से होता है। जब रचनाकार अपने द्वारा स्वीकृत और सुस्थिर एक मानक की प्रत्याशा से अतिक्रमण कर जाता है और इसके समांतर या विरोध में दूसरे मानक को उपस्थित करता है तब वहां 'विपथन' होता है। यहां अतिक्रमण की यह प्रक्रिया विचलन के समांतर ही चलती है, पर विचलन की पृष्ठभूमि में जहां गद्य-भाषा का उस भाषाभाषी समुदाय के द्वारा परम्परित-स्वीकृति मानक होता है, वहां 'विपथन' की पृष्ठभूमि में उस व्यापक मानक के भीतर रचनाकार का निजी मानक होता है, जिसे प्रायिकता या बारम्बारता की प्रत्याशित पद्धति के रूप में देखा जाता है। इस रूप में 'विपथन' (डिफ्लेक्शन) रचनाकार द्वारा सहज स्वीकृत प्रायिकता की प्रत्याशित पद्धति से अतिक्रमण है। (एम० ए० के० हैलीडे, 'लिंग्विस्टिक फंक्शन ऐंड लिटरेरी स्टाइल : ए सिम्पोजियम, सम्पा० सेमूर चैटमैन, लंदन : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1971, पृष्ठ 340)

यद्यपि पाठ की 'भाषिक प्रमुखता' या 'अग्रप्रस्तुति' अर्थ से जुड़कर कभी 'विचलन' के सहारे उपस्थित होती है तो कभी 'विपथन' के सहारे और

कभी 'समांतरता' के सहारे, किन्तु कृति अथवा पाठ में कभी-कभी ऐसी स्थिति भी उत्पन्न होती है जब वहां न तो 'विचलन' होता है, न ही 'विपथन' और न ही 'समांतरता', फिर भी शब्द प्रमुख होकर हमारा ध्यान आकर्षित करते हुए अग्र-प्रस्तुत हो जाते हैं। वस्तुतः ऐसे शब्द उन्मीलक शब्द (की-वर्ड) होते हैं, जो कृति अथवा पाठ की गहन संरचना से जुड़कर अर्थवत्ता का संचालन करते हैं। इनके हाथ में कृति अथवा पाठ के कथ्य का नियंत्रण-सूत्र होता है। कृति अथवा पाठ में शब्द-प्रयोगों की प्रायः दो कोटियां की गई हैं—1. प्रतिपाद्य शब्द (थीम-वर्ड) और 2. उन्मीलक शब्द (की-वर्ड)। प्रतिपाद्य शब्द किसी कृति अथवा पाठ में अनेकशः आवृत्त होते हैं। (पी० गैरो० 1954, उद्धृत.निल्स एरिक एंक्विस्ट, लिंग्विस्टिक स्टायलिस्टिक्स, पेरिस : मूतन, 1973, पृष्ठ 132)। इसके विपरीत उन्मीलक शब्द के प्रयोग विरल होते हैं। 'प्रतिपाद्य शब्द' की क्रियाशीलता को सदैव समांतरता के अभिकरण के सहारे रेखांकित किया जाता है, किन्तु 'उन्मीलक' शब्द को सदैव 'विचलन' के सहारे रेखांकित नहीं किया जा सकता। यदि अव्याकरणिकता और अस्वीकार्यता उसके मूल में नहीं है, तो 'विचलन' नहीं होगा और यदि यह रचनाकार की 'प्रायिक प्रत्याशित पद्धति' के समनुरूप है तो 'विपथन' भी नहीं होगा। दूसरे शब्दों में विरलता का अभिकरण निम्नलिखित 'अवयव-भूतार्थता' (Componentiality) को प्रस्तुत करता है—

—अव्याकरणिकता
—अस्वीकार्यता
—समांतरता
—लेखकीय विरलता
—प्रायिक प्रत्याशा
—गहन संरचना

ऐसे में यहां प्रमुखता शुद्ध रूप से 'विरलता' (रेयरनेस) पर आधारित होगी। 'विरलता' ही यहां 'अग्रप्रस्तुति' का अभिकरण बनेगी। मुझे ऐसा लगता है कि 'विचलन' की अवधारणा को इतनी व्यापकता देना, जिससे 'विपथन' और 'विरलता' को (सांख्यिकीय तुलनात्मक विभेदकता के आधार पर) उसके अन्तर्गत कर लिया जाये, उचित नहीं है, क्योंकि ये दोनों अवधारणाएं उसके प्रभेद रूप में स्वरूपित नहीं होकर उसके समांतर चलती हैं। तुलनात्मक विभेदकता एक ही रचनाकार की कृतियों के संदर्भ में 'विचलन' के रूप में उपस्थित न होकर 'विपथन' के रूप में उपस्थित होती है और कई रचनाकारों की कृतियों के संदर्भ में उनके अलग-अलग शैलीपरक अभिलक्षण का चिह्न बनकर 'विपथन' के रूप में क्रियाशील होती है। तुलनात्मक विभेदकता व्याकरणिक शब्द-रूप—संज्ञा, क्रिया,

विशेषण, क्रियाविशेषण आदि को तो रेखांकित कर सकती है, किन्तु शब्द विशेष को नहीं। एक तथ्य यह है कि किसी विरल शब्द-प्रयोग की पृष्ठभूमि में लेखकीय प्रायिक प्रत्याशा से अतिक्रमण हुआ ही हो, यह आवश्यक नहीं है। दूसरे, किसी भी रचना में इकहरे या विरल प्रयोग वाले अनेक संज्ञा या विशेषण आदि शब्द हो सकते हैं, पर उनमें साभिप्राय या गहन संरचना से जुड़े शब्द एक-दो ही मिलेंगे। अतः सारे संज्ञा, विशेषण जैसे शब्दों को रेखांकित कर भी अभीष्ट साभिप्रायता वाले शब्द को अलग से रेखांकित नहीं किया जा सकता है, जो वस्तुतः अप्रस्तुत होते हैं। जहां तक कई रचनाकारों की कृतियों मे इसके सहारे विभेदकता को स्पष्ट करते हुए शैलिकीय अभिलक्षण को रेखांकित करने का प्रश्न है वहां विभेदक शैली-तत्त्व तो सचमुच स्पष्ट हो सकते हैं परन्तु विचलन का वहां कोई अस्तित्व नहीं होगा, क्योंकि विचलन सदैव ज्ञात मानक से ही होता है और ऐसा अधिक सम्भव है कि एक रचनाकार ने दूसरे रचनाकार की कृतियों को पढ़कर अपने शैलिकीय अभिलक्षण नहीं अलगाये हों। हिन्दी मे तो चतुरसेन शास्त्री ने किसी दूसरे हिन्दी उपन्यासकार-कहानीकार की कोई भी पुस्तक नहीं पढ़ी थी यहां तक कि 'गोदान' भी नहीं पढ़ा था। फिर उनके और प्रेमचन्द के शैलिकीय तत्त्वों मे तुलनात्मक विभेदकता विचलन-प्रसूत शैली को कैसे रेखांकित कर सकती है ? स्पष्ट है कि सोपाधिक या सापेक्ष रूप में भी मानक की स्थापना सभी स्थलों पर नहीं की जा सकती है। तुलनात्मक विभेदकता और विवेच्य 'विरलता' का एक बड़ा अन्तर इनके अनुप्रयोगी सोपान (एप्लिकेशन-स्केल) और प्रकार्यात्मक सोद्देश्यता का भी है। तुलनात्मक विभेदकता की सोद्देश्यता 'स्टाइलोमीट्रिक' होने की है, जिसे 'ऐट्रीब्यूटिव' कहा जाता है, जबकि सर्जनात्मक काव्य भाषा में अप्रस्तुति के अभिकरण के रूप में 'विरलता' की विशेषता उसके 'स्टायलिस्टिक' होने में है, जिसे 'इंटरप्रेटिव' कहा जाता है।

'विरलता' में केवल न्यूनतम व्यवहृत भाषिक एकक अर्थात् एक भाषिक एकक का रेखांकन होता है। सांख्यिकीय गणना से अधिकतम, मध्यम और न्यूनतम सबका रेखांकन संभव है। यहा अधिकतम प्रयोग समांतरता को उपस्थित करता है। सांख्यिकीय गणना में सभी स्तरों पर साभिप्रायता या प्रयोजनशीलता अनिवार्य तौर पर उपस्थित नहीं हो पाती पर 'विरलता में साभिप्रायता या प्रयोजनशीलता अनिवार्य है। इसीलिए गहन संरचना मे जुड़कर ही 'विरलता' अप्रस्तुत हो पाती है। रेनेवेलेक की यह मान्यता भी कि 'प्रायः बहुतेरे सामान्य स्थलों पर सर्वाधिक सामान्य भाषिक तत्त्व भी साहित्य की संरचना के संघटक रूप में सामने आते हैं', (रेनेवेलेक, क्लोजिंग स्टेटमेंट) रेट्रोस्पेक्ट्स ऐंड प्रोस्पेक्टस फ्रॉम द विउ पोइंट अव लिटरेरी क्रिटिसिज्म तथा स्टाइल इन लैंग्वेज सम्पा० टी० ए० सिबियोक (कैम्ब्रिज : मास : एम० आई० टी० प्रेस, 1960, पृष्ठ

417-18) किसी ऐसे अ-समांतरित, अ-विचलित और अ-विपथित, सामान्य अभिकरण का संकेत करती है, जो गहन संरचना से जुड़ा हुआ हो।

इस प्रकार रचना-संदर्भ मे कथाभाषा का मर्म अग्रप्रस्तुति की अवधारणा में निहित है। कथाभाषा के विचारकों के लिए यह बिन्दु महत्त्वपूर्ण रूप में विचारणीय है।

कथा-भाषा : रचना का सन्दर्भ

1. गोदान
2. मैला आँचल
3. अलग-अलग वैतरणी

'गोदान' की कथा-भाषा

प्रेमचन्द : प्रोक्ति-भाषा के अत्यंत जागरूक कथाकार :

हिन्दी में प्रेमचन्द प्रोक्ति-भाषा के अत्यंत जागरूक कथाकार हैं। उनका कथा- साहित्य भाषा के नजरिये से संवेदनशील यथार्थता का साहित्य है। उर्दू से हिन्दी में आने के कारण उनके आरंभिक उपन्यासों में यद्यपि कुछ कठिन उर्दू की झाँकियाँ भी जगह-जगह देखने को मिलती हैं, पर 'गोदान' तक आते-आते उनकी उपन्यास-भाषा इस दृष्टि से काफी दूर तक संयमित और सुव्यवस्थित हो जाती है। जीवन-यथार्थ की पकड़ के मायने में वे बड़े संवेदनशील कथाकार हैं। बोलचाल की सादगी से भरे हिन्दी गद्य को प्रवाह देने, जीवन की नाना मुद्रात्मक और विविध कथ्यात्मक अभिव्यक्ति से भरी हिन्दी के सहज-संप्रेष्य राष्ट्रभाषा-रूप का रचाव करने और एक स्तरीय, उन्नत कथाभाषा का स्वभाव निश्चित करने की दृष्टि से प्रेमचन्द की भाषिक शक्ति-क्षमता का महत्व हिन्दी-साहित्य में स्थायी है। उन्होंने हिन्दी कथा-साहित्य को जो भाषा मुहैया की है, उसकी सभी सर्जनात्मक संभावनाओं का स्वयं अपने साहित्य में सार्थक प्रयोग-उपयोग भी कर लिया है। 'गोदान' में उनकी यह कथा-भाषा कथ्य की ऋद्धि से कला की सिद्धि तक की भाषा बन गई है। उन्होंने संवेदनशीलता, स्थितिगत 'वास्तव' की समझ, भाषा और समाज के अन्योन्य संबन्ध की चेतना, शब्दार्थ-सजगता और विचलन तथा समांतरता जैसे कलात्मक कौशल के सहारे अपनी कथा-भाषा का विन्यास किया है।

संवेदनशीलता :

प्रेमचन्द भाषा के मायने में बहुत संवेदनशील कथाकार हैं। आँखों की भाषा की प्रेमचन्द को बड़ी पहचान है। कहीं उनका रचनाकार ईर्ष्या-भरी आँखों की भाषा (गोदान, पृष्ठ-19) को सामने लाता है, तो कहीं आँखों में रस भर कर कहने की भाषा (पृष्ठ-33) का प्रत्यक्ष कराता है, कहीं मर्म-भरी आँखों से देखने में—'अब तुम काहे को कभी यहाँ आओगे' (पृष्ठ 45) की वाचकता स्पष्ट होती है, तो कहीं सदय भाव से उसकी ओर ताकने का अर्थ

'कितना भोला है, समझता ही नहीं' (पृष्ठ 46) निकलने लगता है। 'गोदान' मे कही मधुर नेत्रों से देखने की 'इसका आशय तुम खूब समझते हो, इतने बुद्धू नहीं हो' (पृष्ठ78) की भाषा व्यक्त होती दीखती है, तो कही अपील-भरी आँखों से देखने की भाषा बोलती है, 'सुनते हो होरी इनकी बातें, अब मेरा दोष नहीं, मैं बिना बैल लिये न जाऊँगा' (पृष्ठ 148)और कही सजल आँसें मानो कह रही हैं 'इस ऐश्वर्य और विलास के बीच भी यह नारी-हृदय कितना दुखी है' (पृष्ठ-190)। इस कृति मे होरी के सजल नेत्रो की भाषा है—'पगली है और क्या, अब न जाने कौन-सा सुख देखने के लिए मुझे जिलाये रखना चाहती है' (पृष्ठ 196), तो मालती की बड़ी-बड़ी आंखों की तरेर (पृष्ठ 229) दया या रोष करने की शक्ति जाहिर करती है। सिलिया की आँसू-भरी आंखों में तेज-भरी झलक की भाषा है (पृष्ट 240), तो वही मातादीन द्वारा सिलिया को रक्त-भरे नेत्रो से देखे जाने वाली क्रुद्ध भाषा भी है (पृष्ट 240) और सिलिया की करुण आँखों से मुखर यह भाषा भी कि 'यहाँ निर्दयी कौन नहीं है दादा, मैंने तो किसी को दयावान नहीं पाया' (पृष्ठ 242)। होरी सजल नेत्रों से दुलारी के पाव पकड़ता है (पृष्ठ 245), सोना के नेत्र सजल हैं (पृष्ठ 245)। होरी और धनिया की आँखो की भाषा से विस्मय, कृतज्ञता, संदेह और लज्जा के उद्गार (पृष्ठ 249) भी उभर कर सामने आते हैं। इसी प्रकार मालती और मेहता के बीच परीक्षा और प्रेम की आँखों की देखनहार भाषा का अन्तर भी प्राप्त होता है। (पृष्ठ 297) प्रेमचन्द के यहाँ राय साहब की सतृष्ण हिंसा की आँखों से शत्रु को देखने वाली भाषा भी है (पृष्ठ 303)। 'गोदान' के अन्त में धनिया हीरा को तिरस्कार की आँखों से देखती है, जो आँखों की भाषा का अद्भुत उदाहरण है—'अपने पति के प्रति जो उसका कर्म है क्या वह उसको बताना पड़ेगा ?' (पृष्ठ 343)। धनिया और होरी की सांकेतिक भाषा तो 'गोदान' में अभिव्यक्ति की पूरी सफलता बन गई है। प्रेमचन्द इस भाषा को शब्द देते हैं, "दो दिन गुजर गये और इस मामले पर उन लोगों मे कोई बातचीत नहीं हुई। हाँ, दोनों सांकेतिक भाषा में बातें करते थे। धनिया कहती, 'वर कन्या जोड़ के हों तभी ब्याह का आनन्द है। होरी जवाब देता ब्याह आनंद का नाम नहीं पगली, यह तपस्या है" (पृष्ठ 333)।

स्थितिगत वास्तव की समझ :

'गोदान' मे प्रेमचन्द ने स्थितियों की सही समझ को व्यक्त करने वाली प्रोक्ति-भाषा का महत्वपूर्ण व्यवहार किया है। इसमें उन्हें सफलता भी प्राप्त हुई है। वस्तुतः एक उपन्यास की रचना करना मूलतः उस सही भाषा का इस्तेमाल

करना है, जिसमें उपन्यास की सामग्री रची जा सके।'[1] इस दृष्टि से 'गोदान' की प्रोक्तियों को लिया जा सकता है, जिनके अतर्गत पात्रों के संलाप से लेकर लेखकीय दृष्टिकोण, अभिव्यक्ति, परिवेश और स्थितियों तक की भाषिक पहचान और परख सम्मिलित है।

'गोदान' में पूँजी अथवा धन को नयी सभ्यता का आधार मानते हुए प्रेमचन्द ने लिखा है—'इस नई सभ्यता का आधार धन है, विद्या और सेवा और कुल और जाति सब धन के सामने हेय हैं। कभी-कभी इतिहास मे ऐसे अवसर आ जाते हैं, जब धन को आन्दोलन के सामने नीचा देखना पड़ता है, मगर इसे अपवाद समझिए।' (137) स्थितियो की पहचान वाली इस भाषा से न केवल 'गोदान' में, बल्कि हिंदी उपन्यास मे सोच-विचार की भाषा की शुरुआत होने लगती है।

इसी प्रकार ऊपर से पड़ने वाले दबावों के कारण निरन्तर कुचले जा रहे न्याय के विषय मे प्रेमचन्द का यह कथन कि—'ऊपर से दबाव पड़ेगा। राजनीति के सामने न्याय को कौन पूछता है। उसे फांसी देते हुए सरकार भी सोच-विचार करेगी' (70) समकालीन भारतीय स्थिति को बड़ी बेबाकी से उजागर कर देता है।

भारतीय किसान की चाहत और उसकी स्थिति का जो परिचय प्रेमचन्द 'गोदान' में अपनी बेबाक भाषिक अभिव्यक्ति के सहारे प्रस्तुत करते हैं, उसके मूल मे भी स्थितियों की सही समझ काम करती होती है—'हम राज नही चाहते, भोग-विलास नही चाहते, खाली मोटा-झोटा पहनना और मोटा-झोटा खाना और मरजाद के साथ रहना चाहते है और वह भी नही सधता।'(174) कहना न होगा कि इतनी बेबाक भाषा संस्कारो की पर्तो को चीरकर गांवों और किसानो के बीच से ही निकाली जा पायी है।

यही प्रेमचन्द ने भारतीय जनता की स्थिति और अभिव्यक्ति को भी रेखांकित किया है, जहाँ वह किसी भी संदर्भ में नेतृत्व लेने से घबराती और पीछे भागती है। स्थितियों के वास्तव का एक छोर यह भी है। होरी के विषय मे वे लिखते हैं—'होरी मालिक के पास जाने को तैयार हुआ। लेकिन फिर सोचा, उन्होने कारकुन को एक बार जो हुकम दे दिया उसे क्यों टालने लगे वह अगुवा बन कर क्यों बुरा बने ? जब और कोई कुछ नही बोलता, तो वही आग में क्यों कूदे ? जो सबके सिर पड़ेगी, वह भी झेल लेगा।' (98)

दुनियादारी की जिस भयकर समझ को प्रेमचन्द 'गोदान' की कथा-भाषा

---

1. मार्गरेट मेक्डोनल्ड, 'लैंग्वेज ऑव फिक्शन', पर्सपेक्टिव ऑन फ़िक्शन, सम्पा० जेम्स एल० केल्डरवुड एंड हेराल्ड ई० टालियर (लंडन : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1965), पृष्ठ 65

में अभिव्यक्त करते हैं, वह तथ्य-भाषा इतनी सच बनकर सामने आती है कि समकालीनता भी उसे नकार नहीं सकती—'झींगुरी सिंह जोर से हंसा, तुम क्या कहते हो पंडित ? क्या तब संसार बदल जाएगा ? कानून और न्याय उसका है जिसके पास पैसा है। कानून तो है कि महाजन किसी असामी के साथ कड़ाई न करे, कोई जिमींदार किसी काश्तकार पर सख्ती न करे, मगर होता क्या है। रोज ही देखते हो जिमींदार मुसक बंधवाकर पिटवाता है और महाजन लात और जूते से बात करता है। जो किसान पोढ़ा है उसे न जिमींदार बोलता है न महाजन' और फिर 'सारा कारबार इसी तरह चला जायगा, जैसा चल रहा है। कचहरी, अदालत, उसी के साथ है जिसके पास पैसा है।' (234) यहाँ प्रेमचन्द की भाषा अनुभवी पुरुष की, 'कम्पीटेंस' को निष्पत्ति प्रदान करने वाली, चिंतन को जुबान देने वाली भाषा है। यह अभिधा की जबरदस्त भाषा है, मगर है दूर तक मार करने वाली—यथार्थता को रू-ब-रू कर देने वाली भाषा।

व्यावहारिकता और स्थितियों की सही समझ की एक और वास्तविकता रामसेवक के मुख से निकली इन पंक्तियों में देखें—"संसार में गऊ बनने से काम नहीं चलता। जितना दबो उतना ही दबाते हैं। थाना, पुलिस, कचहरी, अदालत सब हैं हमारी रक्षा के लिए, लेकिन रक्षा कोई नहीं करता। चारों तरफ लूट है, जो गरीब हैं, बेबस हैं उनकी गर्दन काटने के लिए सभी तैयार रहते हैं। भगवान् न करे कोई बेईमानी करे, यह बड़ा पाप है, लेकिन अपने हक और न्याय के लिए न लड़ना उससे भी बड़ा पाप है। तुम्हीं सोचो आदमी कहाँ तक दबे, यहाँ तो जो किसान हैं, वह सब का नरम चारा है।" (334)

वास्तव की इस भयानक समझ से जुड़ी 'गोदान' में प्रेमचन्द की भाषा जगह-जगह व्यंग्य के तेवर दिखाती चलती है। वे लिखते हैं—'धर्म का मूल तत्त्व है पूजा-पाठ, कथा, व्रत और चौका-चूल्हा। जब पिता-पुत्र दोनों ही मूल तत्त्व को पकड़े हुए हैं, तो किस की मजाल है कि उन्हें पथ-भ्रष्ट कर सके—तुम जजमानी को भीख समझो, मैं तो उसे जमींदारी समझता हूं, बंकघर। जमींदारी मिट जाय, बंकघर टूट जाय, लेकिन जजमानी अन्त तक बनी रहेगी। जब तक हिन्दू जाति रहेगी तब तक ब्राह्मण भी रहेंगे और जजमानी भी रहेगी।' (235) उपन्यास का कथा-संदर्भ इस व्यंग्य को बहुत-बहुत गहरा देता है।

स्थिति की एक और समझ प्रेमचन्द 'गोदान' के अन्दर खोलते हैं—'न जाने यह धांधली कब तक चलती रहेगी, जिसे पेट की रोटी मयस्सर नहीं, उसके लिए मरजाद और इज्जत सब ढोंग हैं। औरों की तरह तुमने भी दूसरों का गला दबाया होता, उनकी जमा मारी होती तो तुम भी भले आदमी होते। तुमने कभी नीति को नहीं छोड़ा यह उसी का दंड है।' (339) समझ को गहराने वाली, 'कम्पीटेंस' को बखूबी खोलने वाली प्रेमचन्द की यह कथा-भाषा वस्तुतः उस

वामपंथी कथा-भाषा की शुरुआत है, जिसका निर्माण प्रेमचन्द गोबर के सहारे करते हैं। यह भाषा होरी को यह सोचने को मजबूर करती है, 'लड़के की अकल जैसे खुल गयी है। कैसी बेलाग बात कहता है।' (पृष्ठ 203)। पर ठीक इसके विपरीत स्वयं होरी की भाषा रूढ़िवादी, धर्मपरक, आत्मिक समझ-बूझ की भाषा है। उसकी समझ अपनी है—'मोटे वह होते हैं, जिन्हें न रिन का सोच है, न इज्जत का। इस जमाने में मोटा होना बेहयाई है। सौ को दुबला करके तब एक मोटा होता है।' (342) इसमें विश्लेषण तो ठीक है, पर करणीय पर जो टिप्पणी है, वह व्यावहारिकता के नजरिये से उसकी पिछड़ी मानसिकता को उपस्थित करती है।

जिस होरी की अपने घर पर गौ पालने, उसका मान करने की इच्छा पूरी जिन्दगी पूरी नहीं हो सकी, उसकी विवशता देखिए कि मरने के बाद भी हिन्दू धर्म उससे गो-दान की अपेक्षा रखता है। जो वस्तु उसे प्राप्त नहीं हो पायी, जिसकी प्राप्त्याशा ही विफल हो गयी—उसी का दान करने के लिए समाज उसके मरने पर उसकी पत्नी को विवश करता है। धनिया सुतली बेचकर संजोये हुए बीस आने गोदान के बतौर पति के ठंडे हाथ में रखकर सामने खड़े दातादीन से कहती है—'महाराज घर में न गाय है, न बछिया, न पैसा। यही पैसा है, यही इनका गोदान है।' (344)। यहाँ धर्म पति के निधन पर धनिया को तत्काल आंसू भी बहाने नहीं देता। पहले धार्मिक बाह्याचार (रिचुएल) ही पूरा करवाता है। जहाँ गो-मान संभव नहीं हो पाता वहां 'गोदान' के वास्तव के इस प्रत्यक्ष में उपन्यास की भाषा व्यंग्य की करुण, गहन संरचना को बहुत सम्हाल कर हमारे सामने प्रस्तुत करती है।

भाषा और समाज के अन्योन्य सम्बन्ध की चेतना :

प्रेमचन्द अपनी कथा-भाषा का निर्माण करते हुए भाषा और समाज के अन्योन्य सम्बन्ध की चेतना से अनुप्राणित रहे हैं। इसीलिए उन्होने जहाँ जिस वर्ग का चित्रण किया है, जिस समाज का निरूपण किया है, वह वर्ग और समाज हू-ब-हू 'गोदान' की कथा-भाषा की इस शक्ति-सामर्थ्य के कारण अपने सहीपन और पूरेपन में उभर कर सामने आ गया है। यह भाषा उनके यहां परिवेश सिरजती है, सन्दर्भ प्रस्तुत करती है, घटना का निर्देश करती है और इन सबके साथ-साथ चरित्रों के शील का समर्थ निरूपण भी करती है।

भाषा के कई स्तर हैं। उसका एक मानक परिमार्जित स्तर होता है, जिसे भाषा कहते हैं। इसके निचले स्तर पर एक भाषा के अन्तर्गत एकाधिक बोलियों का समावेश होता है। बोलियाँ भाषा की अपेक्षा प्रयोग-पक्ष मे छूट लेती हैं और मार्जित नही रह पाती हैं। यह विभाषा का स्तर होता है। एक विभाषा के अन्तर्गत कई प्रकार के सामाजिक वर्ग होते हैं। यह वर्ग-भेद व्यवसाय, शिक्षा,

जीवन-स्तर, पूंजी आदि पर आधारित संरचनाओं से स्पष्ट होता है। इन वर्गों में आधार-भाषा की सामान्यता के बावजूद परस्पर विभेदकता मिलती है। वर्गभाषा के मूल मे यह विभेदकता होती है। पुनः वर्ग के भीतर अलग-अलग व्यक्ति के भाषा-प्रयोग की निजी विशेषताएँ होती हैं, जिनका अध्ययन व्यक्ति-भाषा के अन्तर्गत किया जाता है। एक प्रदत्त-निर्दिष्ट समय-सीमा में व्यक्ति-विशेष की भाषिक आदतों की सम्पूर्णता से व्यक्ति-भाषा (इडियोलेक्ट) सृजित होती है।[1]

समाज से अन्योन्य सम्बन्ध रखने वाले रचनाकार के लिए भाषा-प्रयोग के इन सभी स्तरों से सम्यक् रूप मे परिचित होने की आवश्यकता पड़ती है। 'गोदान' जैसी रचनाकृति इस तथ्य का प्रमाण है कि प्रेमचन्द जन-जीवन में भाषा-प्रयोग के इन सभी स्तरों से परिचित थे। इसीलिए 'गोदान' में उन्होंने जितना बड़ा फलक लिया है, उसके भीतर उक्त सभी प्रकार के भाषा-रूप की अपेक्षित संघटना प्राप्त हो जाती है।

मार्जित भाषा :

'गोदान' मे मार्जित भाषा की श्रेष्ठ संघटना मेहता और मालती के भाषा-प्रयोग मे हुई है। इनकी भाषा के अतिरिक्त उत्तारकीय अभिव्यक्ति में भी यह संघटना दिखाई पड़ती है। मेहता की एक भाषिक अभिव्यक्ति की संघटना देखें, जहाँ मार्जित भाषा का श्रेष्ठ उदाहरण मिल जाता है : 'जीवन मेरे लिए आनन्दमय क्रीड़ा है, सरल स्वच्छन्द, जहाँ कुत्सा, ईर्ष्या और जलन के लिए कोई स्थान नही। मैं भूत की चिन्ता नही करता, भविष्य की परवाह नहीं करता, मेरे लिए वर्तमान ही सब-कुछ है। भविष्य की चिन्ता हमे कायर बना देती है, भूत का भार हमारी कमर तोड देता है। हममें जीवन की शक्ति इतनी कम है कि भूत और भविष्य मे फैला देने से वह और भी क्षीण हो जाती है।' (पृ० 188-189)

विभाषा :

'गोदान' में ग्राम्य-सन्दर्भ में विभाषा के उदाहरण भरे पड़े हैं। प्रेमचन्द उत्तारकीय और पात्रीय—दोनों ही संदर्भों में इसका प्रयोग करते हैं। 'उत्तारकीय रूप' मे उनके प्रयोग के कुछ उदाहरण देखें—'वह गाँव-घर मे 'बैना' बटवायेगी।' (पृष्ठ 197), 'इधर नोहरी के विषय में 'कनबतियाँ' होती रहो।' (पृष्ठ 253) 'झुनिया ने बड़े 'अदरावन' के बाद बच्चा उसकी गोद में दिया।' (पृष्ठ 266) पात्रीय भाषा में तो विभाषा-प्रयोग के ढेरों उदाहरण पड़े भरे हैं, "कहीं-न-कहीं नित ही 'कार-परोजन' पड़ा ही रहता है।" (पृष्ठ 235)····"हाय मेरे पीछे

1. सी० एफ० हॉकेट, 'इडियोलेक्ट, डायलेक्ट, लैंग्वेज', अ कोर्स इन मॉडर्न लिग्विस्टिक्स (न्यूदिल्ली : आक्सफोर्ड ऐंड आइ० बी० एच पब्लिशिंग कं०, 1970), पृ० 32

पण्डित को भी 'भिरस्ट' कर दिया।" (पृष्ठ 240)—"जब धरम नष्ट हो गया तो एक नहीं हजार 'परासचित करो' इससे क्या होता है।' (पृष्ठ 245) 'जो कुछ खेती-बारी है सब 'लिलाम-तिलाम' हो जाए और द्वार-द्वार भीख माँगते फिरें।" (पृष्ठ 247) 'ऐसा 'परसन' हुआ कि तुमसे क्या कहूँ!' (पृष्ठ 248) 'तेरा 'मरदुआ' कैसा है, जो कान में तेल डाले बैठा है।' (पृष्ठ 263) 'वही लड़की 'पेट-पोंछनी' थी। (पृष्ठ 266) विभाषा-प्रयोग का एक सुन्दर उदाहरण नाई के हाथ गौरी महतो के द्वारा भेजे जाने वाले पत्र की यह भाषा है: 'स्वस्ती श्री सर्वोपमा जोग श्री होरी महतो को गौरी राम का 'राम-राम बांचना।' (पृष्ठ 249) इसमें विभाषा-प्रयोग के अतिरिक्त उस समाज के पत्राचार की विशिष्ट प्रयुक्तियाँ (रजिस्टर्स) भी देखी जा सकती है। कहना न होगा कि विभाषा के ऐसे प्रयोगों से हिन्दी कथा-साहित्य मे बाद में आकर आंचलिकता के उदय को बल प्राप्त हुआ है।

वर्ग-भाषा :

खन्ना की भाषा व्यावसायिक वर्ग-भाषा का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करती है—"कभी आपसे कोई परदा नहीं रखा। लेकिन व्यापार एक दूसरा क्षेत्र है। यहाँ कोई किसी का दोस्त नहीं, कोई किसी का भाई नहीं। जिस तरह मैं भाई के नाते आपसे यह नहीं कह सकता कि मुझे दूसरों से ज्यादा कमीशन दीजिए, उसी तरह आपको भी मेरे कमीशन में रियायत के लिए आग्रह नहीं करना चाहिए।" (पृष्ठ 224) खन्ना की भाषा में अभिजात और शिक्षित वर्ग का प्रभाव भी बहुत स्पष्ट है। 'खन्ना ने लम्बी साँस लेकर कहा—"माई गॉड, दो लाख, असंभव, बिल्कुल असंभव!" × मैं कोशिश करूँगा कि आपके साथ खास रियायत की जाए, लेकिन बिजनेस इज बिजनेस।" (पृष्ठ 223)। इसी प्रकार की अभिव्यक्ति शिक्षित वर्ग के मेहता में भी देखने को मिलती है: 'थ्री चियर्स फॉर राय साहब, हिप-हिप हुर्रा!" (पृष्ठ 226) अभिजात वर्ग के विपरीत 'गोदान' में निम्न वर्ग की भाषा के भी सटीक उदारहण प्राप्त होते हैं। होरी द्वारा मार खाने पर होरी से क्रोध भरकर बोलने वाली धनिया की भाषा देखें: "मार तो रहा है और मार ले। जो तू अपने बाप का बेटा होगा तो आज मुझे मारकर पानी पियेगा।" "पापी ने मुझे मारते-मारते भुरकस निकाल लिया, फिर भी इसका जी नहीं भरा। मुझे मारकर समझता है मैं बड़ा वीर हूँ, भाइयों के सामने भीगी बिल्ली बन जाता है पापी कहीं का, हत्यारा।" (पृष्ठ 106)

व्यक्ति-भाषा :

व्यक्ति-भाषा के उदाहरणों में 'गोदान' में अलग-अलग तेवर प्राप्त होते हैं। कहीं होरी की संस्कार-भीरु असमर्थता की भाषा है, तो कहीं गोबर की स्थितियों

की सही-सही समझ वाली बेलाग भाषा, कहीं मेहता की तर्क-प्रखर बौद्धिक भाषा है, तो कही मालती की संकोचहीन 'स्ट्रेटफार्वार्ड' व्यक्ति-भाषा! कहीं राय साहेब की जमींदारी प्रथा को चलाए ले जाने वाली प्रलोभन और शक्ति से भरी व्यक्ति-भाषा है, तो कही खन्ना की बेलाग, बेलौस व्यक्ति-भाषा! इनकी भाषा को व्यक्ति-भाषा बनाने वाली सबकी अलग-अलग विशिष्ट भाषिक अभिव्यक्तियाँ हैं। 'गोदान' की कथा-भाषा का केवल इस दृष्टि से भी एक सुन्दर विश्लेषण-मूल्याकन किया जा सकता है। इरेना कालुजा ने 'विलियम फाकनर्स : द साउंड एण्ड द फ़ुरी : ए स्टडी इन लिंग्विस्टिक स्टायलिस्टिक्स' में इस ढंग का सुन्दर विश्लेषण प्रस्तुत किया है।[1]

शब्दार्थ-सजगता :

प्रेमचन्द भाषा की सावधानता के प्रति, शब्द और अर्थ के व्यवहार-पक्ष में पूरी तरह सजग हैं। शब्द के अर्थ पर विचार की, सजग रूप में उनके व्यवहार की प्रवृत्ति 'गोदान' मे बार-बार उभर कर सामने आती है—"व्यवहार में हम भाई के अर्थ का कितना ही दुरुपयोग करें लेकिन उसकी भावना मे जो पवित्रता है वह हमारी कालिमा से कभी मलिन नहीं होती।" (पृष्ठ 29) यही 'भाई' धनिया के बोल में दूसरी साभिप्रायता को जाहिर करने लग जाता है—"क्यों, भाई ने पन्द्रह रुपए कह दिए, तो तुम कैसे टोकते? अरे राम-राम। लाड़ले भाई का दिल छोटा हो जाता कि नहीं।" (पृष्ठ 34) "हाँ, काहे को भूख लगेगी। भाई ने बड़े-बड़े लड्डू खिला दिए हैं न। भगवान ऐसे सपूत भाई सब को दें।" (पृष्ठ 34)

झुनिया गोबर को जान देने का अर्थ समझाती है—'जान देने का अर्थ है साथ रह कर निबाह करें। *एक बार हाथ पकड़ कर उमिर भर निबाह करते जाना।*' (पृष्ठ 47) कहना न होगा कि भावुक अभिव्यक्ति का ठोस अर्थायन है यह प्रोक्ति।

'गोदान' मे अर्थ-सामर्थ्य और सम्प्रेषण-सचेष्टता पर प्रेमचन्द की दृष्टि टिकी है—"नाटक कोई अच्छा नही होता। कोई तो इतना लम्बा कि शायद पाँच घंटों में भी खत्म न हो और इतना क्लिष्ट कि शायद एक व्यक्ति भी उसका अर्थ न समझे।" (पृष्ठ 51-52)

प्रेमचन्द अपनी पात्र-भाषा में भी उपयुक्त शब्द की सटीकता के लिए बड़े सजग दीखते हैं। 'गोदान' का एक उदाहरण लें—"लेकिन मुझे इसका दावा है कि ग्राम्य-संगठन के लिए 'बिजली' ने जितना उद्योग किया है, मिस्टर मेहता

1. द्रष्टव्य, इरेना कालुजा, द साउंड एण्ड द फ़ुरी : ए स्टडी इन लिंग्विस्टिक स्टायलिस्टिक्स (क्राकोव : नकलादेय यूनिवर्सतेचु, 1967)

ने सुधारा—नहीं महाशय तपस्या कहिए। हाँ, इसे तपस्या ही कहना चाहिए, बड़ी कठोर तपस्या।"

भाषा के इस भीतरी धर्म को रेखांकित करने का एक और उदाहरण 'गोदान' से लें—'मालती को समीप से देखकर उनका आकर्षण बढ़ता ही जाता है। दूर से पुस्तक के जो अक्षर लिपे-पुते लगते थे, समीप से वह स्पष्ट हो गये हैं, उनमें अर्थ है, सन्देश है।' (पृष्ठ 317)

अर्थ के प्रति उनका यह अपेक्षित केन्द्रण जरूरी तौर पर उनसे लक्षणा और व्यंजना के प्रयोग करवाता है। होरी के लिए लक्षणा का प्रयोग करते हुए प्रेमचंद ने गोबर से कहलाया है—'यह है गऊ होने का फल। मेरे सामने जोड़ी खोल ले जाते, तो देखता।' (पृष्ठ 202) यहाँ 'गऊ' शब्द होरी के पूरे व्यक्तित्व को, उसके जीवन की करुण निरुपायता को एक साथ उद्घिक्त कर देता है। व्यंजना के सहारे उपालंभ-भरी आक्षेप-भाषा का भी वे सार्थक रचाव कर जाते हैं, जिसमें पूरी स्वाभाविकता विद्यमान रहती है''''उस कलूटी को क्यों नहीं भेज देते?' 'वह तो दवा लेने गई है, फिर भोजन पकाएगी।' 'तो आज आप उसके मेहमान हैं। शायद रात को भी यहीं रहने का विचार होगा। रात को शिकार भी तो अंधेरे में मिलते हैं।' (पृष्ठ 83)

शब्द-अर्थ की सटीकता और सम्प्रेषणीयता पर ध्यान रखने के साथ-साथ प्रेमचन्द निश्चित अर्थ वाले मूल शब्द को कभी-कभी छोड़ कर सन्दर्भ का ऐसा सृजन कर डालते हैं कि वहाँ सामान्य शब्द भी मौजू बन जाता है और उस विशिष्ट विवक्षा को स्पष्ट करने लगता है। कामाग्रह या सम्भोगेच्छा के लिए विवक्षा-शक्ति से सम्पन्न होने के कारण ही प्रेमचन्द ने बड़ी संयमित भाषा का व्यवहार किया है—'और जब गोबर बालक के मरने के एक ही सप्ताह बाद फिर आग्रह करने लगा तो उसने क्रोध से जल कर कहा—'तुम कितने पशु हो।' (पृष्ठ 262)

शब्दार्थ की साभिप्रायता-सार्थकता के नजरिये से वे अप्रस्तुत विधान तक की प्रयोग-कुशलता दिखाते हैं, जिससे भाषा अनुभावन की सही अभिव्यक्ति प्राप्त कर लेती है—'कंठ में नमक के एक डले का-सा अनुभव करती हुई आहत हृदय और शिथिल हाथों से फिर काम करने लगी।' (पृष्ठ 237)

यह प्रेमचन्द की बड़ी विशेषता है कि वे भाषा का उपयोग केवल सामग्री के रूप में नहीं कर, माध्यम के रूप में भी कर जाते हैं। यही उनकी भाषिक सर्जनात्मकता है। सामग्री के रूप में भाषा उपकरण मात्र होती है, पर माध्यम-रूप में वह भाषा की विशेष छवि निर्मित करती है। इस दृष्टि से 'गोदान' की कथा-भाषा में 'विचलन' और 'समांतरता' के अनेक रूप प्राप्त होते हैं।

विचलन :

विचलन (डिविएशन) मानक भाषा के स्वरूप को भाषा के किसी भी स्तर पर अतिक्रमित करने से उत्पन्न होता है। कथा में विचलन का व्यवहार उत्तारकीय और पात्रीय दोनों ही सन्दर्भों की भाषिक अभिव्यक्ति मे होता है। उत्तारकीय सन्दर्भ में इसकी अपेक्षा और साभिप्रायता प्रायः अस्वीकार्यता के धरातल पर देखी जा सकती है, पर पात्रीय सन्दर्भ मे यह व्याकरणिक धरातल पर अधिक पायी जाती है। प्रेमचन्द की कथा-भाषा का केवल विचलन के आधार पर भी विस्तृत अध्ययन सम्भव है। विचलन के भेदोपभेद अधिकाधिक हैं।

'गोदान' की कथाभाषा के सन्दर्भ में (क) सामान्य विचलन और (ख) डबिशायर-निरूपित विशेष विचलन जैसी दो कोटियों की विभिन्न मुद्राऐं द्रष्टव्य हैं।

(क) सामान्य विचलन :

बच्चे की विचलन-मूलक भाषा का प्रयोगात्मक उल्लेख करते हुए प्रेमचन्द सिलिया के बालक के विषय में लिखते हैं—'अपने साथ वह एक विचित्र भाषा लाया था और उसी मे बोलता था, चाहे कोई समझे या न समझे। उसकी भाषा में त, ल और घ की कसरत थी और स, र आदि वर्ण गायब थे। उस भाषा में 'रोटी' का नाम था 'ओटी', 'दूध' का 'तूत', 'साग' का 'छाग' और 'कोड़ी' का 'तोली'।' (325) ये सभी ध्वनि-स्तरीय विचलन के उदाहरण हैं। ब्राह्मण और ब्राह्मणेतर किसान की भाषा का अन्तर भी प्रेमचन्द ने उच्चार-भेदीय विचलन के सहारे स्पष्ट किया है। होरी कहता है—"महाराज तुम्हारे सिवाय मेरा कोई नही। मैं तो 'निरास' हो गया था।" पंडित दातादीन उसे समझाते हैं, "निराश होने की कोई बात नही। बस इतना ही समझ लो कि सुख में आदमी का धर्म कुछ और होता है दुःख में कुछ और।" (331) यहाँ भी 'निरास' में ध्वनि-स्तरीय विचलन मिलता है।

पात्रों की वार्तालापी भाषा में विश्वसनीयता को उपस्थित करने तथा यथार्थता को ज्यों-का-त्यों प्रस्तुत करने के लिए भी प्रेमचन्द ने विचलन का सहारा लिया है। नशे में व्यक्ति की भाषा किस प्रकार बदल जाती है, इसे सम्पादक ओंकारनाथ के मुख से निकलने वाली भाषा मे दिखाया गया है—"सम्पादक जी ने लाल, पर ज्योतिहीन नेत्रो से देखा—'तुमने हमारी तारीप क्यों की ? क्यों को ? बोलो क्यों हमारी तारीप की ? हम किसी का नौकर नई है।' (पृष्ठ 68), यहां 'तारीफ' के लिए 'तारीप' का प्रयोग तथा 'किसी के नौकर नहीं हैं' के लिए 'किसी का नौकर नई है' का प्रयोग मानक भाषा से

विचलन का उदाहरण है (68)। इसी प्रकार अफगान की भाषा भी विचलन-प्रसूत भाषा है—'अम से पूछता है कैसा लूट, कैसा डाका, तुम लूटता है तुम्हारा आदमी लूटता है, अम यहाँ की कोठी का मालिक है, अमारी कोठी में पचास जवान हैं, हमारा आदमी रुपये तहसील कर लाता था। एक हजार। वह तो लूट लिया, और कहता है, 'कैसा डाका ?' (69)। यहाँ स्पष्ट रूप में वाक्य-संरचना के धरातल पर सामान्य गद्य-भाषा के नियम टूटे हैं, जिससे कथा में सही परिवेश का, उसके वास्तव का सर्जन हो सके और सम्प्रेषणीयता भी सुरक्षित रह सके। 'गोदान' में साभिप्राय विचलन की यह स्थिति काफी महत्त्व-पूर्ण है।

(ख) डॉविशायर-निरूपित विशेष विचलन :

ए० ई० डविशायर ने अपनी पुस्तक 'ए ग्रामर ऑव स्टाइल' में 'डिविएशन' का स्वरूप-विवेचन करते हुए उसे प्रतिमान (model) के विरोधी रूप में उपस्थापित किया है। 'डिविएशन' का प्रचलित हिन्दी रूपान्तर 'विचलन' है। डविशायर ने प्रत्येक विचलन (डिविएशन) को चेतन या अचेतन चयन का परिणाम मानते हुए इसे 'भाषिक मानक' (नार्म) की पृष्ठभूमि के विरुद्ध उपस्थापित किया है। उसने पहले स्तर पर 'विचलन' के तीन आयाम माने हैं—1—भाव (सेंस), 2—ससक्ति (कोहीज़न) और 3—विशेष केन्द्रीयता (कन्सीट)।[1] दूसरे स्तर पर उसने इन तीनों के एकाधिक उपवर्ग निर्दिष्ट किये हैं। 'भाव' के 1—उत्तारकीयता (नैरेशन), 2—वर्णनात्मकता (डिस्क्रिप्शन), 3—व्याख्यात्मकता (एक्सप्लेनेशन) और 4—प्रत्ययनीयता (पर्सुएशन) जैसे उपवर्ग निर्दिष्ट किए हैं तो 'संसक्ति' के 1—पूर्वप्रयोग (प्रोलेप्सिस) 2—द्विप्रकारी सहलग्नता—क—समानाधिकरण तथा ख—आश्रित और 3—आद्यावृत्ति (एनेफ़ोरा) जैसे उपवर्ग और विशेष केन्द्रीयता के 1—विशिष्ट अभ्युद्देशनात्मक निरूपण और 2—विशिष्ट कल्पनात्मक निरूपण जैसे उपवर्ग।

भावगत विचलन :

भाव के क्षेत्र में प्रत्येक पूर्ववर्ती अभिव्यक्ति से जो परवर्ती विचलन होता चलता है, उसके मूल में संस्थिति और सन्दर्भ की माँग के कथ्यानुरूप रचनाकार का चयन सक्रिय रहा करता है। 'गोदान' में प्रेमचन्द ने उत्तारकीयता से वर्णनात्मकता, वर्णनात्मकता से व्याख्यात्मकता और व्याख्यात्मकता से प्रत्यय-

1. ए० ई० डविशायर, 'नॉर्म ऐंड डिविएशन', ए ग्रामर ऑव स्टाइल (लण्डन : आन्द्रे दथ लिमिटेड, 1971), पृष्ठ 98-140

नीयता के विचलन—प्रत्येक के अलग-अलग सन्दर्भ में—सोलह प्रकारों से उपस्थित किये हैं। इतना ही नहीं, प्रेमचन्द ने इस कौशल का मिश्रित उपयोग भी किया है। इसीलिए 'गोदान' में जहाँ एक वाक्य के पूर्वार्द्ध मे वर्णनात्मकता है, वहाँ उसके उत्तरार्द्ध में व्याख्यात्मकता अथवा एक पूरे अनुच्छेद की अपेक्षा एक सीमित वाक्यबन्ध के विविध वाक्यों में इस विचलन को एक पूरी गतिकी (डायनामिक्स) ही मिश्र रूप मे उपस्थित है।

'गोदान' के आरम्भ में ही इसके कई निदर्शन प्राप्त होते हैं। कथा का आरम्भ उत्तारकीयता से होता है : 'होरीराम ने दोनों बैलों को सानी-पानी देकर अपनी स्त्री धनिया से कहा—।' (पृष्ठ 4) पर थोड़ा आगे बढ़ते ही प्रत्ययनीयता आ जाती है : 'जब दूसरो के पांवों तले अपनी गर्दन दबी हो तो उन पांवों को सहलाने मे ही कुशल है।' (वही) पुनः उत्तारकीयता आती है: 'उसकी छह सन्तानों में अब केवल तीन जिन्दा हैं, एक लड़का गोबर, कोई सोलह साल का, और दो लड़कियां सोना और रूपा, बारह और आठ साल की। तीन लड़के बचपन में ही मर गये।' (वही) पर इसमें नाम और अवस्था के उल्लेख के कारण वर्णनात्मकता भी जुड़ी हुई है। इससे शृंखलित रूप में सम्बद्ध आगे की कथा-भाषा व्याख्यात्मकता की मुद्रा प्रस्तुत करती दीखती है, 'उसका मन आज भी कहता था, अगर उनकी दवा-दारू होती, तो वे बच जाते।' (वही) फिर उत्तारकीयता आती है : 'पर वह एक धेले की दवा भी मंगवा न सकी थी'। फिर वर्णनात्मकता : 'छत्तीसवां ही साल तो था, पर सारे बल पक गये थे, चेहरे पर झुर्रियां पड़ गई थी। सारी देह ढल गयी थी। वह सुन्दर गेहुंआ रंग संवला गया था और आँखों से भी कम सूझने लगा था।' (वही, पृष्ठ 7) 'गोदान' मे प्रत्ययनीयता के अनेक सन्दर्भ हैं। रचनाकार का ऋषि जहाँ वर्णनात्मकता और व्याख्यात्मकता की सर्जना करता है, वही उसका मुनि प्रत्ययनीयता को प्रस्तुत करता है—'दरिद्रता मे जो एक प्रकार की अदूरदर्शिता होती है, वह निर्लज्जता तो तकाजे, गाली और मार से भी भयभीत नहीं होती।' (पृष्ठ 9) इस कृति मे आदि से अन्त तक इसके उदाहरण भरे पड़े हैं—'मुफ्तखोरी ने हमे अपंग बना दिया है, हमे अपने पुरुषार्थ पर लेशमात्र भी विश्वास नहीं है, केवल अफसरों के सामने दुम हिलाकर किसी तरह उनके कृपापात्र बने रहना और उनकी सहायता से अपनी प्रजा पर आतंक जमाना ही हमारा उद्यम है।' (पृष्ठ 17) 'गोदान' में भाव के क्षेत्र में विचलन का फलक अत्यन्त व्यापक है और इसकी गतिकी अत्यन्त सार्थक।

संसक्तिगत विचलन :

संसक्ति संयोजन की कला है। 'गोदान' मे संसक्ति को ध्वनि-स्तरीय, शब्द-स्तरीय और वाक्य-स्तरीय तीनों ही दृष्टियों से रेखांकित किया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त सर्जनात्मक भाषा में जब वाक्य की अपेक्षा वाक्यबंधीय भाषिक संरचनाएं बनने लगती हैं और परस्पर वाक्य-गुच्छ अपने को अन्तर्ग्रथित इकाइयों के रूप में प्रस्तुत करने लगते हैं तब संसक्ति के उदाहरण प्राप्त होते हैं।

1. पूर्व प्रयोग :

हर्विशायर ने संसक्ति का पहला प्रकार 'पूर्व प्रयोग' (प्रोलेप्सिस) को माना है। 'पूर्वप्रयोगी संसक्ति' सन्दर्भ-विशेष में अगली सारी वाक्य-रचनाओं को उससे जोड़ती है। आगे के परिचायक वाक्यों में पूर्व कथ्य को भी वह स्थानीकृत करती है। इससे सर्जनात्मक स्तर पर अभिव्यक्ति की आन्तरिक तर्क-व्यवस्था उपस्थित होती है। एक उदाहरण देखें : 'युवती का रंग था तो काला और वह भी गहरा, कपड़े बहुत ही मैले और फूहड़, आभूषण के नाम पर केवल हाथों में दो-दो मोटी चूड़ियाँ, सिर के बाल उलझे, अलग-अलग। मुख-मण्डल का कोई भाव ऐसा नहीं, जिसे सुन्दर या सुघड़ कहा जा सके, लेकिन उस स्वच्छ, निर्मल जलवायु ने उसके कालेपन में ऐसा लावण्य भर दिया था और प्रकृति की गोद में पलकर उसके अंग इतने सुडौल, सुगठित और स्वच्छन्द हो गये थे कि यौवन का चित्र खींचने के लिए उससे सुन्दर कोई रूप न मिलता। उसका सबल स्वास्थ्य जैसे मेहता के मन में बल और तेज भर रहा था।' (पृ० 79) यहां संसक्ति 'युवती का' जैसे पूर्व प्रयुक्त शब्द के आधार पर बन रही है। रंग, कपड़े, आभूषण, चूड़ियां, सिर के बाल, मुख-मंडल, कालेपन, अंग, रूप—सभी युवती से संसक्त होकर ही अभिप्रेत प्रभाव उपस्थित करते हैं। वाक्य की रचना कई बार 'उसके' अध्याहृत होने पर भी उससे जुड़ी है। अन्तर्वाक्य-गठन अंत के 'उसका' जैसे सर्वनाम के सहारे संसक्त हो गया है। पर इस संसक्ति में 'वाक्य-रचना की गति को' एक लयात्मक ठहराव के साथ विकसित हो रही है। अभिव्यक्ति मूलक पद-संसक्ति के निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य हैं : (क) 'तुम सब कुछ कर सकती हो, बुद्धिमती हो, चतुर हो, प्रतिभावान हो, चंचल हो, स्वाभिमानी हो, त्याग कर सकती हो, लेकिन प्रेम नहीं कर सकती हो।' (पृ० 79) यहां हर वाक्यांश में नाभिक का लोप है और केवल एक विशेषण आ रहा है। ये सारे विशेषण सन्दर्भ-विशेष में मालती के लिए ही प्रयुक्त हुए हैं। साथ ही 'हो' की विधेयात्मक आवृत्ति भी है। ये सभी 'तुम' के लिए परस्पर अत्यन्त संसक्त रूप में उपस्थित होते और मेहता के कथ्य को बल प्रदान करते हैं। यहां प्रेम नहीं कर सकने की निषेधात्मकता अभिवृत्तिवश संसक्तिगत विचलन का उदाहरण बन जाती है। (ख) 'गाय मेरी 'होगी', उसका दूध मैं 'दुहूंगी', उसका गोबर मैं 'पाथूंगी', तुझे कुछ न मिलेगा।' (पृ० 35)। यहां भी गाय से जुड़कर आने वाली 'होगी', 'दुहूंगी' पाथूंगी', जैसी क्रिया-परकता तथा 'उसका' और 'मैं' की आवृत्ति से शब्द-संसक्ति उत्पन्न होती है। पर यहां 'कुछ न मिलेगा' की निषेधात्मकता अभिवृत्तिवश संसक्तिगत विचलन उपस्थित करती है।

2. द्विप्रकारी सहलग्नता :

संसक्तिगत विचलन का दूसरा प्रकार द्विप्रकारी सहलग्नता का है। यहाँ विचलन कभी 'समानाधिकरण संसक्ति' के रूप मे उपस्थित होता है, तो कभी 'आश्रित संसक्ति' के रूप में।

(क) समानाधिकरण :

समानाधिकरण संसक्ति कभी पार्श्ववाक्य-स्थापन (एपोजीशन) के सहारे सामने आती है, तो कभी समुच्चयबोधक सयोजन (कंजंक्शन) के सहारे।

1. पार्श्ववाक्य-स्थापन :

'पार्श्ववाक्य-स्थापन' वह कौशल है, जिसमें व्यवहारतः प्रथम वाक्य या वाक्यांश के बाद के दूसरे वाक्य अथवा वाक्यांश या तीसरे वाक्य अथवा वाक्यांश अथवा क्रमशः आगे आने वाले अन्य वाक्य या वाक्यांशों में पहले वाक्य या वाक्यांश की स्थापना की ही विवृति-व्याख्या मिलती है। 'गोदान' की निम्नलिखित पंक्तियों में इसका सुन्दर निदर्शन प्राप्त होता है : 'आप नवयुग की साक्षात् प्रतिमा है। गात कोमल, पर चपलता कूट-कूट कर भरी हुई। झिझक या संकोच का कहीं नाम नहीं, मेकअप मे प्रवीण, बला की हाजिर-जवाब, पुरुष-मनोविज्ञान की जानकार, आमोद-प्रमोद को जीवन का तत्त्व समझने वाली, लुभाने और रिझाने की कला मे निपुण। जहां आत्मा का स्थान है, वहां प्रदर्शन, जहां हृदय का स्थान है वहां हाव-भाव, मनोद्‌गारों पर कठोर निग्रह, जिसमें इच्छा या अभिलाषा का लोप-सा हो गया।' (वही, पृ० 55)। ऊपर का यह पूरा गद्य-सन्दर्भ सबसे पहले के लघु वाक्य की ही व्याख्या है, जिसमे क्रिया का अध्याहार कर विचलन के जरिये शब्द चित्रात्मकता लायी गयी है। प्रेमचन्द ने मालती के पहले कामिनी खन्ना का भी परिचय दिया है, पर वहाँ ऐसा 'संसक्तिमूलक' विचलन नहीं है। मालती का परिचय देते हुए रचनाकार यहाँ पूर्व प्रसंग से अलग संसक्तिमूलक विचलन का कौशल अपनाता है, फलतः यह संदर्भ 'अप्रस्तुत' हो जाता है।

2. समुच्चयबोधक सयोजन :

समुच्चय-बोधक संयोजन के सहारे संसक्तिगत विचलन के उदाहरण कई रूपों में प्राप्त होते हैं। इसके अन्तर्गत किसी प्रोक्ति के दो शिथिलप्राय अतिरिक्त भाषिक अंशो को बाह्य संरचना के स्तर पर परस्पर सहलग्न किया जाता है, जो संरचनात्मक संसक्ति में चाप और भार-सापेक्षता का शैलीपरक अभिलक्षण बन जाता है। यहाँ संसक्ति विरोध और समानतामूलक दोनों होती है। दो वाक्यों या वाक्यांशों के परस्पर संग्रथन मे यहाँ विरोध या साम्य उभर कर सामने आता है। 'पर', 'लेकिन', 'मगर', 'नहीं' जैसे सहलग्नक यदि विरोधी सहलग्नता को उपस्थित करते हैं, तो 'कि' और 'और' जैसे सहलग्नक साम्यमूलक सहलग्नता को। इनके

अतिरिक्त 'तो' जैसा सहलग्नक कभी विरोध और कभी साम्य को उपस्थित करता है। 'गोदान' में इस प्रकार के संसक्तिगत विचलन के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं :

(क) विरोधी सहलग्नता।

1. 'यह घर होरी के लिए लाख रुपये का है, पर उसकी असली कीमत कुछ भी नहीं।' (वही, पृ० 162)

2. 'इसी तरह हम बुद्धि के हाथ में अधिकार भी देना चाहते हैं, सम्मान भी, नेतृत्व भी, लेकिन सम्पत्ति किसी तरह नहीं।' (वही, पृ० 55)

3. 'पुनिया के पास भी गोईं थी, शोभा के पास भी गोईं थी, मगर उन्हें अपने खेतों की बुआई से नहीं फुरसत कि होरी की बुआई करें। (वही, पृ० 169)

4. "कहीं मुनीम खाली हो तो कहना, नहीं साथ ही लेते जाना।'(पृ० 201) 'समय खराब है, न हों बीच बाजार में इस चुड़ैल धनिया के झोंटे पकड़ कर घसीटता।' (वही, पृ० 147)

5. 'सोना रोटी पकाती है, तो क्या रूपा बर्तन नहीं माँजती? सोना पानी लाती है तो क्या रूपा कुएँ पर रस्सी नहीं ले जाती? (वही, पृ० 35) यहाँ विचलन विभिन्न आन्तर संरचनाओं तथा अभिवृत्ति के संदर्भ में स्वरूपित हो रहा है।

(ख) साम्यमूलक सहलग्नता :

1. और उसकी मुटमर्दी तो देखो कि समझाने पर भी नहीं समझता। (पृ० 121) 'इसी का यह फल है कि आज आपका इतना सम्मान है।' (वही, पृ० 167)।

2. 'और सभा-चतुर इतने हैं कि जवानों में जवान बन जाते हैं, बालकों में बालक और बूढ़े में बूढ़े। चोर के भी मित्र हैं और साह के भी। (वही, पृ० 120)

3. 'अब भी तुम्हारे ऊपर वह जोबन है कि कोई जवान भी देख ले तो तड़प जाए।' जीवन की आनन्द वृत्ति तो दबायी नहीं जा सकती, हँसे बिना तो जिया नहीं जा सकता।' (वही, पृ० 206) यहाँ भी विचलन विभिन्न आंतर संरचनाओं तथा अभिवृत्ति के संदर्भ में स्वरूपित हो रहा है।

समुच्चयबोधक संयोजन के सहारे संसक्तिगत विचलन के 'गोदान' मे सर्वाधिक उदाहरण 'तो' के प्राप्त होते हैं। सैकड़ों में प्राप्त होने वाला प्रेमचन्द का यह विचलन उनके समकालीन और उनके परवर्ती सभी उपन्यासकारों से उन्हें बिलगा देता है। 'गोदान' में यदि इसके प्रयोग की तालिका तैयार की जाए, तो महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। ऊपर के कुछ उदाहरणों से संकेतित विचलन कथ्य की सहजता और सम्प्रेषणीयता के लिहाज से साभिप्राय हैं।

समुच्चयबोधक संयोजन पर आधारित इस संसक्तिगत विचलन की एक और बड़ी साभिप्रायता समान्तरता की सृष्टि की है, जो सीधे कथ्य से जुड़ती है। विरोधी भूमि पर यह अर्थ के तनाव को बढाती है, तो समता की भूमि पर एक प्रकार के गद्य-राग की सृष्टि करती अर्थ को तीव्रित कर देती है।

आश्रित संसक्तिमूलक विचलन :

'आश्रित संसक्तिमूलक विचलन' आश्रित उपवाक्यों पर आधारित होता है। आश्रित उपवाक्य उस विशेष प्रकार का संरचनात्मक अभिलक्षण है, जिसमें विशेषण परक और क्रियाविशेषणपरक वाक्यांश मूल कथ्य का संवहन कर उसे आगे ले जाते हैं। 'गोदान' में इसके उदाहरण यद्यपि आनुपातिक दृष्टि से बहुत नहीं मिलते, फिर भी प्राप्त उदाहरणों के कुछ वाक्य देखने योग्य हैं।

(1) विशेषणपरक आश्रित उप-वाक्य : 'इन नकली अप्राकृतिक, विनाशकारी अधिकारों के लिए आप वह अधिकार छोड़ देना चाहती हैं, जो आपको प्रकृति ने दिए हैं ? 'उसे छोड़कर आप उन कारखानों में जाना चाहती हैं, मनुष्य जहाँ पीसा जाता है, जहाँ उसका रक्त निकाला जाता है ?' (वही, पृ० 155)

(2) क्रियाविशेषणमूलक आश्रित उपवाक्य—"मालती जो कुछ करती थी, मेहता को प्रसन्न करने के लिए।' 'वह अपने को उसके समीप पहुँचाने की चेष्टा करती हुई उस दिन की कल्पना कर रही थी, जब वह और मेहता एकात्मक हो जाएँगे।' (वही, पृ० 299)

'गोदान' मे विशेषणमूलक आश्रित उपवाक्यो से उभर रही संसक्ति पर आधारित विचलन तो प्रायः मिल जाते है, पर क्रियाविशेषण मूलक आश्रित उपवाक्यों के उदाहरण बहुत कम मिल पाते हैं। प्रेमचन्द ने इस कौशल का बहुत कम सहारा लिया है। ऐसे विचलन भी अपनी आंतर संरचनाओ तथा अभिवृत्ति के संदर्भ में स्वरूपित हुए हैं।

3. आद्यावृत्ति :

अतिरिक्त नियमितता की सृष्टि करने के कारण आद्यावृत्ति को समान्तरता का ही अभिकरण माना जाता है, पर डबिशायर ने इसे 'विचलन के नजरिये से' एक प्रकार का ऐसा संसक्तिमूलक, शब्द-व्याकरणिक कौशल माना है, जिसके माध्यम से भाषिक व्यवहार मे उसकी आन्तरिक-तार्किक संरचना की निरन्तरता उपस्थित होती है। इस प्रकार की संसक्ति प्रोक्ति की निरन्तरता और उसकी तीव्रतर प्रभविष्णुता की अनिवार्यता बन कर सामने आती है। ऐसा नही है कि यह केवल कविता में उपस्थित होने वाला अलंकरण-मात्र है, बल्कि कथा-भाषा में भी भाषा के सामान्य तेवर से विचलन करते हुए कथाकार बड़े साभिप्राय और शक्त रूप में इस भाषिक कौशल का व्यवहार करता है। डबिशायर ने संसक्तिमूलक विचलन के संदर्भ में केवल 'आद्यावृत्ति' को लिया है, पर उतनी ही शक्त

अभिव्यक्ति के रूप में अन्तावृत्ति भी अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। 'गोदान' में 'आद्यावृत्ति और 'अन्तावृत्ति' के महत्त्वपूर्ण उदाहरण प्राप्त होते हैं। अनेक उदाहरण ऐसे भी हैं, जिनमें आद्यन्तावृत्ति एक साथ उपस्थित हुई है। इन्हें प्रेमचन्द के विशिष्ट भाषिक कौशल के रूप मे ग्रहण किया जाना चाहिए। इसकी भी सांख्यिकीय गणना कर बहुत महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। समान्तरता की सृष्टि में इनका महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। अतः इसका विवेचन प्रस्तुत निबन्ध मे समान्तरता के सन्दर्भ मे ही किया जा रहा है।

विशिष्ट केन्द्रीयता (कन्सोट):

विशिष्ट केन्द्रीयता के दो प्रकारों (क) विशिष्ट अभ्युद्देशनात्मक निरूपण और (ख) विशिष्ट कल्पनात्मक निरूपण—मे 'गोदान' मे दोनो ही के बहुत-से महत्त्वपूर्ण उदाहरण प्राप्त होते हैं।

(क) विशिष्ट अभ्युद्देशनात्मक निरूपण—विशिष्ट अभ्युद्देशनात्मक निरूपण मे विशिष्ट-क्षेत्रीय व्यवहार्य शब्दों के प्रयोग होते है। 'गोदान' में हुए ऐसे भाषिक प्रयोग द्रष्टव्य हैं :

1. "यहाँ जिसके हाथ में लाठी है, वह गरीबों को कुचलकर बड़ा आदमी बन जाता है।" (पृ० 20)

2. "जिसे हम डिमोक्रेसी कहते हैं, वह व्यवहार में बड़े-बड़े व्यापारियों और जमींदारों का राज्य है और कुछ नहीं। चुनाव में वही बाजी ले जाता है, जिसके पास रुपये हैं।—मैंने तो इरादा कर लिया है, अब इलेक्शन के पास न जाऊँगा। मेरा प्रोपेगण्डा अब डिमोक्रेसी के खिलाफ होगा।" (पृ० 91-92)

3 "हम राज नही चाहते, भोग-विलास नही चाहते, खाली मोटा-झोटा पहनना और मोटा-झोटा खाना और मरजाद के साथ रहना चाहते हैं। वह भी नही सधता।" (पृ० 174)

4. "कानून और न्याय उसका है, जिसके पास पैसा है। कानून तो है कि महाजन किसी असामी के साथ कड़ाई न करे, कोई जमींदार किसी कास्तकार के पास सख्ती न करे, मगर, होता क्या है—जमींदार मुसक बंधवा के पिटवाता है और महाजन लात और जूते मे बात करता है······कचहरी अदालत उसी के साथ है, जिसके पास पैसा है।" (पृ० 234)।

पहले उद्धरण मे 'समाज' के, दूसरे मे 'राजनीति' के तीसरे में 'समाज' के और चौथे मे 'प्रशासन' और 'समाज' के विशेष-क्षेत्रीय व्यवहार्य शब्दो के प्रयोग हुए हैं, पर इन सबका मेरुदण्ड अर्थ है, पैसा है, 'गोदान' के मूल कथ्य को भाषा का यह अभ्युद्देशनात्मक निरूपण बड़े गहरे और सार्थक तौर पर रेखांकित करता है। यहाँ विचलन सामान्य की पृष्ठभूमि में प्रयुक्ति (Registers) के प्रयोग के कारण स्वरूपित हो रहा है।

(घ) विशिष्ट कल्पनात्मक निरूपण :

"वैवाहिक जीवन के प्रभात में लालसा अपनी गुलाबी मादकता के साथ उदित होती है और हृदय के सारे आकाश को अपने माधुर्य की सुनहरी किरणों से रंजित कर देती है। फिर मध्याह्न का प्रखर ताप आता है, क्षण-क्षण पर बगूले उठते हैं और पृथ्वी काँपने लगती है। लालसा का सुनहरा आवरण हट जाता है और वास्तविकता अपने नग्न रूप में सामने आ खड़ी होती है। उसके बाद विश्राममय संध्या आती है, शीतल और शान्त, जब हम थके हुए पथिकों की भाँति दिन-भर की यात्रा का वृत्तान्त कहते और सुनते हैं। तटस्थ भाव से, मानो हम किसी ऊँचे शिखर पर जा बैठे हों, जहां नीचे का जनरव हम तक नहीं पहुंचता।" (पृ० 33)

ऊपर का कल्पनात्मक निरूपण काव्य-भाषा के गुणों से भरा हुआ है। यहां हमें यह मालूम होना चाहिए कि काव्य-भाषा के गुण कथाभाषा के लिए अनुचित नहीं हैं। हां, काव्य-भाषा गद्य में विशेष प्रकार की सजावट और व्यवस्था मांगती है, जिसका अनुपालन यहां हुआ है। फलतः यह गद्यांश अपने समग्र बिम्ब-प्रत्यक्ष के सहारे जीवन के एक यथार्थ सन्दर्भ को हमारे सामने बड़े प्रभविष्णु रूप से उपस्थित कर देता है। 'गोदान' में ऐसी अभिभूति-भरी भाषिक संवेदनशीलता के अनेक उदाहरण भरे पड़े हैं जहां अर्थगत अस्वीकार्यता के कारण विचलन उपस्थित हुआ है।

यहां 'गोदान' की कथा-भाषा के स्वरूप के सन्दर्भ में विचलन के जो-कुछ उदाहरण ग्रहण किये गये हैं, वे प्रेमचन्द की भाषिक यथार्थता, सजगता और कलामयता के स्वरूप को हमारे सामने संक्षेप में उपस्थित कर देते हैं।

प्रेमचन्द ने समाज से घनिष्ठ रूप में जुड़े हुए अर्थ, राजनीति, धर्म, प्रशासन आदि विभिन्न क्षेत्रों के बीच से उपयुक्त एवं समीचीन शब्दों को उठाकर अपने रचना-संसार को सप्राणता प्रदान की है। उन्होंने जीवन के वैविध्य के अनुरूप ही भाषा के मुद्रा-वैविध्य को गतिशीलता प्रदान की है। वे हृदय को छूने वाली भाषा के सर्जक हैं तो मर्म को रेखांकित कर देने वाली तथ्य-भाषा के विधायक भी हैं। डविआयर-निरूपित विचलन की पूरी गतिकी इस उपन्यास के भाषा-वैविध्य की झांकी दिखाती हुई अर्थ-वैषम्य की मुख्य समस्या से हमारा साक्षात्कार करा देती है। यहां अर्थ की साभिप्रायता आज की समकालिकता में अपना मूल्य रेखांकित कर जाती है। विस्तारपूर्वक विश्लेषण करने से इसकी सूक्ष्मताएँ और भी उभर सकती हैं।

समान्तरता :

भाषिक समांतरता अतिरिक्त नियमितता की सृष्टि करती है और ध्यान-केन्द्र में महत्त्वपूर्ण बन कर बस जाती है। इसमें समान या व्यतिरेकी अंश की प्रधानता होती है। समांतरता की इस विशेषता को रोमन याकोब्सन मूलतः

अपवादहीन स्थिरता (इनवैरिएंस) और परिवर्तनीय अस्थिरों (वैरिएबुल) का आवंटन या संभाजन (एपोर्शनमेंट) कहते है।[1] इसके समतामूलक और विरोधी दो प्रकार होते हैं।

यह समांतरता 'गोदान' की कथा-संरचना तक में व्याप्त है। गांव और शहर की, जमींदार और किसान की, मिल-मालिक और मजदूर की, शिक्षित और अशिक्षित की, ब्राह्मण और चमार की कथा—हर-कही पाठक को विरोधी संरचनात्मक समान्तरता के दर्शन होते हैं।

वाक्य की संरचनात्मकता की दृष्टि से समान्तरता के उदाहरण देखें—"झुंझलाहट हुई, क्रोध आया, खून खोला, आंख जली, दांतपिसे, लेकिन बोला नहीं।" (34)। यहां एक संज्ञा और एक क्रियाकी समांतरित संरचना 'दांत पिसे' तक लगातार चलती है, जिसमें क्रिया-प्रयोग अप्रस्तुत होकर उभरते हैं। ऐसा ही एक दूसरा उदाहरण देखें—"उसका दूल्हा कैसा होगा, क्या-क्या लायेगा, उसे कैसे रखेगा, उसे क्या खिलायेगा, क्या पहनायेगा।" (पृष्ठ 36) इसका वे बड़ा विशद वर्णन करते हैं। ,यहां प्रश्न- वाचक सर्वनाम और क्रिया की निरन्तर आवर्तित संरचना समांतरता उपस्थित करती है। (पृष्ठ 36)संरचना की आवृत्तिमूलक समांतर के उदाहरण 'गोदान' में भरे पड़े हैं—"हम में से आज से कोई ब्राह्मण नहीं है कोई शूद्र नहीं है, कोई हिन्दू नहीं है, कोई मुसलमान नही, है, कोई ऊंच नहीं है, कोई नीच नही है।"(पृष्ठ 66)यहां दो प्रकार की—संरचना-परक और अर्थपरक— समांतरता परिलक्षित होती है। संरचनात्मक समांतरता प्रायः वाक्यांश की समतामूलक समांतरता (सर्वनाम+नामिक+विशेषण +निपे०निपात+तिङन्त) के कारण है, पर अर्थ स्तर की समांतरता विरोधी है। ब्राह्मण और शूद्र में, हिन्दू और मुसलमान में, ऊंच और नीच में अर्थपरक विरोधी समातरता है। इसी प्रकार "हम सब एक ही माता के बालक, एक ही गोद के खेलने वाले, एक ही थाली के खाने वाले भाई हैं"(पृष्ठ 55) जैसे वाक्य में 'एक' और 'ही' की आवृत्ति भी अर्थ की समतामूलक समांतरता को जन्म दे रही है।

'गोदान' में रूपस्तरीय समांतरता का उदाहरण भी द्रष्टव्य है—'धन को आप किसी अन्याय से बराबर फैला सकते हैं, लेकिन बुद्धि को, चरित्र को, और रूप को प्रतिभा और बल को बराबर फैलाना आपकी शक्ति के बाहर है।' (पृष्ठ 55) यहां प्रत्येक 'को' की आवृत्ति में यदि समतामूलक रूप-स्तरीय समांतरता है, तो 'बराबर फैला सकना' और 'बराबर फैलाने के शक्ति के बाहर होने' में अर्थ-स्तरीय विरोधमूलक समान्तरता भी है। इसी प्रकार "मेहता ने नटखटपन से मुस्कराकर कहा—"तुम सब कुछ कर सकती हो, बुद्धिमती हो,

---

1. रोमन याकोब्सन, 'ग्रैमेटिकल पैरेलेलिज्म ऐंड इट्स रशन फेसिट,' लैंग्वेज —42 (1966), पृ० 423.

चतुर हो, प्रतिभावान् हो, दयालु हो, चंचल हो, स्वाभिमानी हो। त्याग कर सकती हो, लेकिन प्रेम नही कर सकती।" (पृष्ठ 79) यहाँ विशेषण और क्रिया की निश्चित आवृत्ति मे संरचनामूलक समांतरता है और 'हो' की आवृत्ति में रूप-स्तरीय समान्तरता। इन दोनो ही स्तरों की समान्तरता की प्रकृति समता-मूलक है। पर इसके अन्तिम अंश मे संरचना और अर्थ-स्तर दोनों ही दृष्टियों से विधेयात्मकता और निषेधात्मकता के कारण विरोधमूलक समान्तरता उपस्थित हुई है। त्याग और प्रेम मे भी अर्थ-स्तर की विरोध-मूलक समान्तरता उभरती है। ऐसे ही "झूठे हो तुम, बिलकुल झूठे" (पृ० 79) में आरम्भ में आए 'झूठे' शब्द की अन्त मे आवृत्ति के कारण समान्तरता आती है, जो शब्द स्तर की है। इससे अर्थ प्रभाव का बल सृजित होता है। 'गोदान' का एक और वाक्य देखें...'उसने कितने ही विद्वानों और नेताओं को एक मुस्कान में, एक चितवन में, एक रसीले वाक्य मे उल्लू बनाकर छोड़ दिया था' (७६)। यहाँ एक ओर 'विद्वानो' और 'नेताओ' मे बहुवचन रूपिम की संरचनात्मक समान्तरता है, तो दूसरी ओर संख्यावाचक विशेषण, संज्ञा और परसर्ग की आवृत्ति मे भी संरचनात्मक समान्तरता है। ऐसी संरचनात्मक समांतरता 'गोदान' मे कदम-कदम पर मिल जाती है 'उस रमणी मे, जो इतनी मृदु स्वभाव, इतनी उदार, इतनी प्रसन्न-मुख थी, ईर्ष्या की ऐसी प्रचण्ड ज्वाला' (84) घर के जितने प्राणी हैं सब अपनी-अपनी धुन में मस्त, कोई उपासना में, कोई विषय-वासना मे,—कोऊ काहू मे मगन, कोऊ काहू में।'(86) ऊपर के दोनों ही उदाहरण संरचनात्मक समान्तरता के उदाहरण हैं।

प्रेमचन्द समान्तरता के सहारे गद्यराग का सृजन करते हैं, एक प्रकृत लय उत्पन्न करते हैं, जिससे भाषा सहज सम्प्रेष्य हो जाती है और मन पर उसका प्रभाव स्थायी हो जाता है—'उसके क्रीड़ामय जीवन मे जो आकर्षण था, जो आनन्द था, वह क्या इस निर्जीव शव मे है? कितनी सुन्दर गठन थी, कितनी प्यारी आँखें, कितनी मनोहर छवि, उसकी छलांगें हृदय में आनन्द की तरंगें पैदा कर देती थी। उसकी चौकड़ियों के साथ हमारा मन भी चौकड़ियां भरने लगता था। उसकी स्फूर्ति जीवन-सा बिखेरती चलती थी, जैसे फूल सुगन्ध बिखेरता है, लेकिन अब उसे देखकर ग्लानि होती है।' (92)। यहाँ 'जो आकर्षण था', 'जो आनन्द था' 'कितनी सुन्दर गठन', 'कितनी प्यारी आँखें','कितनी मनोहर छवि' में संरचनात्मक समान्तरता है। ऐसे ही बाद के वाक्य में भी संरचनात्मक समांतरता है। 'क्रीड़ामय जीवन' और 'निर्जीव शव' मे अर्थ-स्तर की विरोधमूलक समानतरता है। 'पैदा कर देती थीं' और 'चौकड़ियां भरने लगता था' में रूप-स्तर की विरोधी समान्तरता है, 'लिंग-विसंगतता' के कारण। 'बिखेरती चलती थीं' और 'बिखेरता है' मे भी रूप-स्तर की विरोधी समान्तरता है, एक ओर 'भूत' और 'वर्तमान' काल के स्तर पर और दूसरी ओर स्त्रीलिंग और पुल्लिंग के स्तर पर।

रूप के स्तर पर वहां समांतरता विरोधी हो जाती है, वहां इसे स्त्रीलिंग-पुल्लिंग की, बहुवचन और एकवचन की, भूत-वर्तमान की द्विध्रुवता में देखा जा सकता है। ऐसे स्थलों पर गद्य-लय लहरदार हो जाती है। पूरे सन्दर्भ में 'था' और 'है' में भी काल-स्तर पर जो विरोधी समान्तरता उभरती है, वह अर्थ-स्तर पर 'जीवन' और 'शव' के विरोध को, दूसरे शब्दों मे 'जीवन' और 'मरण' के अर्थ को बड़ी गहराई से व्यंजित कर जाती है। एक और उदाहरण लें—'दौलत इन्सान को कितना खुदगर्ज बना देती है, कितना ऐशपसंद, कितना मक्कार, कितना बेगैरत।' (94) यहां अन्तिम तीन पदबन्ध की संरचना समांतरतामूलक है।

पहली संरचना से अंत की तीन संरचनाओं की तुलना करें। पहली मे तिङन्त क्रिया' है' का व्यवहार हुआ है, किन्तु बाद की तीन संरचनाओ मे इसका निषेध है। रूप-स्तर पर यद्यपि यह वाक्य विरोधी समान्तरता का उदाहरण है तथापि अर्थ-स्तर पर 'है' के लोप के बावजूद यह समतामूलक समान्तरता का दृष्टान्त बन जाता है, क्योंकि इसकी अन्तः स्तरीय संरचना बिल्कुल समान है।

'गोदान' मे प्राप्त समातरता को आद्य, आन्तिक और आद्यातिक आवृत्ति-मूलक समातरता के नजरिये से भी रेखांकित किया जा सकता है।

आद्यावृत्तिमूलक समांतरता :

1. अगर कोई स्त्री आपके पास बार-बार किसी-न-किसी बहाने से आये, आपको अपना देवता समझे, हर एक बात में आप से सलाह ले, आपके चरणों के नीचे आँखें बिछाये, आपका इशारा पाते ही आग मे कूदने को तैयार हो तो मैं दावे से कह सकती हूँ, आप उसकी उपेक्षा न करेंगे। (वही, पृष्ठ-160) यहां दूसरे, चौथे और पांचवें वाक्यांश के स्तर पर आद्यावृत्ति उभर रही है, जिससे समातरता की सृष्टि हो रही है।

2. बिरादरी का भय पिशाच की भाँति सिर पर सवार अंकुश दिये जा रहा था। बिरादरी से पृथक् जीवन की वह कोई कल्पना ही न कर सकता था··· बिरादरी उसके जीवन में वृक्ष की भांति जड़ें जमाए हुए थी। बिरादरी से निकल कर उसका जीवन विश्रृंखल हो जाएगा...तार-तार हो जाएगा। (वही, पृष्ठ 123-124) यहां आद्यावृत्ति का संसक्ति मूलक ऐसा उदाहरण प्रस्तुत है, जिससे समान्तरता उद्भूत हो रही है।

अन्तावृत्ति मूलक समांतरता :

यहां वाक्यांश के अन्त मे अन्तावृत्ति प्राप्त होती है :

1. यों न निकल पाएगा तो जुए मे जाएगा, घुड़दौड़ में जाएगा, ईंट-पत्थर मे जाएगा, ऐयाशी में जाएगा। (वही, पृ० 227)

2. किसान के लिए जमीन जान से भी प्यारी है, कुल-मर्यादा से भी

प्यारी है। (वही, पृ० 243) ऊपर के दोनों उदाहरण अन्तावृत्तिमूलक संसक्ति पर आधारित विचलन को उभार रहे हैं। यहां व्याकरणिक रूप मे दोनों वाक्यों मे एक-एक बार 'जाएगा' और 'प्यारी है' का प्रयोग होना चाहिए था, पर तब यह प्रभाव उत्पन्न नही हो पाता, बल नही आ पाता, जो समांतरता के कारण उपर्युक्त अभिव्यक्ति में मौजूद है।

आद्यान्तावृत्ति मूलक समांतरता :

1. हंस के पास उतनी तेज चोंच नही है, उतने तेज चंगुल नही हैं, उतनी तेज आंखें नहीं हैं, उतने तेज पंख नही हैं और उतनी तेज रक्त की प्यास नहीं है। (वही, पृ० 154) यहां वाक्यांशों के आरम्भ में 'उतनी'। 'उतने' तेज की आवृत्ति होने और वाक्यांशों के अन्त में 'नही है' की आवृत्ति होने के कारण आद्यान्तावृत्ति मूलक समांतरता उभर रही है।

2. मातृत्व संसार की सबसे बड़ी साधना, सबसे बड़ी तपस्या, सबसे बड़ा त्याग और सबसे महान् विजय है। (वही, पृ०)

यहां 'सबसे' की पहली अभिव्यक्ति तो लगभग वाक्यांश के उपान्त में होती है, पर इसकी अन्य परवर्ती अभिव्यक्तियां क्रमशः तीन बार वाक्यांशों के आरम्भ में आती हैं। इस प्रकार इनकी परस्पर आद्यंतावृत्ति बन पड़ती है। 'गोदान' में इस प्रकार की आवृत्तियों के मूल में अतिरिक्त भाषिक नियमितता सक्रिय दीखती है। फलतः समांतरताएँ उत्सृजित होने लगती हैं। समान्तरताएं इन्हें अप्रप्रस्तुत करती हैं और इस प्रकार इन्हें सीधे प्रभावशाली कथ्य से जोड़ देती हैं।

प्रेमचन्द ने भाषा की इस समांतरित बारीकी के सहारे, एक ही शब्द की प्रयोग-क्षमता के जरिए कथ्य और कथ्य के अन्तर को तथा उसकी अलग-अलग विरोधी समांतरता के जरिए सोद्देश्यता को बड़ी बेबाकी से अलगाया है। 'गोदान' के बीसवें परिच्छेद मे पंडित की भाषा मे प्रेमचन्द क्रियापरकता के अर्थभेद को दिखाते हैं—"चलाने-चलाने मे भेद है। एक चलाना वह है कि घड़ी भर में काम तमाम, दूसरा चलाना वह है कि दिन भर में भी एक बोझ ऊख न कटे।"। (94) इसी प्रकार देह-दशा और मनोदशा का भी पार्थक्यमूलक समांतरित निरूपण प्रेमचन्द की भाषा-सामर्थ्य को हमारे सामने ला उपस्थित करता है—"उसके भीतर जैसे आग लगी हुई थी। उसमे अलौकिक शक्ति आ गई थी। उसमे जो पीढ़ियों का संचित पानी था, वह इस समय जैसे भाप बनकर उसे यन्त्र की-सी अंधशक्ति प्रदान कर रहा था। उसकी आंखों में अंधेरा छाने लगा। सिर में फिरकी-सी चल रही थी, फिर भी उसके हाथ यंत्र की गति से बिना थके, बिना रुके उठ रहे थे। उसकी देह से पसीना की धारा निकल रही थी, मुंह से फिचकुर छूट रहा था, सिर में धमधम का शब्द हो रहा था, उस पर जैसे कोई भूत सवार हो गया हो।" (195)

प्रेमचन्द ने 'गोदान' में इसी समांतरित भाषा के सहारे धर्म और कर्म के अन्तर को स्पष्ट किया है। गोबर का अनुभव है—"राम-राम जप कर वह जी भी तो नहीं सकता। उसे तो फावड़ा और कुदाल चाहिए।" (336) वहाँ प्रेमचन्द विरोधी समान्तरता के सहारे राम नाम के धर्म को भूल कर फावड़ा और *कुदाल की प्रतीकात्मकता की ओर नई पीढ़ी को उन्मुख करते हैं।*

'गोदान' में प्रेमचन्द ने समान्तरता के कौशल को विशेष रूप में प्रयुक्त किया है। इससे पहले के उपन्यासों में प्रेमचन्द समांतरता के कौशल का इस सीमा तक व्यवहार नहीं कर सके हैं। पर यहाँ तक आते-आते उनके सामने आवृत्तिमूलक समांतरता का यह रहस्य अच्छी तरह स्पष्ट हो गया है कि "वाक्य में एक स्वराघात होना चाहिए, यानी, एक बल-मुख्य मौलिक शब्द जिसकी खातिर वाक्य की रचना की गयी है—इस स्वराघात को बल के अन्तर्गत होना चाहिए, चाहे वह क्रिया हो या विशेषण, शर्त केवल यह है कि उसे वाक्य की संरचना में सबसे महत्त्वपूर्ण होना चाहिए।"[1]

वस्तुतः समान्तरता ने समता और विरोध—दोनों ही धरातलों पर 'गोदान' की कथा-भाषा में वह लय लय पैदा की है, जिसे गद्य का बाध कहा जाता है। पाठक इसके सम्मोहनकारी प्रभाव का अनुभव करते हैं। लय के कारण कथा-गद्य पढ़ने में सहज भी हो जाता है। ठीक लय रहने पर पाठक एक उपराम से दूसरे उपराम तक बिना किसी परिश्रान्ति या अतिरिक्त भार के आ जाता है। पर लय के इस रचाव के अपने खतरे भी हैं। उपन्यास में गद्य इतना चिकना और इतना गतिमय भी हो जा सकता है, जहां पाठक इतमीनान से अकेला सरकता या बहता चला जाए, पर रास्ते में उससे कथा का बहुत-कुछ छूट जा सकता है।[2] पर 'गोदान' में लय-सृष्टि करते हुए प्रेमचन्द इस खतरे से सावधान रहे हैं। इसलिए पाठ में कथा का कोई भी भाग छूट नहीं पाता और न लयग्रस्तता के कारण कोई ठेस ही लगती है। बड़ी बात यह है कि यह समांतरता 'गोदान' में कथ्यात्मक यथार्थ को पूरी शक्ति के साथ अभिव्यक्त कर देती है।

मिथकीय कथा-भाषा :

प्रेमचन्द की कथाभाषा समाज-राजनीतिक मिथक को भी गढ़ती है। प्रेमचन्द होरी के विषय में लिखते हैं—"आज तीस साल तक जीवन से लड़ते रहने के बाद

1. अलेक्सेई तोलस्तोय, 'शब्द चिन्तन है', लेखन-कला और रचना-कौशल सम्पा० व० म० सस्तविचेल कुर्मनोवा (मास्को: प्रगति प्रकाशन, 1977), पृ० 286
2. लियोन सर्मेलियन, 'टेकनीक्स ऑव फिक्शन राइटिंग', पर्सपेक्टिव ऑन फिक्शन, सम्पा० केल्डरवुड एंड टालियर (लंदन: ऑक्सफोर्ड यूनि० प्रेस, 1968), पृ० 22

वह परास्त हुआ है और ऐसा परास्त हुआ है कि मानों उसे नगर के द्वार पर खड़ा कर दिया गया है और जो आता है उसके मुँह पर थूक देता है। वह चिल्ला-चिल्ला कर कह रहा है, भाइयो, मैं दया का पात्र हूँ।" (338)

व्यापक एवं एकाधिक शैलियों के व्यवहार वाली कथाभाषा :

'गोदान' का भाषा-फलक अत्यन्त व्यापक है। इसमें भाषा के कई तेवर, कई रंग हैं। लगातार विशेषण के प्रयोग से लेकर लगातार क्रिया तक के प्रयोग हुए हैं। प्रेमचन्द ने पात्र-भाषा में अपशब्दों के प्रयोग किए हैं—"तुम्हारी आँखें फूटें, घुटना टूटें, मिरगी आए, घर में आग लग जाए।" (99) 'मुदा' जैसे तकियाकलाम का प्रयोग तो 'गोदान' की भाषा में सर्वाधिक हुआ है।

उपन्यासकार के शब्द और वाक्य, उन्हीं अर्थों की किरण छिटकाते हुए, उन्हीं व्याकरणिक ढांचे का निर्माण करते हुए कथा में प्रयुक्त होते हैं, जिन अर्थों और व्याकरणिक ढांचे में वे कथेतर संदर्भों में व्यवहृत होते हैं। पर फर्क का पता उनसे निकलने वाले उन भिन्न परिणामों और सिद्धियों को देखने पर चलता है, जिनके मूल में कथाकार के द्वारा संदर्भ सृजित करने तथा उसमें रूप भरने की शक्ति और 'प्रिटेंड' करने की क्षमता निहित होती है। कथाकार यही 'आरिजिनेट' करता है और उपन्यास की अभिव्यक्ति सहसा एक उद्भूति बन जाती जाती है। 'गोदान' की भाषा इस क्षमता से भरी है।

निष्कर्ष :

निष्कर्षतः 'गोदान' भाषा की दृष्टि से एक ऐसा उपन्यास है, जिसमें एक से अधिक कथा-शैलियों का व्यवहार हुआ है। ऐसे उपन्यास की भाषा उन उपन्यासों से सर्वथा विलग होती है, जिनमें शुरू से आखिर तक एक ही अकेली गद्य-शैली चलती है।[1] इस दृष्टि से 'गोदान' में यदि वस्तुगत गद्य के दर्शन होते हैं, तो महाकाव्यात्मक गद्य के भी, यदि गीतात्मक गद्य के दर्शन होते हैं, तो पत्रकारिता की प्रकृति वाले या नेताओं के भाषण वाले गद्य के भी। इसके मूल में कथ्य और चरित्र की विविधता होती है। फलतः कथा-भाषा इन सारे सम्बन्धसूत्रों के लगाव और तनाव से भर कर ही स्वरूप पाती है।

1. लियोनार्ड लुट्वाक, 'मिक्स्ड ऐण्ड यूनिफार्म प्रोज स्टाइल्ज इन द नॉवेल', पर्सपेक्टिव ऑन फिक्शन, सम्पा०, जेम्स एल० कैल्डरवुड ऐण्ड हेराल्ड ई० टालियर (लंदन : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1968), पृ० 27

'मैला आँचल' की कथा-भाषा

आंचलिकता :

'मैला आँचल' एक आंचलिक उपन्यास है। आंचलिकता की तीन विशेषताएँ मानी गई हैं—(1) स्थानीय रंग, (लोकल कलर), (2) विभाषा (डायलेक्ट) और (3) प्रजातान्त्रिक-सौन्दर्यवाद (डिमोक्रैटिक एस्थेटिसिज्म)। 'मैला आँचल' की कथा-भाषा इन तीनों तत्वों को एक साथ सहेजती चलती है। इसमें भाषा स्थानीय रंगत को तो समेकित किये हुए है ही, विभाषा के प्रयोग ध्वनियों की बुनावट या ऐन्द्रिय-संचार, विभिन्न कोटियों की प्रयुक्तियों (रजिस्टर्स), वाक्य-विन्यास और प्रोक्ति-जैसी एकाधिक दृष्टियों से हुए हैं। प्रजातान्त्रिक सौन्दर्यवाद स्थानीय रंगत के साथ-साथ विभाषिक अभिव्यक्ति मे ढला है। कहना न होगा कि 'मैला आँचल' की कथा-भाषा मे अभिजात सौन्दर्य का निरूपण नही होकर प्रजातान्त्रिक सौन्दर्य का ही निरूपण हुआ है, चाहे 'लक्ष्मी' का शारीरिक सौन्दर्य हो या 'माया जी' का सौन्दर्य, 'कमली' का सौन्दर्य हो अथवा प्रकृति का आँचलिक सौन्दर्य—यहां सारा-का-सारा सौन्दर्य-अभिव्यंजन प्रजातान्त्रिक ही है।

'मैला आँचल' में यदि 'आंचलिकता की अप्रस्तुति' विभाषा (डायलेक्ट) और व्यक्ति-भाषा (इडियोलेक्ट) के प्रयोग-सम्प्रयोग में रेखांकनीय है, तो 'अप्रस्तुति की आंचलिकता' समान्तरता, विचलन, विपथन और विरलता जैसे अभिकरणों के सहारे विभिन्न भाषिक स्तरों पर अपना साभिप्राय रचाव प्रस्तुत करने वाली है।

आंचलिकता की अप्रस्तुति :

(क) विभाषा-सोपान (डायलेक्ट-स्केल) :

'मैला आँचल' में सबसे महत्त्वपूर्ण यह विभाषिक चेतना ही है, जो आंचलिकता का समर्थ रेखांकन करती है। शब्द-स्तर पर इसे सामान्य और विशिष्ट शब्द-चयन तथा विशिष्ट शब्द-संयोजन की दृष्टि से रेखांकित किया जा सकता है। वाक्य स्तर पर सर्वाधिक आंचलिकता की छाप क्रिया-प्रयोग में प्राप्त होती है। उसके बाद ऐसे निपात का क्रम आता है, जो 'टैग' के रूप में व्यवहृत होते हैं।

इनके अतिरिक्त कहीं-कहीं रूपकात्मक वाक्य भी आंचलिक संवेदना और अभिव्यंजना का सम्पोषण करते हैं।

शब्द-स्तरीय विभाषिकीय चेतना :

सामान्य शब्द-चयन :

सामान्य शब्द-चयन में विभाषिकीय चेतना 'मैला आँचल' में अपभ्रष्ट शब्दों के चयन—तत्सम शब्दों के तद्भवीकरण—में परिलक्षित होती है। परिवेश और पात्रों के वास्तव का रेखांकन करने के लिए उपन्यासकार ने शब्द-चयन के इस अपेक्षित अनुषंग पर सम्यक् ध्यान दिया है। इसीलिए लेखकीय और पात्रीय दोनों प्रकार की भाषा मे 'मैला आँचल' मे उस अंचल की बोलचाल की शब्दावली के ऐसे शताधिक उदाहरण प्राप्त हो जाते हैं—परताप (प्रताप), भासन (भाषण) पृष्ठ 28, अरथ (अर्थ), सुमारग (सुमार्ग), बिरिछ (वृक्ष), बिसवास (विश्वास) दुरभाग (दुर्भाग्य), पृष्ठ 29, दुरोहित (द्रोही) 55, बन्दे महातरम् (वन्दे मातरम् 118, अपबित्तर (अपवित्र) 120, छिमा (क्षमा) 121, दुआर (द्वार) 136 आदि। रेणु' अपने अंचल की इस विभाषिकीय चेतना के सूक्ष्म द्रष्टा हैं। उनके यहां तद्भवीकरण अंग्रेजी और फारसी शब्दों का भी हुआ है। इससे कथा-पाठ मे एक सहज विश्वसनीयता का गुण आ गया है। इस तथ्य को नहीं समझने के कारण ही डॉ० इन्दु प्रकाश पाण्डेय ने यह आरोप किया है कि 'रेणु' ने "जान-बूझकर व्यक्तियों और स्थानों एवं वस्तुओं के नामों के उच्चारण भ्रष्ट कर उन्हें मैथिलीकृत किया है। परिनिष्ठित हिन्दी का यह मैथिलीकरण पात्रों और स्थितियों के सहज स्वभाव के अनुसार उतना नही किया गया है जितना एक चमत्कारपूर्ण शैली को जन्म दिया गया है, जिसके आधार पर 'मैला आंचल' की भाषा को न तो पूर्णिया जिले की भाषा कहा जा सकता है और न ही परिनिष्ठित हिन्दी। 'रेडियो' को 'रेडा' अथवा 'रेडी' कहने वाला बालदेव आधुनिक सभ्यता से उतना ही दूर है जितना 'रेडा' 'रेडियो' से !...यह भाषा का शैलीकरण है, जो सोद्देश्य है और सर्वत्र सहज एवं स्वाभाविक नहीं है।"[1] वास्तविकता यह है कि डाक्टर पाण्डेय स्वयं मैथिली के 'छिकाछिकी' रूप से परिचित नहीं हैं और न उस अंचल का ही उन्हें ज्ञान है। रेडियो को 'रेडा' और 'रेडी' कहकर उस अंचल में ही नहीं बिहार के अन्य ग्रामीण क्षेत्रों में भी 1955 ई० तक बड़ी सहजता के साथ पुकारा जाता था जबकि इस उपन्यास की काल-सीमा 1948 तक की है। वस्तुतः शब्दों के प्रयोग की ऐसी यथार्थता और पात्रीय संवेदना के तालमेल को स्थलीय अक्ष के साथ-साथ कालिक अक्ष के बन रहे क्रॉस पर देखना जरूरी होता है। इस ओर

1. डॉ० इन्दु प्रकाश पाण्डेय, हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों मे जीवन-सत्य (नयी दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1979), पृष्ठ 166-167

डॉ० पाण्डेय का ध्यान नहीं जा सका है। रेणु की विशेषता ही यह है कि वे यथावत् बोली जाने वाली भाषा के ध्वनिरूपों और शब्दरूपों को प्रस्तुत करने का प्रयास करते हैं। इस दृष्टि से उनकी कथाभाषा 'माइक्रोस्कोपिक गद्य' की भाषा सिद्ध होती है। उनकी दृष्टि मूर्तअंचल और अमूर्त काल दोनों को एक बिन्दु पर पकड़ती चलती है। डॉ० पाण्डेय को 'मैला आंचल' की इस विभाषिकीय चेतना से और भी शिकायत है। उनके अनुसार "जब वासदेव जी कालीचरण और उनकी पार्टी के हरगोरी सिंह से लड़ने के लिए चढ़ आने पर अनशन करता है तब लोग उसे 'गिआनी आदमी कहते हैं और इस 'गिआनी आदमी' के मुंह से साधारण हिन्दी के शब्द भी शुद्ध उच्चरित नहीं होते। वह कहता है 'अनसन', 'अंडोलन'।"[1] (पृष्ठ 19, 20) पर ध्यान देने पर यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि 'गिआनी आदमी' होना उसकी समाज-राजनीतिक जानकारी में निहित है, न कि भाषा पर उसके अधिकार का द्योतक। वह स्वयं कहता है—"हम तो सबों का सेवक हैं, मूर्ख हैं।" (पृष्ठ 27) कहना न होगा कि वह अकादमिक स्तर का ज्ञानी नहीं है। वह शहरी भी नहीं है, जिसे मार्जित हिन्दी आती हो। अतः उसके द्वारा 'अनसन' और 'अंडोलन' जैसे शब्दरूपों का उच्चारण पूरी तरह उसकी पात्रीय भाषा के ही अनुरूप है। इस विभाषिकीय चेतना के प्रति 'रेणु' बहुत-बहुत सावधान हैं। यहाँ खिलवाड़ पसंद करनेवाले कथावाचक की विनोदप्रियता एवं कलात्मकता भी नहीं है। मार्जित हिन्दी के ऐसे अपभ्रष्ट रूपों के मूल में वस्तुतः प्रयत्न-लाघव और भ्रामक व्युत्पत्ति के कारण ध्वनि-परिवर्तन होते रहते हैं और इसी से विभाषा का निजी भाषा-संसार सुसज्जित होता है, जो सामान्य व्यवहार्य या आधार-भाषा की पृष्ठभूमि में अप्रस्तुत हो पड़ता है।

विशिष्ट शब्द-चयन :

'मैला आंचल' में विभाषकीय चेतना शब्द-स्तर पर अपने महत्त्वपूर्ण रूप में द्रष्टव्य है। विभाषा के शब्द-प्रयोग से एक ओर आंचलिक वातावरण उत्सृजित हो उठा है, जिससे सन्दर्भ यथार्थ बना है, तो दूसरी ओर कथ्य की सम्प्रेषणीयता भी सटीकता पा गयी है। इस कृति में इस दृष्टि से जलपान के लिए 'बाल-भोग', भात के लिए 'प्रसाद' (पृ० 22), नित्य-क्रिया के लिए 'डोल-डाल', अंगीठी के लिए 'बुरसी', पत्नी के लिए 'आंगन वाली' (पृ० 31), अनाथ के लिए 'टुअर', लोमड़ी के लिए 'सेखसियारी' (पृ० 32), कठौत के लिए 'बोल' (36), भोजन के लिए 'बीजो' (38), पंक्ति के लिए 'आखर' (पृ० 46), टोटका के लिए 'तुक-ताक', आन्दोलन के लिए 'हुलमाल' (पृ० 52), सगाई के लिए 'चुमौना' (53), महंती के दस्तावेज के लिए 'सुरतहाल', छोटी जमींदारी के लिए 'पतनी' (पृ० 56),

1. डॉ० इन्दुप्रकाश पाण्डेय, हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में जीवन-सत्य (नयी दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1979), पृष्ठ 147.

आवारा के लिए 'विल्टो' (पृ० 57), वाद-विवाद के लिए 'बतकुट्टी', बदमाशों के लिए 'नढेलों' (पृ० 59), ठौरठिकाना के लिए 'तालपता' (पृ० 63) जैसे अनेक शब्दों के प्रयोग प्राप्त होते हैं। ये प्रयोग एक ओर उत्तारकीय भाषा में हुए हैं, तो दूसरी तरफ संवाद की भाषा में भी। इनसे विशेष रूप में विभापिकीय कोश की सामग्री मुहैया होती है।

विशिष्ट शब्द-संयोजन :

'मैला आंचल' में लोगों की बात करने की प्रणाली को शब्दों की विशिष्ट संयोजन-पद्धति के सहारे भी दर्शाया गया है। "वहां सुथ-संवाद सुनकर भी लोग कहते है—जुल्म बात, जुल्म हँसी, जुल्म खुशी, बंगला के भीषण सुन्दर की तरह।" एक खास किस्म से उपसर्ग लगाकर जब वे बोलते हैं तब भी वे अपनी विशिष्ट विभाषिक चेतना को ही स्पष्ट करते हैं—"इसी तरह उपसर्ग लगाकर सब बोलते हैं—कर-कचहरी, खर-खजाना, गर-गरामित, घर-घरहट, चर-चुमौना, जर-जमीन, पर-पंचायत, फर-फौजदारी, बर-बरात, मर-मुकद्मा या मर-महाजन।"

वाक्य-स्तरीय विभाषिकीय चेतना :

इस कृति में वाक्य-स्तर की विभापिकीय चेतना भी बड़ी सबल और यथार्थ है। एक उदाहरण लें—"सतसंग समाप्त होते ही भंडारी उपस्थित मूर्तियों की गिनती लेता है—रानीगंज के तीन गु मुरती तो आज सात दिन से धरना दे ले हयुन। जाय ला कहेहियेन त कहै हथिन बसु सरकार से आज्ञा ले ली है। वेला मठ के एक मुरती के बुखार लगलैन है। दुकान मे सबुरदाना न भेंटाई है।" (पृ० 25) 'मैला आचल' मे 'कहिन हैं', 'दीहिन है' जैसे क्रियात्मक वाक्यांश भी इस विभापिकीय चेतना को अग्रप्रस्तुत करते हैं। रामकृपालसिंघ 'गुसाई जी रमैन में कहिन हैं' (पृ० 11) बोलते हैं, तो बालदेव 'महसमा जी कहिन हैं' (पृ० 19) कहते हैं, महन्थ साहिब 'सतगुरु साहेब सपना दीहिन हैं' (पृ० 22) और 'हमको दया भाव दे के साहेव कहिन' (वही) जैसी क्रिया का प्रयोग करते हैं, तो लछमी 'सतगुरु साहेब कहिन है" (27) जैसी अभिव्यक्ति करती है। ऐसे सभी प्रयोग आंचलिकता की अग्रप्रस्तुति को सिरजते चलते हैं। इनके अतिरिक्त रूपकात्मक अभिव्यक्ति वाले वाक्य मे भी विभाषिक चेतना 'आचलिकता की अग्रप्रस्तुति' का रेखांकन करती है—"बालदेव जी, जरा 'ब' मे एक लाठी लगा दीजिए और 'द' के ऊपर क्या कहते हैं, एक तलवार सी।" (पृष्ठ 209)।

(ख) व्यक्ति-भाषा सोपान (इडियोलेक्ट स्केल) :

'मैला आंचल' की भाषा व्यक्ति-भाषा के वैशिष्ट्य के आधार पर भी महत्त्वपूर्ण है। इसे यहां आचलिकता के अनुषंग-रूप में ग्रहण किया जा सकता है। व्यक्ति-भाषा व्यक्ति-विशेष के द्वारा बोली जाने वाली भाषा का वह व्यव-

च्छेदक गुण होती है, जिसके आधार पर उसकी निजी पहचान बनती है। व्यक्ति-भाषा व्यक्ति-विशेष की चारित्रिक विशेषता के रूप में उपस्थित होती है। यह व्यष्टि-रंगत की पहचान बनकर आती है।[1] 'मैला आंचल' में ऐसे अनेक पात्र हैं, जिनके निजी व्यक्तित्व को उजागर करने में व्यक्ति-भाषा का योगदान दीखता है। तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद, ठाकुर रामकृपालसिंह, महन्त साहब, जोतिखी जी, बालदेव, कामरेड राजबल्ली जी—इन सबकी भाषा की कुछ वैयक्तिक विशेषताएँ हैं, जिनको 'रेणु' ने रूप-रंग देते हुए काफी अच्छी तरह उजागर किया है।

महन्त साहिब की भाषा में सम्बोधन में 'हो' शब्द का प्रयोग उनके निजी वैशिष्ट्य का द्योतन करता है—"सतगुरु, हो सतगुरु हो"····"हो रामदास आसन त्यागो जी···सत गुरु हो—हो जी रामदास।" (पृ० 20) जोतिखी जी 'शिव हो शिव हो' का प्राय: प्रयोग करते है—'शिव हो, शिव हो' (पृ० 14)'···शिव हो, शिव, हो।' (पृ० 27) रामकृपालसिंह प्रत्येक संदर्भ में 'गोसाईं जी' और रामायण की बात करते हैं। इसी तरह बालदेव महात्मा गाँधी की बात करता है। महन्त जी सतगुरु साहब को याद करके चलते है। बालदेव लोगों के नाम में 'जी' लगाता है। वह बिना 'जी' लगाए नही बोलता—"बालदेव जी सबों के नाम के साथ जी लगाकर बोलते हैं - ड्राइवर जी, ठेकेदार जी, हरिजन जी"(पृ० 36)। बालदेव जी जयहिन्द को बराबर 'जायहिन्द' उच्चरित करते है।'···"जायहिन्द कुठारिन जी" (पृ० 42) रामदास 'हाँ, समझ रखो'—जैसे तकियाकलाम का इस्तेमाल करता है। (पृ० 57) इन सभी की भाषा की विशेषताएँ यदि एक ओर आँचलिकता की सर्जना करती हैं, तो दूसरी ओर इन सबके व्यक्ति-वैशिष्ट्य को भी सामने उपस्थित कर देती हैं।

'मैला आंचल' के आरंभिक अंश में काशी से आगत अचारज गुरु के साथ एक नागा साधु आते हैं। नागा बाबा की व्यक्ति-भाषा में अश्लील शब्दों, अपशब्दों की भरमार है—"सूअर के बच्चे, कुत्ते के पिल्ले, तैं महन्त बनेगा, रे आ, उधर तुझको खड़ाऊँ से टीका दे दूं महन्ती का। तेरी बहन को (खटाक्) तेरी मां को (खटाक्) घसिमारे का बच्चा"····"छिनाल तै आचारज गुरु को गाली देती है? तेरी मुंह में कुल्हाड़े का डण्डा डाल दूँ, बोल। साली, कुत्ती! साधु का रगत बहाती है और बाबू लोग से मोंह चटवाती है।" (पृ० 82-83) अपशब्दों की इस भाषा के सहारे ही नागा साधु का व्यक्तित्व उभरता है। डाक्टर साहिब का पेशेन्ट को देखने के समय एक निश्चित किस्म का ढंग है।····"घबराइए

1. चार्ल्स एफ० हॉकेट, 'इडियोलेक्ट, डायलेक्ट, लैंग्वेज', अ कोर्स इन मॉडर्न लिंग्विस्टिक्स (न्यू डेल्ही : ऑक्सफोर्ड एँड आइ० बी० एच पब्लिशिंग कम्पनी, 1971), पृष्ठ-321

नहीं" (पृ० 87) यह वाक्यांश वह कई बार बोलते हैं। "कमला, इधर देखो कमला "यह भी डाक्टर का 'टैग फ्रेज' बन गया है। कालीचरण की व्यक्ति-भाषिक आदत 'चुप रहो, चुप रहो, शान्ति, शान्ति' करने की है। (पृ० 102) चुन्नीदास 'दुहाई गांधी बाबा' की रट लगाता है। बावनदास 'मानिक सीता राम, मानिक सीता राम' जैसी व्यक्ति-भाषा के सहारे अपनी पहचान बनाते हैं। (पृ० 129), सिनिया भुरमू की विशिष्ट हँसी ही व्यक्ति-भाषा का उदाहरण बन जाती है"'हं हं हं हं' (पृ० 171) इसके अतिरिक्त किसी पात्र या घटना के विषय में कुछ कहने से पहले "सुनिए, तहसीलदार साहिब बात यह हुई कि" की पद्धतिमूला आवृत्ति बालदेव की व्यक्ति-भाषा की पहचान कराती है। (पृ० 203) सुमिरतदास भी इसी ढंग से बोलता है—'बात यह है कि' (पृ० २07)। राजवल्ली जी तुतलाकर बोलते हैं—'भ-अ-अरे! कम—काम-रेड, उससे साफ ल-प-लप-लफजों में कह दीजिए कि फो-फो-फो-फो-ट्री-टी-टू के मुवमेंट मे अहिंसा के भरोसे रहते तो आ'''आ''' आ'''आज'''ग'''ग ही नसीब नहीं होती। उससे साफ लप'''लप'''लफजों में कह दीजिए कि तुम रि'''रि'''रि'''ऐक्शनरी हो। डि'' डि'' डि'''डिम डिमोरलाइज्ड हो। यह ले जाइये, 'डा'''डा'''डा'''डायले डायलेक्टिक—'द द'''द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद" (पृ० 81)।

ऊपर के उदाहरणों को ध्यान से देखने पर स्पष्ट होता है कि इस व्यक्ति-भाषा के मूल में कई चीजे क्रियाशील हैं'''कहीं धर्म क्रियाशील है, तो कहीं राजनीति, कहीं सजग सामाजिक चेतना क्रियाशील है, तो कहीं बौद्धिक स्तर और कहीं महज निजी अभ्यास। इन सबके कारण जहाँ 'मैला आंचल' की व्यक्ति-भाषा की बुनावट में अन्तर आया है, वहीं कुल मिलाकर यह व्यक्ति-भाषा आंचलिकता के भाषा-संसार को फलक-विस्तार प्रदान करती 'आंचलिकता की अप्रस्तुति' के रूप में अपना अपेक्षित और सार्थक स्थान भी सिद्ध कर गयी है।

अप्रस्तुति की आंचलिकता :

'मैला आँचल' में भाषिक 'अप्रस्तुति की आंचलिकता' की दिशा में अप्रस्तुति के चारों अभिकरण—समांतरता, विचलन, विपथन और विरलता क्रियाशील हैं।

समान्तरता :

प्रोक्ति-स्तर : अप्रस्तुति की आंचलिकता के अन्तर्गत 'मैला आंचल' में अप्रस्तुति का सर्वाधिक प्रमुख अभिकरण समांतरता है। यह प्रोक्ति-स्तर पर सर्वाधिक क्रियाशील है। इसका एक पहलू अंचल की हताशा, निराशा और कलुषता को मूर्त करने वाला है, तो दूसरा पहलू इन सब के बीच अटूट जिजीविषा, मांगलिक

विश्वास और कर्तव्यपरकलता का संचार करने वाला। पहले अभिगम मे 'अंचल के मैला होने की', 'रुदनशीलता' की और 'आत्मीयता' की समांतर अप्रस्तुति उद्भूत होती है, तो दूसरे अभिगम में 'सुगन्धि' की; 'नीलोत्पल' की और 'मिट्टी तथा मनुष्य से मुहब्बत' की प्रोक्तिस्तरीय समांतर अप्रस्तुति उभरती है।

प्रथम अभिगम :

'अंचल के मैलापन' की समांतरता :

उपन्यास के आरंभ मे ही उत्तारक (नैरेटर) उस अंचल का परिचय देता है—"तहबन्ना के बाद ही एक बड़ा मैदान है, जो नेपाल की तराई से शुरू होकर गंगा जी के किनारे खत्म हुआ है। लाखों एकड़ जमीन। बन्ध्या धरती का विशाल अंचल। इसमे दूब भी नहीं पनपती है। बीच-बीच में बालूचर और कहीं-कहीं बेर की झाड़ियां।" (पृ0 11) यह प्राकृतिक अंचल का मैलापन है, जिसे रेखांकित पंक्ति ध्वनित करती है। दूसरी प्रोक्ति अन्तर-पाठीय विचलन (इंटर-टेक्स्चुएलिटी) के सहारे समांतरता को जन्म देती है—"भारत माता ग्रामवासिनी/खेतों में फैला है श्यामल, धूलभरा मैला सा आंचल/ ···मैला आंचल-लेकिन धरती माता अभी स्वर्णांचला है।" (पृ॰ 116) यहां पंत की काव्य-पंक्ति 'मैला आंचल' की अर्थवत्ता को इस पूरे अंचल पर प्रक्षेपित करती है। पर तभी तात्कालिक स्वर्णांचलता विरोधिता के सहारे प्रकृति मे इसका निषेध कर देती है। यहां 'मैला आंचल' की अर्थवत्ता उस अंचल के विविध मानवीय संदर्भों और व्यापारों से जुड़ जाती है। पुनः प्रोक्ति आती है—"ममता बाहर की ओर देख रही है—विशाल मैदान।···वन्ध्या धरती !·· यही है वह मशहूर मैदान—नेपाल से शुरू होकर गंगा किनारे तक—वीरान, धूमिल अंचल !" (पृष्ठ 176) यहां प्राकृतिक अंचल के मैलापन की अर्थवत्ता और प्राकृतिक और मानवीय दोनों के मैलापन की सम्पूर्ण (टोटल) अर्थवत्ता का स्वाभाविक संग्रहण हो पड़ता है। पुनः प्रोक्ति आती है—"मैं साधना करूंगा, ग्रामवासिनी भारतमाता के मैले आंचल के तले !" (पृ॰ 180) यहां यह समांतरित पंक्ति इस विशेष अंचल के मैलापन से अधिक आगे बढ़कर ग्राम्यांचल के मैलापन का अर्थ खोलती है, जहां डाक्टर प्रशान्त साधना करने का संकल्प लेता है।

रुदन की समांतरता :

'मैला आंचल' में प्रोक्ति-स्तरीय समांतरता के सहारे जिस सबसे बड़ी अर्थ-लय की सृष्टि होती है, वह अप्रस्तुत अर्थ-लय है रुदन की, भारत-माता के रोने की। इसके लिए रचनाकार ने विचलित रूप मे एक लोक गीत के बोल भी मुखर किये हैं—"गंगा रे जमुनमां की धार नयनवां से नीर बही। फूटल भारथिया के भाग'' भारथ माता रोई रही।" यह लोकगीतात्मक प्रोक्ति बार-बार आवर्तित होती है। राम किसुन बाबू की 'माए जी' के व्यक्तित्व में भारतमाता

को मूर्त कर इस संदर्भ को उजागर किया गया है (पृष्ठ37)। वैयक्तिक सन्दर्भ में रामकिसुन बाबू के स्वर्गस्थ हो जाने पर रचनाकार इस सन्दर्भ को पुन: गहराता है। प्रोक्ति देखिये—"उस दिन माए जी की ओर कौन देख सकता था। देखने की हिम्मत नहीं होती थी। माएजी का उस दिन का रूप'''गंगा रे जमुनवा की धार नयनवाँ से नीर बही। टूटल भारथिया के भाग, भारथमाता रोई रही।" (पृष्ठ 38)।

पहले खण्ड में बालदेव जी को माए जी की याद आती रहती है—"माए जी का वह रूप—गंगा रे जमुनवाँ की धार नयनवा से नीर बही।" (पृष्ठ 49) बावनदास के सन्दर्भ मे भारतमाता की यह रुदनशीलता पुन: उभरती है। बालदेव जी के कथन में प्रोक्ति आवर्तित होती है—"याद है दास जी चनपट्टी की सभा, तैवारी जी का लेक्चर और तनुक लाल जी का गीत याद करके आज भी रोवां कलप उठता है।" गंगा रे जमुनवां की धार'''।" नीद नही आने की स्थिति मे झूलता बावनदास बालदेव से कहता है—"लेकिन भारत माता अब भी रो रही है बालदेव।" अर्थ धीरे-धीरे उठता है। बालदेव जी चौंक उठते हैं। प्रोक्ति उभरती है— "भारथ माता अब भी रो रही हैं? क्या कहता है बावनदास?" रचनाकार पिकेटिंग के साथ-साथ तस्करी और भ्रष्टाचार का सन्दर्भ सामने रखता है और वहां इस प्रोक्ति से एक बड़ी अर्थ-लय पैदा करता है—"भारथ माता और भी जार-बेजार रोती है।" (पृष्ठ 136) लेकिन बालदेव जी की समझ में कोई बात नही आ रही—भारथ माता जार-बेजार रो रही है? रचनाकार आगे तारावती जी के एकात में बावनदास का प्रसंग चित्रित करता है, जहां उसके मन की सारी वासना उभर आती है, वहाँ भी बावनदास यह अनुभव करता है कि "भारथ माता जार-बेजार रो रही है।" (पृष्ठ 142) भारथमाता के इस रुदन को बालदेव जी लछमी दासिन को सामने बिठाकर उससे तुलना कर देखते हैं'''। "बालदेव जी को लछमी दासिन की याद आती है— वह भी रो रही थी।" (पृष्ठ 142) फिर बावनदास और बालदेव जी का प्रसंग आता है, बावनदास की चिट्ठी को शशांक जी ने पढ़कर सुनाया है। बावनदास जी को यह चिट्ठी महात्मा जी ने लिखी थी। इस सन्दर्भ की प्रोक्ति कितनी अप्रस्तुत हो रही है—"बावनदास को महात्मा जी भगवान कहते थे। बावन जरूर अवतारी आदमी है। वह ठीक कहता था— 'भारत माता और भी जार-बेजार रो रही है।" 'यहां भारत माता के रुदन के साथ संथालों के रुदन की प्रोक्ति को रचनाकार ने संश्लिष्ट कर दिया है। उन पर जमींदार के आदमी के द्वारा किया गया आक्रमण। मैया-रे-मैया, बाबा-रे-बाबा की चीख। रचनाकार स्पष्ट करता कि—"कौन रोती है'''?" "राम पियरिया रोती है, उसके माई गनोरी को तीर लग गया, कहां गया? किसने मारा?" (पृष्ठ 202)

ऐसा ही एक और प्रोक्ति-संश्लेष रुदन के सन्दर्भ में—सिर्फ 'मां' की रुदनशीलता का हुआ है—"पूंजीवादी हो या बुर्जुआ आखिर वह बचपन का साथी था। वह आज नहीं है। उसकी मां रो रही है। यह हरगोरी की मां नहीं रो रही है—सिर्फ 'मां' रो रही है।" (पृष्ठ 213)।

पुनः बालदेव को 'भारथमाता' की प्रतीति होती है। रुदन के कई वलयों से गुजरती यह प्रोक्ति यहां आकर अब रुदन का मर्म उन्मीलित करती महत्व-पूर्ण रूप से अप्रस्तुत हो जाती है—"यही रूप है, ठीक यही रूप है, जिनके पैर खून से लथपथ हैं, जिनके बाल बिखरे हैं। बावनदास कहता था, भारतमाता जार-बेजार रो रही हैं, नहीं मां रो नहीं रही हैं, अब पंथ बता रही हैं। उचित पंथ पर अनुचित कर्म करने वालों को चेता रही हैं।" (पृष्ठ 221)

रोने की एक और प्रोक्ति आगे आती है—"हां भई, हंसने की बात नहीं, बात रोने की है। कालीचरन मुझे तो कुछ बोलना नहीं चाहिए, लेकिन⋯मत समझना कि संथालों की जमीन छुड़ा कर ही जमींदार संतोष कर लेगा। अब गांव के किसानों की बारी आयेगी और तुमको तथा बालदेव जी को ही उन्होंने अपना पहला हथियार बनाकर इस्तेमाल किया है। यह रोने की बात नहीं ?" (पृष्ठ 224-225) *यहां इस प्रोक्ति की समांतरित अर्थ-लय जीवन-यथार्थ पर अधिकाधिक आधारित हो जाती है। अमूर्तन से मूर्तन की ओर और सामान्य कथन से विशेष केन्द्रण की ओर हमें इसकी अप्रस्तुति बढ़ा ले चलती है।*

'मैला आंचल' के दूसरे खण्ड में राष्ट्रपिता गांधी की हत्या के बाद भारतमाता की रुदनशीलता को पुन: प्रोक्ति-स्तरीय समांतरता के सहारे अप्रस्तुति प्राप्त होती है। भीड़ से मुखर हो रही 'रघुपति राघव राजा राम' की प्रार्थना के बाद रचनाकार लिखता है—"बावन ठीक ही कहता था भारथ माता और भी जार-बेजार रो रही है। बालदेव जी का सारा शरीर सुन्न हो गया है। कमला की आंखें महात्मा जी के महाप्रकाश से चौंधियाती हैं। एक संदृष्टि (विजन)-सी मिलती है। महात्मा जी कमला को जैसे कहते हैं—"रोती है क्यों मां⋯⋯ मां रोती क्यों है ? दूसरी ओर कमली की मां कमली को समझाती है—"मत रोओ बेटी।" कमली को डाक्टर की रुदनशीलता याद आती है— "डाक्टर को कौन ढाढ़स बंधाता होगा—मत रोओ डाक्टर...मत रोओ।" (पृष्ठ 306), यहां व्यापक समष्टिमूलक रुदनशीलता से लेकर संकुचित वैयक्तिक रुदनशीलता तक की कई-कई अर्थ-छायाएँ अप्रस्तुत हो रही हैं।

गांधी जी की मृत्यु पर रन्थी निकली है। एक दूसरी लोक-गीतात्मक प्रोक्ति उभरती है—"घड़ी भर डोली बिलमांव। माई जे रोवे"⋯⋯⋯और मां रो रही है। भारथमाता रो रही है।" रुदनशीलता राष्ट्रीय रूप में अप्रस्तुति प्राप्त कर रही है।

प्रोक्ति-स्तर पर रुदनशीलता की अन्तिम समांतरता लछमी के रोने में रेखांकित होती है। बालदेव जी जब बावनदास की मृत्यु के बाद गांधी जी वाली उसकी चिट्ठियों को गांगुली साहब को नहीं देकर अपने साथ वापस लेते हैं और रात में उसे धूनी में जला डालना चाहते हैं, तब लछमी कलेजे से उस चिट्ठी वाले बस्ते को चिपका कर खड़ी हो जाती है। उसे आग लग जाती है। कमर से लिपटा कपड़ा गिर जाता है—"हे भगवान् ! सतगुरु हो !जै गांधी जी !—बाबा—जै बावनदास जी ! हूँ : हूँ :। लछमी रो रही है। वस्त्रहीन खड़ी लछमी रो रही है।" और जब सवेरा होने पर बालदेव जी के चरणों पर लछमी 'साहेब बंदगी' करती है, उन्हें जगाती है, तब "बालदेव रोते हैं—सिसकियाँ लेकर ल···छ···मी।" (पृष्ठ 269-262)।

इस प्रकार 'भारत माता रोई रही' की समांतरित अर्थ-लय भारत माता की अमूर्त कल्पना से भारत में रहने वाली नारियों के मूर्त यथार्थ तक विविध क्लेश और दु:ख के सन्दर्भों में अपना अर्थ-विस्तार करती है। 'मैला आंचल' की यह प्रोक्ति अर्थ-लय को कहीं अधिक गहरा देती है। रेणु ने पूर्णिया जिले की इस गाँव को 'मैला आंचल' माना है पर क्या पूरा देश इसी का वृहत् संस्करण नहीं है?

जातीयता की समांतरता :

'रेणु' गंभीर अर्थ-सर्जना करने वाले कथाकार हैं। भाषिक समांतरता का अभिकरण यहाँ प्रोक्ति स्तर पर एक और बड़ी अर्थ-लय की सृष्टि कर रहा है, जातीयता की अर्थ-लय की। 'मैला आंचल' भयानक जात-पात की रोगग्रस्तता में जकड़ा आंचल है। उपन्यास का आरम्भ होते ही रचनाकार परिचय देता है— "गाँव में जाति के आधार पर ही टोले बने हैं— पोलिया टोली, तन्त्रिमा-क्षत्री टोली, यदुवंशी-छत्री टोली, धनुकधारी छत्री टोली, रैदास टोली"। रचनाकार लिखता है—'अब गांव में तीन प्रमुख दल हैं—कायस्थ, राजपूत और यादव। ब्राह्मण लोग अभी भी तृतीय शक्ति हैं। गांव के अन्य जाति के लोग भी सुविधानुसार इन्हीं तीन दलों में बंटे हैं—कायस्थ टोली को गाँव के अन्य जाति के लोग मालिक टोली कहते हैं। राजपूत टोली के लोग कहते हैं 'कैंयटोल'—कायस्थ टोली के लोग राजपूत टोली को 'सिपाहिया टोली' कहते हैं।' (पृष्ठ 16)

'मैला आंचल' में जातीयता की ऐसी प्रोक्ति बार-बार आती है। आत्मीयता, अपनत्व, ग्रहणशीलता यहाँ सबके मूल में जाति विद्यमान है—'उसी दिन से सिंसावन सिंह यादव बालदेव को अपने यहाँ रहने के लिए आग्रह कर रहे हैं। जात का नाम जात की इज्जत तो तुम्हीं लोगों के हाथ में है। तुम कोई पराये हो ?' (पृष्ठ 18)। परिचय के साथ-साथ लोग जाति जानना चाहते हैं। 'ब्राह्मण

टोली के लोग बालदेव जी से पूछते हैं, 'डागडर बाबू का नौकर तो दुसाध है। और डागडर बाबू कौन जात हैं? दुसाध का बनाया हुआ खाते हैं?' (पृष्ठ 39)

नौवें परिच्छेद के आरम्भ में उपन्यासकार लिखता है—"डाक्टर प्रशान्त कुमार! जात?... नाम पूछने के बाद ही लोग यहाँ पूछते हैं—जात? जीवन में बहुत कम लोगों ने प्रशान्त से उसकी जाति के बारे में पूछा है। लेकिन यहाँ तो हर आदमी जाति पूछता है। प्रशान्त हँस कर कभी कहता है—जाति? डाक्टर! डाक्टर! जाति डाक्टर! बंगाली है या बिहारी? "हिन्दुस्तानी", डाक्टर जवाब दे देता है। जाति बहुत बड़ा चीज है। जात-पात नहीं मानने वालों की भी जाति होती है। सिर्फ हिन्दू कहने से ही पिंड नहीं छूट सकता। ब्राह्मण हैं? ...कौन ब्राह्मण? गोत्र क्या है? मूल कौन है?" (पृष्ठ 44-45)

'रेणु' 'कामरेड' शब्द की व्याख्या करवाते हुए यह तथ्य नोट करवाते हैं कि 'कामरेड' का अर्थ 'साथी' है। यहाँ कोई 'लीडर' नहीं है। सभी साथी हैं और सभी लीडर है। इस प्रकार जहा वे 'लीडर' और 'फॉलोवर' के अलग-अलग वर्ग को तोड़ते हैं, वहीं लगे हाथ जाति की विभिन्नता की चेतना से जकड़े समाज की मानसिकता का भी परिचय प्रस्तुत कर बैठते हैं। जो पात्र 'कामरेड' की समतावादी व्याख्या करता है वही पूछता है, "अच्छा कामरेड, आपके गाँव में सब से ज्यादे किस जाति के लोग हैं? ...यादव। ठीक है। भूमिहार? ...एक घर भी नहीं? गुड!" (पृष्ठ 81)

जाति की दृष्टि रखने वाले इस गाँव के लोगों के मुहँ से उनकी जाति-विषयक मानसिकता पर 'रेणु' ने बड़ा गहरा व्यंग्य किया गया है : "बम फोड़ दिया फटाक से मस्ताना भगत सिंह···है। वाह रे सुनरा। क्या संभाला है। वाह! भारत का वीर लड़का था। मस्ताना भगतसिंह! सिंह! भगतसिंह कौन जात था?' (पृष्ठ 212) तभी जिला कांग्रेस सभापति के चुनाव में बावनदास सोचता है—'अब लोगों को चाहिए कि अपनी-अपनी टोपी पर लिखवा लें भूमिहार, राजपूत,—कायस्थ—हरिजन—यादव। कौन काजकर्ता किस पार्टी का है समझ में नहीं आता।' (पृष्ठ 182)

जाति-चर्चा की इस पृष्ठभूमि में 'रेणु' 'मैला आंचल' में आगे आकर विरोधी समांतरता की सृष्टि करते हैं "जात क्या है, जात दो ही हैं 'एक गरीब और दूसरी अमीर' खेलावन को देखा, यादवों की ही जमीन हड़प रहा है। देख लो आँख खोलकर गाँव मे सिर्फ दो जात हैं। अमीर-गरीब।" (पृष्ठ 180) यह प्रोक्ति पहले और बाद की सभी जाति-विषयक समांतरित अप्रस्तुति को पृष्ठभूमि में डालकर स्वतः अप्रस्तुत हो उठती है तथा जाति-वैभिन्न्य विषयक वर्तमान मान्यता का खंडन कर जाति की सही वर्गीयता का रेखांकन करती है: जातियां दो ही है: अमीर और गरीब! कहना न होगा कि

यहाँ तक आते-आते यह बेलाग भाषा विरोधी और समतामूलक दोनों ही प्रकार की समातरता के सहारे अप्रस्तुत हो उठती है। सामान्य जाति-चर्चा की पहले आयी प्रोक्तियों के प्रतिकूल यहाँ विशिष्टतः और सत्यतः अमीर-गरीब जाति के रेखांकन के कारण विरोधी और इसी प्रोक्ति के क्रमशः दो बार उपस्थित होने के कारण समता मूलक समातरता। फिर तो यह अर्थ जैसे पूरे उपन्यास पर छा जाता है। सचमुच जाति की जिस चेतना से गाँव के लोग प्रायः मुक्त नहीं हो पाते, उसे खण्डित कर सही जाति-भेद को दर्शा देने का काम यहाँ अप्रस्तुति की आंचलिकता ही सम्पन्न करती है।

द्वितीय अभिगम :

सुगंध की समातरता :

सुगंध की प्रोक्ति स्तर पर समान्तरता 'मैला आंचल' में विशेषविधा की अर्थलय की सृष्टि करती हुई चलती है। सुगन्ध का एक सन्दर्भ आता है। सुगन्ध भी नारी शरीर की है। रेणु लिखते हैं""लछमी के शरीर से एक खास तरह की सुगन्ध निकलती है'''बालदेव को तो रामनगर मेला के दुर्गा मन्दिर की तरह की गन्ध लगती है, मनोहर, सुगन्ध, पवित्र गन्ध'''। औरतों की देह से तो हल्दी, लहसुन, प्याज और घाम की गन्ध निकलती है।" (पृष्ठ 35) इस प्रोक्ति में लछमी की शारीरिक सुगन्ध को मन्दिर की गन्ध से समान्तरित किया गया है और समतामूलक समान्तरता की दृष्टि से उसे मनोहर और पवित्र बताया गया है। पुनः विरोधी समान्तरता के लिहाज से इस गन्ध को हल्दी, लहसुन, प्याज और घाम की घृण्य गन्ध की पृष्ठभूमि में अप्रस्तुत किया गया है।

छठे अध्याय में बालदेव की मानसिक स्थिति का वर्णन किया गया है। उसे बार-बार लछमी दासिन की याद आती है। आते समय कह रही थी, 'आज यहीं परसाद पा लीजिए बालदेव जी'''परसाद। लछमी के शरीर की सुगन्ध।" (पृष्ठ 36) यहाँ तक आते-आते इस प्रोक्ति की सुगन्ध अर्थ की लय सजाने लगती है। पुनः सुगन्ध का सन्दर्भ आता है। लछमी के माला नहीं पहनने की प्रोक्ति उभरती है। माला ले कर वह बालदेव को पहना देती है। (पृष्ठ 38) गेंदे के फूलों की माला। फूल से लछमी के शरीर की 'सुगन्धी' निकलती सुगन्धकी प्रोक्ति साबुन के सन्दर्भ में भी प्रस्तुत होती है—"अरे कपड़ा धोने वाला साबुन नहीं, गमकउआ साबुन चाहिए। तहसीलदार साहिब की बेटी कमली जब गमकउआ साबुन से नहाती है तो सारा गाव गमगम करने लगता है।" (पृष्ठ42) इस प्रकार सुगन्ध की एक-पर-एक प्रोक्ति-शृंखला बनती चली जाती है—"बीजक से भी लछमी के देह की 'सुगन्धी' निकलती है। इस सुगन्ध में एक नशा है। इस पोथी के हरेक पन्ने को लछमी की अंगुलियों ने परस किया है।" (पृष्ठ 53) बालदेव को इस सुगन्ध में मनोहर अनुभूति होती है। प्रोक्ति सामने आती है—"बालदेव जी को फिर लछमी के देह की सुगन्ध लगी है। कितनी मनोहर।" (पृष्ठ 124)

सुगन्ध की प्रोक्तियों में मानवी काया की गन्ध की पुनः एक दूसरी प्रोक्ति आती है। परन्तु यह गन्ध लछमी की न होकर फुलिया की है—"फुलिया की देह से अब घाम की गन्ध नहीं निकलती, सौंफ, दालचीनी खाने से मुंह गमकता है।"(पृष्ठ 179) फिर लछमी की सुगन्ध की प्रोक्तिया—"लछमी बालदेव की आंखो मे आंखें डाल कर देखती है। लछमी जब-जब ऐसे देखती है बालदेव न जाने कहां खो जाता है। एक मनोहर सुगन्ध हवामें फैल जाती है, पवित्र सुगन्ध। बीजक के जैसी सुगन्ध निकलती है।"(पृष्ठ 219) "लछमी के रोम-रोम से पवित्र 'सुगन्धी' निकलती है, चंदन की तरह शीतल गन्ध निकल रही है। बालदेव का मन इस सुगन्ध मे हेल-डूब कर रहा है। वह लछमी को छोड़कर चंदनपट्टी में कैसे रह सकेगा।" (पृष्ठ 220) यहां बालदेव के लिए चंदन नाम वाली बस्ती सुगन्धहीन और उससे बाहर रहने वाली लछमी विरोधमूला समांतरता की दृष्टि से सुगन्धपूर्ण बन जाती है। प्रोक्ति पुनः पुनः उभरती है—"बालदेव जी आंख मूंद लेते हैं।"'लछमी की देह से जो 'सुगन्धी' निकलती है वह आज और तेज हो गयी है। लछमी की आवाज कांप रही है, रो रही है लछमी।' (पृ०269) "बालदेव जी कुछ सोच कर बैठ जाते हैं।"'लछमी की देह से गन्ध निकलती है। चुपचाप लछमी की ओर देखते हैं वे। लछमी चुपचाप किवाड़ के सहारे खड़ी आंसू पोंछते हुए सिसकती है।" (पृष्ठ 292)।

सुगन्ध का यह सन्दर्भ प्राकृतिक प्रोक्ति में भी उभरता है—"गुलमुहर के लाल-लाल फूल बुझ गये और अमल-तास की पीली ओढ़नी न जाने कब सरक कर गिर पड़ी, किन्तु योजनगंधा अब भी पागल बना रही है।" (पृष्ठ 155)

इस प्रकार 'मैला आंचल' मे प्रोक्ति स्तर पर 'सुगन्ध' की जो समान्तरता उत्पन्न होती है, वह समतामूलक है और विरोधमूलक भी, प्राकृतिक है और मानवीय भी। लछमी की शरीरी गन्ध भी है और फुलिया की भी। प्रोक्ति की यह समांतरता एक प्रभावी अर्थ-लय की सृष्टि करती है। लछमी के सन्दर्भ में यह अर्थवत्ता और गहरी हो जाती है और उसकी चरित्रवत्ता और शीलमयता को उजागर करने लगती है। भाषा अपने इस तेवर में अर्थ से भर उठती है, अप्रस्तुत हो जाती है।

'नीलोत्पल' की उत्पत्ति की समांतरता :

'मैला आंचल' में आशा, विश्वास और जीवन के मांगलिक पक्ष को निर्दिष्ट करने वाली सुगंध की समांतरता की ही तरह नीलोत्पल की उत्पत्ति-समांतरता प्राप्त होती है। 'मैला आंचल' में इस प्रोक्ति-स्तरीय समांतरता के तीन स्तर हैं। पहले स्तर पर यह प्रोक्ति प्राकृतिक है—"भुरुकुआ तारा जगमग कर रहा है। कमला नदी के गले में उसकी छाया झिलमिला रही है। लगता है, नीलकमल

खिला है।' (पृष्ठ 373) दूसरे स्तर पर यह मानवीय तथ्य की वास्तविक प्रोक्ति है—"कुमार नीलोत्पल की आज बरही है। हाँ, ममता ने कमला के पुत्र को नाम दिया है—कुमार नीलोत्पल"। (पृष्ठ 378) तीसरे स्तर पर यह बृहत्तर मानवीय सत्य की आश्वस्तिपूर्ण भविष्य-प्रतीति बन जाती है—"व्याघ्रों के अट्टहास से आकाश हिल रहा है। छोटा-सा, नन्हा-सा हिरण हाँफ रहा है। छोटे फेफड़े की तेज धुकधुकी... ...नीलोत्पल ! नहीं, नहीं, यह अंधेरा नहीं रहेगा। मानवता के पुजारियों की सम्मिलित वाणी गूंजती है—पवित्र वाणी ! उन्हें प्रकाश मिल गया है।" (पृष्ठ 379)

'मिट्टी और मनुष्य से मुहब्बत' की समांतरता :

'मैला आँचल' में यहाँ की मिट्टी और मनुष्य से डॉक्टर प्रशान्त के मोह और प्रेम को दर्शाने वाली प्रोक्ति कई बार आवृत्त होती है। छतीसवें अध्याय के आरम्भ की प्रोक्ति इसे पहली बार रेखांकित करती है—"डॉक्टर पर यहाँ की मिट्टी का मोह सवार हो गया है। उसे लगता है मानो वह युग-युग से इस धरती को पहचानता है। यह अपनी मिट्टी है।" (पृष्ठ 157) आगे चलकर उत्तारक नहीं बोलता। ममता इस तथ्य का रेखांकन करती है—"कोई रिसर्च कभी असफल नहीं होता है डॉक्टर ! तुमने कम-से-कम मिट्टी को तो पहचाना है।... मिट्टी और मनुष्य से मुहब्बत छोटी बात नहीं।" (पृष्ठ 376) कथा के थोड़ा और आगे बढ़ने पर पुन. ममता कहती है..."उसका रिसर्च...असफल नहीं हुआ है। मिट्टी और मनुष्य से इतनी गहरी मुहब्बत किसी 'लेबोरेटरी' में नहीं बनती।" (पृष्ठ 379) वस्तुतः यही मुहब्बत गाँव में नये सिरे से उसके उत्थान के लिए किये जाने वाले कार्य को, जानवर को इन्सान बनाने के दायित्व को और डॉक्टर के सेवा-साधना करने के संकल्प को गहराती हुई अर्थ-संपन्न कर जाती है।

विचलन :

ध्वनिस्तर :

'मैला आँचल में ध्वनि-स्तर पर भाषिक विचलन के एक-पर-एक तेवर देखने को मिलते हैं। एक तेवर 'रेणु' की निजी आंचलिकता के अनुरूप कथा-भाषा की उत्तारकीयता और संलाप-मूलकता के बीच ध्वनि-स्तर पर उभरने वाले उस विचलन का है, जिससे श्रोत बिम्ब उत्पन्न होता है और परिवेश का यथार्थ कथा के पूरेपन में उभर कर सामने आ जाता है। सामान्यतः कथा की गद्य-भाषा में ध्वनियों के इतने सूक्ष्म पर्यवेक्षण और उसके तद्वत् अंकन-निरूपण का अवकाश नहीं होता है। 'रेणु' ने कथा-भाषा के इस मानक से विचलन करते हुए इनका रेखांकन किया है, वह भी इस तरह कि कहीं भी आरोपित प्रतीत नहीं होकर यह उपन्यास का यथार्थ और महत्त्वपूर्ण अंश बन गया है।

'मैला आँचल' में इस दृष्टि से मानवीय और उपकरणमूलक दोनों ही प्रकार

की ध्वनियाँ आयी हैं। यहां हँसने की ध्वनि—'हा-हा-हा-हा हा—खी-खी-खी-खी-खी-खी,' अखाड़े के ढोल की ध्वनि—'ठक—ठिन्ना ठक-ठिन्ना', सुर देने वाली शहनाई की ध्वनि—'भो अं अं अं अं अं', खंजड़ी में लगी छोटी झुनकियों की ध्वनि 'डिमक-रुन झुनुक-झुनक', तुरही की ध्वनि 'धुनु तु तु तु'''धु तु तु तु', ढोल की आवाज 'ढक-ढिना-ढक-ढिना' और उसके बदलते हुए ताल की ध्वनि 'चट-दा गिदा-धागी-डागी धागी-डागी चटाक-चटधा गिड्धा गिड्धा ढाक-धिन्ना टिरकत-धिन्ना' निरूपित हुई है। अखाड़े में बजने वाले ढोल और काली-थान की पूजा में बजने वाले ढोल की ध्वनि का अन्तर भी विचलित धरातल पर ही उपस्थित हुआ है। इसमें मृदंग की ध्वनि-'धिन्ना-धिन्ना, धिन्ना-धिन्ना धिन्ना-धिनतक धिन्ना। धिनिक-धिनिक-धा तिरकट-धिन्ना'—और नाच का ताल देने पर 'धिरनागी-धिन्ना, तिरनागी तिन्ना, धिनक-धिन-ता तिरकट-गद-धा' की ध्वनि भी उपस्थित की गई है। यहां हँसने की ध्वनि पुनः आई है—'ओ-ओ-खी-खी-हा-हा' तो पंछी के पंख फड़फड़ाने की ध्वनि 'फर्र-र-र-र-र-र', तो मंदिर की मंद आवाज 'रिंग-रिंग ता-धिनाता-धिन-डिंगा' की अटूट ताल 'डा-डिग्गा' भी मुखर हुई है। 'मैला आँचल' में सीटी फूँकने की ध्वनि 'टू-टू टू टू-टूटू' है तो कोड़े बरसाने की ध्वनि 'छपाक-छपाक्'भी है। यहाँ मेंढकों की टरटराहट की आवाज—'टर्र-रमेंक—टुर्र र र र—मंकू। झि-झि-चि-कि र-किर-किर्र-सि, किटिर-किटिर। झि''''''टर्र' हैं तो धरती पर उतरते हुए बादलों की दौड़ 'छररर ! छरछरर !' यहाँ कथा-भाषा के सीधे प्रवाह को रोक कर दृश्य का श्रोत प्रत्यक्ष करा देने वाली विचलित ध्वनियों का मेला-सा लगा है। इससे अंचल अपने एक-एक ध्वनि-एकक के साथ पाठकों से सीधा सम्पर्क स्थापित कर लेने की स्थिति में आ जाता है। स्थानीय रंगत को इससे अद्भुत रेखांकन प्राप्त हो जाता है। इस मेले में मादल की ध्वनि 'गुड़-गुड़म, गुड़-गुड़म' है तो संथालों के डिग्गा की ध्वनि' डा-डां' है, और है फिर मादल की, 'रिंग-रिंग'तथा खंजरी की 'डिम-डिम-डिमिक।' मांदर और डिग्गा की ध्वनि 'रिंग-रिंग-डी-डा-डा, और है शंख फूँकने की ध्वनि 'धू'''ऊ ऊ ऊ ऊ' 'घड़ी-घंटा की ध्वनि' 'डं-डगच, डां डां' है तो अंग्रेजी बाजा की ध्वनि 'भो-ओं-ओं-पों-पों' है। चमर टोल वालों की पिपही की ध्वनि 'पीं-पी-पी ई-ई' है, तो करनाल की ध्वनि 'धू-धू-धू-धू-धु धुत, धुथ' है। यहाँ घोड़े की हिनहिनाहट की ध्वनि'''हिं-हिं-हिं है, तो छोटी ढोलकी की ध्वनि''''भो-ओय-ओ-ओ' और नौटंकी के नगाड़े की ध्वनि-'किर्र र-र धन-धन धड़ाम-धा-धड़ाम-धा' भी है।

ध्वनिगत विचलन का एक और रूप संस्कृत नाटकों के प्राकृत पात्रों की तरह 'मैला आँचल' के ज्योतिखी जी द्वारा 'स' की जगह 'श' के व्यवहार में दीख पड़ता है।' 'रेणु' ने इसी विचलन के सहारे अप्रस्तुत किया है—"ज्योतिखी ने मुस्कराते हुए कहा,—'आज शोशलिष्ट लोग शोक शभा करने गये। एक भी आदमी शभा में नहीं गया। अब सोग शभा का अर्थ समझ रहे हैं। हूं, कोई बात

हो तो फुच्च से शमा।' (पृष्ठ 184)

इस कृति में ध्वनियों का एक बड़ा ही खूबसूरत प्रयोग डा० प्रशान्त और कमली के परिष्वंगाश्लेष को, उनके मिथुन-मिलन को अभिव्यक्त करने में हुआ है, जहाँ कमली डाक्टर की बाँहों मे जकड़ी हुई है—'कमली ने बाँह छुड़ाने की एक हलकी-सी चेष्टा की।"

विजली चमकी !
गुड़-गुड़म। गुड़ गुड़म !
रिं-रिं ता-धिन-ता !
डिग्गा-डा-डिग्गा।

संथाली नाच के मांदर और डिग्गा के ताल पर दोनों की धुक-धुकी चल रही है। छम-छम···आज कमली इस इलाके मे पहने जाने वाले सभी किसम के गहनो से लदी है···बाँक, हँसुली, बाजू, कंगना, अनंत, चूर झँझनी अर्थात्-झुनुक-झुनुक बजने वाली बेड़ियाँ, जिसे झँझनी कड़ा कहते हैं और चूर तो देह की सिहरन पर भी खनकते हैं—'टुन-टुन-टुन-टुनन।'

छम-छम।
गुडगुड़म।
छम्म-छम ! छम्म, छम !
टुन-टुन
डाक्टर ! डा क ट र ओ··· प्रशान्त महासागर।
राजकमल ··· !" (पृष्ठ २०६)

यहां ध्वनियो के सहारे युगनद्ध मिथुन-व्यापार का सम्पूर्ण चित्र, उसकी गत्यात्मकता, उसकी एक-एक धड़कन-सिहरन, आवेग-त्वरा, लय और प्रशांति सब को स्पष्ट कर दिया गया है। जो लोग 'रेणु' को केवल वस्तुनिष्ठ ध्वनियों का प्रयोक्ता-कथाकार मानते हैं, उनके लिए यह सन्दर्भ विशेष रूप से द्रष्टव्य है। यहां मानवीय गत्यात्मक व्यापार को वाद्य-वृन्द की ध्वनियों से पूर्ण आरोह-अवरोह की सटीकता के साथ इस रूप मे प्रत्यक्ष रेखांकित कर दिया गया है, जिस रूप में शब्दों के सहारे चलने वाली भाषा इसे किसी भी रूप में अभिव्यक्त नहीं कर पाती। आंचलिकता का यह सारा पुटपाक ध्वनि-स्तरीय विचलन के भाषिक कौशल के सहारे ही सम्पन्न हो पाया है, जो एक गहरी अर्थवत्ता के साथ एक नूतन बिम्ब को सिरज उठा है।

ध्वनि-स्तरीय इस भाषिक विचलन की सार्थकता को एक और रूप में समझा जा सकता है। यहां उत्तारक (नैरेटर) हमारे बीच से गायब हो जाता है। कहानी कहने वाली उसकी रूपान्तरित और अनूदित होती भाषा सहसा लुप्त हो जाती है और हम एक ऐसे भाषा-संसार के सामने आ जाते हैं, जो 'ऐज इट इज' है, जिसका रूपान्तरण सम्भव नहीं है। यह एक बहुत बड़ी विश्वसनीयता है जो

हमें घटना और परिवेश के बीच बिना उत्तारक-रूपी दुभाषिए के सीधे ले जाती है दर असल यह भाषा की बनावट (टेक्स्चर) का मसला है, जिससे जूझकर रेणु का कथाकार आंचलिक दृश्य-परिदृश्य को अधिकाधिक ऐन्द्रिय वास्तव प्रदान कर सका है।

प्रोक्ति स्तर :

प्रोक्ति-स्तर पर विचलन-मूलक भाषिक प्रयोग का पहला स्तर मैला आंचल की गद्य-भाषा में काव्य-पंक्तियों का प्रयोग है। उपन्यास की मानक भाषा गद्य-भाषा होती है। पर इस मानक भाषा की मंजूषा के अन्तर्गत 'रेणु' विचलन की सहायता से काव्यात्मक भाषा की एक और मंजूषा तैयार करते और सजाते चलते हैं। यथार्थ को उजागर करने, परिवेश को सही-सही प्रत्यक्ष कराने और आंचलिकता को कई कोणों से स्पष्ट करने के लिहाज से यहां विचलित भाषिक कौशल अत्यन्त महत्वपूर्ण रूप में अग्रप्रस्तुत हो उठा है।

'जागो सतगुरु साहिब सेवक तुमरो दरस को आया जी। जागो सतगुरु साहेब ....' (पृष्ट 23) जैसी निर्गुण वाणी का विचलन-मूलक प्रयोग महंत और मठ के परिवेश को साक्षात् कर देता है। इसी प्रकार महंत जब अज्ञान—अन्धकार को अपनी वाणी से दूर करते हैं तब साखी का सहारा लेते हैं। सात चक्रों का परिचय भी काव्य-भाषा में ही चलता है। जब सतगुरु के विरह में चित्त चंचल होता है तब भी 'विरह अगिनतन कैसे बुझे। गुहबन अंधकार नहीं सूझे' जैसी काव्यात्मक पंक्ति की संसक्ति सामने आती है। बीजक के पन्ने उलटता बालदेव बीजक की काव्य-पंक्तियों को विचलित रूप में ही सामने लाता है—(पृष्ठ 35) "गंग रे जमुनवा की धार नयनवा से नीर बही। फूटल भारथिया के भाग भारथ ममता रोई रही – जैसे पंक्तियां भी विचलित रूप में ही सामने आती है। इस प्रकार की विचलित काव्यात्मक पंक्तियों के सर्वाधिक प्रयोग महन्त और सतगुरु के सन्दर्भ में किये गये हैं—"कहँवा से हंसा आओल कहँवा समाओल हो राम कि आहो रामा हो, कौन गढ़ कयल मुकाम, कवन लपटावल हो राम" (पृष्ठ 48)

'रेणु' ने सुरंगा सदाबृज की कथा भी लोकगीत में कहलवाई है—"नहिं तोरा आहे प्यारी तेग तरवरिया से। नहिं तोरा पास में तीर जी'''कौनहिं चीजवा से मारल बटोहिया के। धरती लोटावेला बेपीर जी-ई-ई-ई (पृष्ठ ६०)। इसी प्रकार भउजइया का गीत भी विचलित प्रयोग का सुन्दर उदाहरण है—चढ़ली जवानी मोरा अंग-अंग फड़के से। कब होई हैं गवना हमार रे भौजिया। हथवा रंगाये सइयां देहरी बिठाई गइले। फेर हमरा न लिहले उद्देश रे भउजिया।' (पृष्ठ ७१) इसी परम्परा में गांव में घूर के पास 'लोरिक' बिज्जे मान की कथा विचलन के भाषिक कौशल को प्रस्तुत करती है—"अरे राम राम रे दैवा रे ईसर रे महादेव/ बामे ठाढ़ी देवी-दुरगा दाहिन बोले काग/अपन मन में सोच करैये मानिक सरदार/ बात से नाहिं माने वीर कनौजिया गुआर। (81)। नटवा के नाच मे भी गीतों

की पंक्तियां उत्तारकीय कथा-भाषा के बीच-बीच में विचलित भाषिक विधान की साज-सज्जा करती चलती है तो बिछावन पर लेटा डाक्टर विचलित भाषिक रूप में विद्यापति की कोमल पंक्तियां सोचने लगता है—'पिया भइले डुमरी के फूल रे पियवा भइले।''''चांद बयरि मेल बादल मछली बयरि महाजाल। तिरिया बयरि दुहु लोचन हिरदै के भेद बताये।' (पृष्ठ 89) विचलन का यह सन्दर्भ कामरेड की क्रांतिकारी भाषा में भी सामने आता है—'उठ मेहनतकश अब होश में आ। हाथ में झंडा लाल उठा।' पुनः पृष्ठ 172 पर क्रांति-गीत धाली प्रोक्ति उभरती है। राजनीतिक चेतना व्यक्त करने वाली ऐसी भाषा भी 'मैला आंचल' में प्रोक्ति-स्तरीय विचलन के कौशल से ही उद्भूत-उपस्थित हुई है।

बाईसवें अध्याय में सतगुरु-वचन भी काव्यात्मक विचलन का उदाहरण बन जाता है। (पृष्ठ 120) चौबीसवें अध्याय में लोकगीतो की कई पंक्तियाँ आती हैं। होली के गीत आते हैं, 'जोगीड़ा', फगुआ और भड़ुआ की पंक्तिया विचलित होकर पूरे सन्दर्भ को प्रस्तुत करती हैं। दूसरी ओर स्वदेशी आन्दोलन को भी ऐसी काव्यरमक पंक्तियाँ स्वर प्रदान करती हैं—'अरे देसवा के सब धन-धान विदेशवा में जाय रहे। महंगी पड़त हर साल कृसक अकुलाय रहे।' (पृ० 128) सावित्री नाच का गीत 'आ हे सखि चलू फुलवारी देखे हैं' विचलन का उदाहरण है। यही 'ई मन चंचल ई मन चोर। ई मन शुध ठगहार। मन मन करत सुर नर मुनि, मन के लक्ष दुआर, (पृष्ठ 148) जैसी विचलित पंक्तियां मन के परिवेश को उजागर कर देती हैं। संथालियों का गीत भी भाषा का विचलन-मूलक कौशल बनकर ही उभरता है। (पृष्ठ 163) संथाल टोली का गीत (पृ० 184) जाट-जाटिन का गीत यदि लोक-गीत के स्तर पर उभरता है, तो महंत के मठ में कोठारिन लक्ष्मी गुरु-उपदेश और बिरह-साखी गाती है। सुनाई यादव अड़तीसवें अध्याय में बारहमासा की तान छेड़ता है।

पहले खण्ड के अन्त में विवाह का लोकगीत यदि एक ओर विचलन के कौशल के सहारे भाषिक विधान की रचना करता है, तो दूसरी ओर विद्यापति की मधुमय काव्य-पंक्तियों के सहारे विचलन का माध्यम अर्थ-व्यंजना को और निगूढ़ बना देता है—'अधरक मधु जब चाखल कान्ह तोहर शपथ हम किछु यदि जान।' (214)

खण्ड दो में काव्यात्मक पंक्तियों में अष्टयाम-कीर्तन चल रहा है। दूसरे अध्याय में यह कला अपने प्रकर्ष पर प्राप्त होती है। दूसरे खण्ड के छठे अध्याय के अन्त में निर्गुनिया का काव्यात्मक स्वर मुखर होता है। नवें अध्याय में भी लक्ष्मी निर्गुन गा रही है—"ज्वाला बिरह वियोग की रही कलेजे छाय। प्रेमी मन माने नहीं दरसन को अकुलाय"(मैला आंचल, दसवी आवृत्ति, पृ० 226)। दसवें अध्याय के अन्त में भगनिया लोगों का बनरमुत्ता झारने वाला लोक-मन्त्र विचलित रूप में उभरता है। अठारहवें अध्याय में गाँधी जी के निधन पर संस्कृत में गीता

की पंक्तियों का प्रयोग भी विचलित भाषिक विधान का ही उदाहरण है, तो उन्नीसवें अध्याय में 'समदाउन' भी विचलन की कला को ही प्रस्तुत करता है। बीसवें अध्याय में पुनः काव्य-पंक्तियाँ आती हैं, "धरती फाटे मेघजल कपड़ा फाटे डोर। तन फाटे की औखदी। मन फाटे नहिं ठौर (पृ० 262)।"

इस प्रकार भाषिक विचलन का यह कौशल 'मैला-आँचल' में प्रमुखतः चरित्रों के अन्तर्मन को उसके आंचलिक शील संस्कार को विभिन्न आंचलिक सन्दर्भों को, संस्थितियों को और प्रासंगिक रूप में उभर रही लोक कथाओं को अप्रस्तुत करने में अत्यन्त सफल रहा है।

अर्थ स्तर :

'मैला आंचल' में अर्थ स्तरीय विचलित अप्रस्तुति का एक उदाहरण देखें। वहां गांव में आया हुआ डाक्टर प्रशान्त, जो गांव के जीवन से रोग को भगाने का निरन्तर उपचार करता है उसकी अभिव्यक्ति में अर्थस्तरीय विचलित अप्रस्तुति प्राप्त होती है। वह अपने पत्रों मे लिखता है—"यहां की मिट्टी में बिखरे लाखों-लाख इन्सानों की जिन्दगी के सुनहरे सपनों को बटोर कर, अधूरे अरमानों को बटोर कर यहां के प्राणी के जीव-कोष में भर देने की कल्पना मैंने की थी।" (पृ०158) पर नहीं, डाक्टर ने रोग की जड़ पकड़ ली है, "गरीबी और जहालत इस रोग के दो कीटाणु हैं। एनोफिलीज से भी ज्यादा खतरनाक। सैण्डफलाई से भी ज्यादा जहरीले हैं यहां के —"(पृ० 187)

यहाँ 'गरीबी और 'जहालत' को रचनाकार द्वारा कीटाणु मानने के कारण अस्वीकार्यता के धरातल पर अर्थ-स्तरीय विचलित अप्रस्तुति उभरती हैं, जिसकी साभिप्रायता धीरे-धीरे पूरे उपन्यास पर छा जाती है। सचमुच देश को मैला आंचल बनाने वाले जहरीले कीटाणु ये ही तो हैं : गरीबी! और जहालत!!

विपथन :

प्रोक्ति-स्तर :

विपथन रचनाकार द्वारा अपनी भाषा के बने-बनाये मानक से पुनः किया गया दिशांतर है, जिसके मूल मे उसकी कोई साभिप्रायता या सोद्देश्यता निहित होती है। 'मैला आंचल' की मुख्य कथा के बीच-बीच में दूसरी कथा के आ जाने से इसकी प्रोक्ति-भाषा विपथित रूप में अप्रस्तुत हो उठती है—"श्री सुखदेव जी बोले कि हे राजा, एक दिन कृष्ण कन्हैया वंशी बजैया कदम के व्रिछ पर बैठ के वंशी बजाय रहे थे।" (पृ० 73-74) इस प्रकार की कई प्रासंगिक कहानियां इस कृति में विपथित भाषा की सृष्टि करती हैं। चाहे यह कथा रघुनाथपुर के स्टेट के गुरुवंशी बाबू की हो, चाहे किसी और की। यहाँ रचनाकार स्वयं अपनी

गद्य-भाषा के मानक को प्रतिपाद्य के वास्तव को उजागर करने के नजरिये से तोड़ता एक और नए, पर अपेक्षित भाषिक स्तर की सर्जना कर उठता है।

भाषिक विपथन का दूसरा रूप डाक्टरी प्रिस्क्रिप्सन और केस-हिस्ट्री की भाषा में मिलता है—"एक : (क) सेवी मंडल, उम्र 35, हिन्दू (मर्द), गाँव मेरी गंज, पोलिया टोली। तकलीफ : दांत और मसूढ़े में दर्द। दतुअन करने के समय खून निकलना, मुंह महकना, देह में खुजली, भूख की कमी। बुखार : नहीं। निदान : पायोरिया। दवा : कार्बोलिक की कुल्ली। विटामिन सी का इन्जेक्शन।" (पृ० 208) यह भाषा कथा की भाषा नहीं होकर चिकित्सक के नुस्खे की भाषा है : क्रियाविहीन जरूरी सूचनाओं की, मरीज के नाम-पता, उसकी तकलीफ और तकलीफ के उपचार-निदान की भाषा। पर इस विपथन के मूल में प्रतिपाद्य की अपेक्षा निहित है।

भाषिक विपथन का तीसरा रूप रिपोर्ताज की शब्दचित्रात्मक भाषा में उपलब्ध होता है—'फुलकाहा बाजार ! लाखों की भीड़। ऊँचा मंच·· महात्मा गांधी की जय। रह-रह कर आकाश हिल उठता है।···जय। फिर आकाश हिलता है। रेलमपेल। पुष्पवृष्टि।···चरणधूलि। ·· सीटी ···स्वयं सेवक। कार्डन डालो घेरा · घेरा।' (पृ० 118)'···लहास। लाश। पुलिस—दारोगा, मलेटरी। मार? जेहल?···काला-पानी। नहीं, फाँसी।···सचमुच।' (पृ० 179)। यहाँ दोनों ही उद्धरणों में उपन्यास की सामान्य भाषा से शब्द-चित्र की क्रियाविहीन भाषा की दिशा में विपथन हुआ है।

'मैला आँचल' में विपथन बीच-बीच में दूसरी भाषा के प्रयोग में भी प्राप्त होता है। यह विपथन का चौथा रूप है। बंगला, अंग्रेजी आदि भाषा तथा भोजपुरी बोली के प्रयोग ऐसे विपथन के उदाहरण हैं—"आमार भगवान के मारी न (138) ···भगवानेर व्रत···भंग हउवा असंभव। कारण गुरुतर। तबे आपनार भाग्य भालो, जे बेचारा के सूरदासेर कथा मने पड़े नि, नईले एतखन आर भगवानेर चोख थाकतो ना।' (121) इसी प्रकार पंडित नेहरू के द्वारा कहे गए वाक्य···'आई कांट रिमेम्बर दि नेम आफ दैट बुक' और गांगुली के उत्तर—'किंग आफ द गोल्डन रिवर' में भी विपथित अप्रस्तुति उभरी है।' (पृ० 119) भगमान भगत को भोजपुरी बोली भी विपथित अप्रस्तुति की सृष्टि करती है : 'अरे ! ई तो दस आदमी के कामवा, जे वा-से एकरा में सबके मिल के भतत करे के चाही। का हो सी प्रसाद?' (पृ० 17)

विरलता :

प्रोक्ति-स्तर।

'मैला आँचल' में तीन अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रोक्ति स्तरीय 'विरलता' के अभिलक्षण निम्नलिखित उदाहरणों में प्राप्त होते हैं। इनमें आरंभिक दो विरलताएं ··· और शहर के मैलापन की प्रकृति से हमारा परिचय कराती हैं, वहीं

तीसरी विरलता मानव की शक्ति का गान करने वाली, उसमे अटूट आस्था रखने वाली विरलता है। इस प्रकार पहली दो विरलताओं को पृष्ठप्रस्तुत कर अप्रस्तुति की पूरी भूमि में यह तीसरी विरलता अधिकाधिक अप्रस्तुत हो उठती है। पहली विरलता प्रशान्त के उस कथन में परिलक्षित होती है जो उसके द्वारा ममता को लिखे जा रहे पत्र का एक भाग है—"गांव के लोग बड़े सीधे दीखते हैं, सीधे का अर्थ यदि अनपढ़, अज्ञानी और अन्धविश्वासी हो तो वास्तव मे सीधे हैं वे। जहाँ तक सांसारिक बुद्धि का सवाल है, वे हमारे और तुम्हारे जैसे लोगों को दिन में पाँच बार ठग लेंगे। और तारीफ यह है कि तुम ठगी जाकर भी उनकी सरलता पर मुग्ध होने के लिए मजबूर हो जाओगी।" (पृष्ठ 48-49) दूसरी विरलता ममता द्वारा प्रशांत को लिखे गये उस पत्रांश में रेखांकनीय है, जिसमें उसने पटना शहर की स्थिति का परिचय दिया है—"काले बाजार के अँधेरे में एक नयी दुनिया की सृष्टि हो गयी है, यहाँ सूरज नही उगता, चाँद नहीं चमकता और न सितारे जगमगाते हैं।...इस दुनिया में माँ-बेटा, पिता-पुत्र, भाई-बहन और स्वामी-स्त्री जैसा कोई संबन्ध नही।".. (पृष्ठ 138) तीसरी विरलता उपन्यास के अंत में परिलक्षित होती है। यहाँ उत्तारकीयता (नैरेशन) प्रत्ययनीयता (पर्सुएशन) के स्वर मे ढलकर इस विरलता की सृष्टि करती है—'विधाता की सृष्टि में मानव ही सबसे बढ़कर शक्तिशाली है। उसको पराजित करना असंभव है, प्रचंड शक्तिशाली बमों से भी नही।......पागलो! आदमी आदमी है। गिनीपिग नही।" (पृष्ठ 379) वस्तुतः यही वह विश्वास है, जो पूर्व उद्धृत विरलताओं से ज्ञात कलुष और घृण्य के तमस को विदीर्ण कर जिजीविषा का सात्विक प्रकाश उजागर कर पाता है। इस विश्वास के सहारे ही परिवर्तन संभव है, इस विश्वास के ही सहारे प्रगति संभव है, यह विश्वास ही मानवीयता को सुरक्षित रखता है। इस प्रकार 'मैला आँचल' की साभिप्रायता को खोलने में इन तीनों ही विरल प्रोक्तियों की भूमिका स्पष्ट है।

निष्कर्ष :

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि 'मैला आंचल' की कथाभाषा में आंचलिकता का निरूपण काल-तत्त्व, स्थल-तत्व और पात्र-तत्त्व के त्रिकोण पर हुआ है। काल-तत्व उस समसामयिक कथ्य का और युगानुरूप वैविध्य का संवहन करता है, जिसे कृतिभाषा की प्रयुक्तियों (रजिस्टरों) का वैभिन्न्य जाहिर कर तत्त्व गत्यात्मक भाषिक चेतना का भी स्पष्ट अभिव्यंजक बन जाता है। स्थल-तत्त्व उसकी विभाषिक चेतना को बखूबी उजागर करता है, जिसके सहारे उस अंचल के समग्र ध्वनि-संसार, दैनिक व्यापार, रीति-रिवाज, सामाजिक राजनीतिक हलचल और लोक-तत्त्व को वाणी प्राप्त हो जाती है। पात्र-तत्त्व व्यक्ति-

भाषा की सहज अभ्यासपरकता और विशिष्टता को मुखर करता है। निस्सन्देह इस दृष्टि से 'मैला आंचल' की कथाभाषा 'आंचलिकता की अप्रस्तुति' से सम्पन्न कथाभाषा है।

दूसरी दृष्टि से देखें तो 'अप्रस्तुति की आंचलिकता' समान्तरता के अभिकरण के सहारे शब्द-स्तर पर शब्द-लय का सृजन करती हुई गद्य-राग उत्पन्न करती है और प्रोक्ति-स्तर पर कई अपेक्षित अर्थ-लय की सृष्टि भी कर जाती है। इससे ये समान्तरित भाषिक एकक पूरे कथा-सन्दर्भ में अप्रस्तुत हो उठते हैं।

प्रोक्तिस्तरीय समांतरित अप्रस्तुति दो बड़े अर्थों को उत्तेजित करती है। एक अर्थ है मेरीगंज के अंचल के मैलापन का, जो केवल मेरीगंज में सीमित नहीं रह कर पूरे देश का मैला आंचल बन जाता है। हताशा, निराशा, प्रपीड़न—सभी इस अर्थ-वलय से लिपटे हुए हैं। बाह्य संरचनात्मक धरातल पर 'मैला आंचल' का सीधा आवर्तित कथन इस अर्थ-लय को उद्रिक्त करता है, तो गहन संरचनात्मक स्तर पर रुदनशीलता और जातीयता की समांतरता इसे अभिव्यंजित कर जाती है। 'मैला आंचल' में वैयक्तिक रुदन से सामूहिक रुदन तक—रुदन के अनेक संदर्भ आये हैं—संघर्ष, ईर्ष्या, सस्कारी- हिंसात्मक मृत्यु, प्रेम, मानसिक विकार, मानसिक उदासता और पश्चात्ताप जैसे अनेकानेक मुखर संदर्भ। इसी प्रकार जातीयता की कलुषित जड़-बद्धता समांतरित रूप में कई स्थलों पर आवर्तित हुई है। जीवन का यह कटु यथार्थ भी सच्ची मानवीय जिजीविषा को किसी-न-किसी रूप में विपथनोन्मुख करने वाला है। पर इन तीनों प्रकार की अपस्थितियों मे विरोधी समान्तरता के सहारे रचनाकार ने इनसे उबरने का मार्ग निर्दिष्ट किया है। 'आंचल के मैलापन की समांतरता' में प्रशान्त द्वारा इस 'मैला आंचल' के तले साधना करने का संकल्प, रुदनशीलता की समांतरता में माता का पंथ बताने का संकेत और जड़बद्ध जाति-चर्चा के बीच गरीब और अमीर जैसी सही जाति-भेदकता का उल्लेख पुनः अपनी-अपनी समांतरता के संदर्भ में विरोधी रूप में अप्रस्तुत हो उठे हैं। दूसरा अर्थ है इस मैलापन, प्रपीड़न और हताशा के बीच भी जिजीविषा को बनाये रखने का और मैलापन के अंधकार को चीर डालने का। कहना न होगा कि सुगंधि की मिट्टी और मनुष्य से होने वाली गहरी मुहब्बत की और नीलोत्पल के खिल उठने की समांतरता इस अर्थ-लय को लहरा देती है। 'मैला आंचल' में लछमी की सुगंधमयता उसके रूप-मात्र की, केवल कायिक सुगंधमयता के आकर्षण-संजीवन के रूप में उपस्थित नहीं होती, बल्कि उसके शील की गुणवत्ता से जुड़कर उपस्थित होती है। जब वह बावनदास के पन्नों वाले बस्ते को आग की धूनी में जलाये जाने से बचा लेती है तब वह अपने चरित्र के उत्कर्ष को प्राप्त कर लेती है। यहां वह सचमुच बड़े साभिप्राय रूप में

मन्दिर और बीजक से निकलने वाली सुगंध को अपने में प्रतीकित कर देती है, चरितार्थ कर देती है। सुगन्धमयता की ऐसी समांतरता हमें सही जिजीविषा से जोड़ जाती है। इसी प्रकार तालाब में खिले नीलोत्पल, कमला के पुत्र नीलोत्पल (जो जातिहीन पिता और पिता, माता के अन्तर-जातीय विवाह का परिणाम है और जातिवादी समाज की विरचना का सार्थक संकेत भी) और नयी मानवता के शिशु नीलोत्पल की समांतरित अप्रस्तुति भी जिजीविषा को उल्लसित-पल्लवित कर जाती है। 'मैला आंचल' मे आशा, विश्वास और भविष्य की मांगलिकता को निरूपित करने वाली एक और प्रोक्ति-स्तरीय समांतरित अप्रप्रस्तुति भी ऐसी सही जिजीविषा को संकेतित करती है। वह है ममता के द्वारा उपन्यास के अंत में निर्दिष्ट 'मिट्टी और मनुष्य से गहरी मुहब्बत' की समांतरित अप्रप्रस्तुति। कहना न होगा कि यहां दूसरा अर्थ भी पहले अर्थ की पृष्ठ-प्रस्तुति में अप्रप्रस्तुत है।

इसी प्रकार विचलन का अभिकरण यथार्थ परिवेश की सर्जना में, वास्तव के प्रत्यक्ष में, लोक-संदृश्य और लोकतात्विकता के रचाव में, उपजीव्य कथाधारा को अतिरिक्त और तीव्र अर्थवत्ता प्रदान करने मे तथा शीर्ष की कलात्मक सिद्धि में भाषिक अप्रप्रस्तुति को उपस्थापित करता है।

विपथन के अभिकरण प्रतिपाद्य और संदर्भ की अपेक्षा के अनुकूल भाषा मे आने वाले बदलाव, उसके मिजाज, उसकी भंगी, उसके स्वरूप और माध्यम-रूप में बदलाव ला कर अप्रप्रस्तुति उपस्थित करते हैं। कथा-भाषा की प्रकृति प्रोक्तिस्तरीय विचलन और विपथन— दोनों ही स्थितियों मे गतिशील होती है। 'मैला आंचल' मे विपथन शब्दों की विशेष व्यवहार्यमूलकता और रिपोर्ताज जैसी शब्द-चित्रात्मकता को उपस्थित करने मे अत्यंत सफल हुआ है, जिससे भाषा विश्वसनीयता प्राप्त कर गयी है।

'विरलता' का अभिकरण 'समांतरता' की ही तरह द्विविध अर्थवत्ता को उजागर करता है। पहली प्रोक्तिस्तरीय अर्थवत्ता मे गाँव से शहर तक के खुदगर्ज और अमानवीय समाज का मैलापन है, तो दूसरी प्रोक्तिस्तरीय अर्थवत्ता में इस मैलापन को छाँटने वाला एक बड़ा सुरक्षित मानवीय विश्वास है, जिसका आधार डॉक्टर की कर्म-साधना है— और जो यथार्थ के काले अंधकार के बीच आलोक-दान का केन्द्रक बनकर उपस्थित होता है।

गुजराती साहित्यकार उमाशंकर जोशी ने 'मैला आंचल' को जिस भाषिक विशेषता को 'कटाक्ष' कहकर रेखांकित किया है और यह बताया है कि इसी से इस कृति मे भाषा की सर्जनात्मकता आयी है, वह 'भाषिक कटाक्ष' और कुछ नहीं होकर समांतरता, विचलन, विपथन और विरलता के अभिकरण ही हैं, जिनके सहारे प्रस्तुत कृति में सर्जनात्मकता की अभीष्ट सिद्धि हुई है। कहना न

होगा कि ये सारी अप्रस्तुतियाँ 'अप्रस्तुति की आंचलिकता' के रूप में आंचलिकता की विविध मुद्राओं को रेखांकित करती हैं।

वस्तुतः बाह्य और आंतर— दोनों ही संरचनात्मक स्तरों पर यह 'आंचलिकता की अप्रस्तुति' और 'अप्रस्तुति की आंचलिकता' के भाषिक रचाव की कूट-मुक्ति (डि-कोडिंग) ही है, जिससे 'मैला आंचल' की सही समझदारी प्राप्त हो पाती है। कथ्य का सारा मलिन यथार्थ परिप्रेक्ष्य में चला जाता है (स्वचालित यांत्रिकता के रूप में) और काम्य या अभीष्ट अप्रस्तुत (स्वचालित यांत्रिकता को तोड़ कर) हो पड़ता है। जो इस साभिप्रायता को नहीं समझ पाते, वे इस उपन्यास को समझने में ही असफल रह जाते हैं।[1] उपर्युक्त विश्लेषण के साक्ष्य में यह प्रतीत होता है कि 'आंचलिकता की अप्रस्तुति' अंचल का वर्तमान, मलिन यथार्थ है और 'अप्रस्तुति की आंचलिकता' इसके अभीष्ट या वांछित रूप की आलोक-किरण।

1. "उसकी (रेणु की) दृष्टि घिनौने प्रसंगों की ओर ही अधिक रही है जिसे उसकी कल्पना सर्वत्र ढूंढती जान पड़ती है।"— डॉ॰ त्रिभुवन सिंह, हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद (वाराणसी : हिन्दी प्रचारक संस्थान, 1955), पृष्ठ 363.

'अलग-अलग वैतरणी' की कथा-भाषा

'अलग-अलग वैतरणी' और भाषा का मृदा तत्त्व :

कथाकार शिवप्रसादसिंह का प्रथम और बहुचर्चित उपन्यास 'अलग-अलग वैतरणी' औपन्यासिक सर्जनात्मक भाषा का उत्तम उदाहरण है। 'अलग-अलग वैतरणी' का भाषा-संसार प्रमुख रूप में जल की तरल सुषमा से शोभित है। भाषा का स्थूल मृदा-तत्त्व इसमें बहुत कम है। सामान्यतः जो भाषा मृदा-तत्त्व का दृष्टान्त बन सकती थी उसे उपन्यासकार ने बिना किसी दबाव के भाषा के जल-तत्त्व से संपृक्त कर दिया है। ऐसे, मृदा-तत्त्व जहां कहीं है भी, वहां रुक्ष और मरुवत् न होकर जल-तत्त्व से सिंचित 'पिंडीय' है।

भाषिक द्विविध प्रयोग : माटी और पानी :

भाषिक द्विविध प्रयोग के रूप मे 'माटी' और 'पानी' की बात कोई सर्वथा नयी, चौंकाने वाली नही है। आइवर आर्मस्ट्रांग रिचर्ड्स ने अपने 'प्रिंसिपुल्स' में भाषा के द्विविध प्रयोगों की चर्चा की है। इनके ये भाषिक प्रयोग क्रमशः अभ्युद्देशनात्मक और रागात्मक प्रयोग हैं। समीक्षा के बदले स्वर में अभ्युद्देशनात्मक प्रयोग ही 'माटी' और रागात्मक प्रयोग ही 'पानी' है। अभ्युद्देशनात्मक भाषा वह वर्णनात्मक अथवा संकेतपरक भाषा है, जो आन्तर परिस्थितियों से अप्रभावित रहकर भी वस्तु का हमारे समक्ष तद्वत् प्रस्तुतीकरण और निर्देशन करती है। इसमें हमारे आवेगों को बाह्य उद्दीपनों की स्वाभाविक अनुरूपता प्राप्त होती है और आन्तर आवश्यकताएँ उन्हें प्रभावित-परिवर्तित नहीं कर पाती हैं। कोई भी कथन यदि अपने कारण घट रहे सच्चे या झूठे अभ्युद्देशन के लिए प्रयुक्त होता है तो वहां भाषा अभ्युद्देशनात्मक हो जाती है। यहां कथ्य मे अभ्युद्देशन ही उद्दिष्ट होता है, संवेग या अभिवृत्ति को जगाना उद्देश्य नहीं होता। भाषा के मृदा-तत्त्व का अर्थ भी वर्णनात्मकता ही है। यह माटी दो प्रकार की है—वर्णन और प्रतिवेदन की। वर्णन मे प्रेक्षण का महत्व है, जबकि प्रतिवेदन मे सत्यापन का। यहां वर्णनात्मकता या तो वर्णन के घटना-तत्त्वपरक स्थूल कथा-विकास की होती है, या प्रतिवेदन वाली समाचारपत्रीय विवरणात्मकता की। इसके विप-

रीत रिचर्ड्स के अनुसार अपने कारण घटित अभ्युद्देशन द्वारा आवेगों और अभिवृत्तियों से उत्पन्न प्रभावों के लिए प्रयुक्त कथन की भाषा रागात्मक होती है। मनः कल्पनाओं की विवृति प्रायः रागात्मक भाषा में होती है, क्योंकि इसके अभ्युद्देशन भी भीतरी आवश्यकताओं से प्रभावित तथा अभिवृत्तियों से प्रेरित होते हैं। भाषा के जल तत्त्व का अर्थ भी अनुभवगत वैविध्य, कल्पनाशीलता, सूक्ष्म चिन्तन-परकता, अनुभव-संवेदन इत्यादि है। अतः स्पष्ट है कि माटी और पानी का अन्तर निर्दिष्ट करने वाली भाषिक विवेचन की यात्रा का प्रस्थान और गन्तव्य-बिन्दु रिचर्ड्स का द्विविध प्रयोग ही है।

मार्गरेट मैक्डोनल्ड के अनुसार कथेतर सामान्य गद्य की भाषा जहाँ बयान करती है, वहाँ कथाकार की भाषा उसकी खोज, उसकी सर्जना की भाषा होती है। दूसरे शब्दों में बयान की भाषा में चुनने की स्वतंत्रता नहीं होती है। यदि कहीं होती भी है तो वह बड़े ही संकीर्ण और बंधे दायरे में। पर कथा की भाषा में चुनने की पूरी छूट और सुविधा रहती है। बयान की बँधी-बँधायी भाषा 'माटी' है और चुनने की लहर उठाने वाली भाषा 'पानी'।[1] कथा में भाषा रचना या सर्जना के लिए व्यवहृत होती है, जो एक बड़ी बात है।

'वैतरणी' और सर्जनात्मक भाषा :

'अलग-अलग वैतरणी' की भाषा में न तो 'झूठा-सच' वाली समाचार-पत्रीय विवरणात्मकता है, जो प्रबुद्ध पाठकों को नीरस और अरुचिकर लगती है, न ही उसमें स्थूल वर्णनात्मकता है, जो निहायत अभ्युद्देशनात्मक होती है, प्रत्युत उसमें जो प्रत्यक्ष रूप-विधान वालीवर्णनात्मकता है वह भीतरी संवेगों और अभिवृत्तियों को प्रस्तुत करने वाली है, जिसके साथ बड़ी सूक्ष्मता से स्मृत रूप-विधान और कल्पित रूप विधान जुड़े हुए हैं। दूसरे शब्दों में यह वर्णनात्मकता बाहरी वस्तु के चित्रण की नहीं, बल्कि भीतरी चिन्तन-प्रक्रियाओं, मनःस्थितियों, अनुभव-संवेदनों इत्यादि को व्यापकता में उजागर करने की है। 'वैतरणी' की भाषा काल्पनिक निरुक्ति, वैयक्तिक शैली, सुदृढ़ व्यक्तिपरकता, जागरूक कलाकारिता और लेखक की प्रकृत भाषिक रुझान को एक साथ व्यक्त करती है। इसीलिए 'सेतु' (वाराणसी) की गोष्ठी में पढ़े गए अपने निबन्ध में श्री विजयदेव नारायण साही ने 'सात सौ पृष्ठों तक सलीके से किस्सा कहने के लिए' जो लेखक के प्रति कृतज्ञता प्रकट की थी (कल्पना 197/37) वह अकारण नहीं थी और 'सलीके' का अर्थ कतई भाषा के स्थूल मृदा-तत्त्व की प्रशंसा करना नहीं था, बल्कि उसका संकेत जल-तत्त्व की ओर था।

1. 'लैंग्वेज ऑव फिक्शन', पर्सपेक्टिव ऑन फिक्शन, सम्पा० जेम्स एल० कैल्डर वुड ऐण्ड हेराल्ड ई टालियर (लंदन : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1968), पृष्ठ 64

'वैतरणी' की कथाभाषा पर चतुर्वेदी के आरोप :

डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी ने 'कल्पना' के सितम्बर' 69 अंक मे प्रकाशित अपने लेख 'समकालीन उपन्यास : भाषिक प्रयोग के नए स्तर' में अपने चतुर्भुज आरोपों की गिरफ्त में 'वैतरणी' पर बड़ा भोंडा आक्षेप किया है। वे 'वैतरणी' को सबसे पहले अपने शीर्षक में 'पानी' को जुगुप्सा भाव से प्रस्तुत करने वाला, दूसरे, 'मिट्टी' के ही इर्द-गिर्द घूमने वाला, तीसरे, अनुभव और कल्पना की क्षमता कुंठित करने वाला और चौथे, अधिकतर भोथरी भाषा से काम चलाने वाला उपन्यास मानते हैं। चतुर्वेदी जी ने जहां शिवप्रसाद सिंह की भाषा पर ऐसे विचार प्रस्तुत किए हैं, वहीं अज्ञेय, जैनेन्द्र, देवराज, निर्मल वर्मा इत्यादि की भाषा की अभिशंसा भी की है। फर्क इतना ही है कि जैनेन्द्र और अज्ञेय की भाषा से उनके समर्थ औपन्यासिक भाषाकार होने के उदाहरण दावे के साथ-साथ पेश किए गए हैं, पर 'वैतरणी' के विषय में जो फतवा दिया गया है, उसकी पुष्टि में कोई भी भाषिक उदाहरण प्रस्तुत नहीं किया गया है, जबकि समीक्षक किसी लेखक की भाषा को सतही, माटी-भरी और भोथरी कहे तो उसे अपने दावे के लिए उदाहरण, या प्रमाण तो देने ही चाहिए।

मैं नहीं समझता कि जो भाषा बिम्ब प्रस्तुत कर अर्थ को तीव्र, शाणित करती हो, संश्लिष्टता देती हो, अनुभव-संवेद्य बनाती हो, उपमानों और उपमान-मूलक बिम्बों के सहारे सम्प्रेषणीयता को पूरी दिशा देती हो, स्पष्ट बोलने की अपेक्षा भंगिमा से कहती चलती हो, अर्थवत्ता को पूर्णता देने के लिए कहीं प्राकृतिक परिवेश, कहीं प्रकृति-इतर परिवेश और कहीं गीतात्मकता द्वारा सदर्भ-सर्जन को तिहरे रूप मे गहराती हो, 'शीर्षक' और तट-चर्चा से उपन्यासान्त तक प्रतीकार्थ को प्रश्रय देती हो, राग-सवेदन, अनुभव-सम्पुंजन और अर्थ-संवर्द्धन के लिए अद्भुत आलंकारिक प्रयोग करती हो, बाहर से भीतर की ओर एक-पर-एक, क्रमिक सोपान पार कर प्रवेश करती हो, स्थूल अनुभवों से सूक्ष्म अनुभवो को स्पष्ट तौर पर विलग कर देती हो, सूत्र-शैली में चिन्तन का सत्व और सूक्ति शैली में अनुभव का सार प्रस्तुत करती हो, दृश्य-निहित अर्थ को स्फूर्ति से पकड़ कर स्पष्ट करती हो, विस्तृत देश-कालिक अर्थ को संकेतित-व्यापारित करती हो, संश्लेष की कला से अर्थ को दृढ़ता-दीर्घता देती हो, 'जमीन' जैसे कृषि-प्रमुख शब्द, 'सेवा' जैसे सामाजिक शब्द, 'अवमूल्यन' जैसे राजनीतिक शब्द, 'निर्यात' जैसे भौगोलिक शब्द, 'कटपीस' माल जैसे व्यापारिक शब्द और 'फोकस' जैसे भौतिकी के शब्द को सद्यः अभिनव अर्थ-विच्छित्ति प्रदान करती हो, 'पारिजात-हरण', 'नट-लीला', 'बीज-मंत्र', 'माया-सरोवर' और 'शीतल माया-नगर' जैसे अनुभव-पुंजित तथा कल्पना-प्रमुख मिथक-शब्दो का प्रयोग करती हो, हिन्दी में पहले-पहल अनैतिक दृश्यों और अश्लील क्रियाओं को बिना किसी अश्लीलता

और अनैतिकता की गन्ध के बड़ी जोरदार अभिव्यक्ति देती हो और इस मुद्दे पर व्यापक विचार-विमर्श तक कराती हो, जो नाम से भी 'माटी' से कहीं अधिक 'पानी' का बिम्ब प्रस्तुत करती हो और उपमान के लिए स्थल-स्थल पर जलीयता को ही अवरेखित करती हो, उसे कोई अनुभव और कल्पना की क्षमता कुंठित करने वाली भोथरी भाषा कैसे कह सकता है ? यदि इतनी सारी उत्कृष्ट विशेषताओं से समन्वित भाषा अनुभव और कल्पना की क्षमता कुंठित करने वाली तथा भोथरी है, तो श्रेष्ठ सर्जनात्मक औपन्यासिक भाषा कौन-सी है और हिन्दी मे वह कहां है ? यही वह सत्य खुद-ब-खुद नग्न हो जाता है कि औपन्यासिक भाषा की जलीयता सिद्ध करने के लिए जैनेन्द्र और अज्ञेय से जैसे उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं वैसे सभी प्रकार के उदाहरण 'वैतरणी' की भाषा मे भी प्राप्त है। टी० एस० एलियट ने अपने 'सेलेक्टिड एसेज' (1917-32) मे लिखा है कि "वह भाषा हमारे लिए अधिकाधिक महत्त्वपूर्ण है, जो नयी वस्तुओ, नयी अनुभूतियों, नये पहलुओं को आत्मसात् करने और अभिव्यक्त करने के लिए तीव्र संघर्ष कर रही है"। 'अलग-अलग वैतरणी' में भाषा का यह तीव्र संघर्ष हर कहीं कशमकश करता हुआ दीख पड़ता है।

बिम्ब-विधान वाली सर्जनात्मक कथाभाषा :

शिवप्रसाद सिंह का बिम्ब-विधान अर्थ को मानस-तहों तक पहुँचा देने वाला है। उनके बिम्ब-विधान का महत्त्व सजीवता, स्पष्टता, चटकीलापन आदि सवेदीय विशेषताओं के कारण नही है, बल्कि पाठकीय संवेदन के साथ उसके सम्बन्धवश है। जैसा रिचर्ड्स ने स्वीकार किया है, बिम्ब की जो सामान्य संवेदीय प्रवृत्ति है उसे छोड़ कर भी वह संवेदना को प्रखर कर सकता है। वस्तुत. बिम्ब की प्रशंसा विचार और भावना पर पड़ने वाले उसके तीव्र प्रभाव के कारण ही की जाती है। उसका सही महत्त्व इसी दृष्टि से है, जिसमें अर्थ-संश्लेष अनुभव को अपनी विराटता और समग्रता मे व्यक्त करता है। 'अलग-अलग वैतरणी' का बिम्ब-विधान ऐसा ही है। आरम्भ का एक बिम्ब है—"मेला की गहमागहमी, रौनक, आवाजें, गन्धें उन्हें बरजोरी अपनी ओर खींच रही थी" (पृष्ठ 6)। इस वाक्य में क्रमशः बाह्य से आन्तर अनुभूति कराने वाले शब्दों के प्रयोग हुए हैं। 'गहमागहमी' और 'रौनक' के बिम्ब चाक्षुष हैं। एक में गतिशीलता है, दूसरे में साज-सज्जा; एक मे व्यापकता है, दूसरे में केन्द्राभिमुखता। 'आवाजें' का बिम्ब श्रौत है और 'गन्धें' का घ्राणमूलक। इस प्रकार आँख, कान, नाक के सहारे मन के खिंचाव तक का अर्थ-बोध विचार और भावना पर पड़ने वाले बिम्बों के तीव्र प्रभाव को स्पष्ट करता है। शारीरिक सौन्दर्य-बिम्ब की योजना तो अद्भुत है—"गोरे चम्पई रंग के बीच हल्की कालिमा लिये

ललछौहे, गदराये वक्ष उसकी आँखों में अजीब उदासी से भरी वेदना जगा जाते। पके हुए चित्तीदार अमरूदों की गन्ध उसके नथुनों में बस जाती। वह बेसुध की तरह अपने निरर्थक शरीर को चोली और ब्लाउज से ढँक लेती" (पृष्ठ २११)। यहाँ चाक्षुष और घ्राण बिम्ब के सहारे अर्थ को अत्यन्त तीव्रता दी गयी है। पटनहिया भाभी के शरीर का यह भराव-पूर्ण प्रकटन उसकी मानसिक रिक्तता को कितना करुण और हृदय-द्रावक बना देता है। जितना तीव्र शरीर का चाक्षुष बिम्ब है, जितनी तीव्रता चित्तीदार अमरूदों की गन्ध के नथुनों मे बस जाने की है, उतनी ही तीव्रता आन्तर रिक्तता की भी है। गन्ध के नथुनों मे बस जाने के बाद उसकी सारी अनुभूति, हृदय-मथन की स्थिति, यौवन-जन्य उद्दामता की कसमसाहट और विवशता यहाँ ध्वनि की असंख्य गूजों-अनगूँजो मे बोल उठी है। विशेषणमूलक बिम्ब के उदाहरण-स्वरूप विपिन की अनुभूति की पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—"विपिन को उस दिन कनिया का चेहरा बड़ा नन्हा और टटका धोया-धोया-सा लग रहा था। किसी पुरुष को निवेदित की जाने वाली भावनाएँ जैसे सद्यः सार्थक हो कर चुक गयी हों" (पृ० 493)। प्रस्तुत बिम्ब में अनुभव-संवेदन की तीव्रता, सौन्दर्य-सुरुचि की सूक्ष्मता और निखरी हुई पवित्रता का मधुत्रय है। प्रातः स्नान का यह बिम्ब पुरुष को निवेदित निधि की सार्थकता तथा बुझारथ के प्रति कनिया के समर्पण की विश्वसनीयता को एक साथ सम्पुष्ट कर देता है। 'वैतरणी' में विवशता-परक अर्थ को सटीक भाषा देने के लिए सर्वथा नयी अभिव्यक्ति वाला बिम्ब भी आया है—"एक उलझे हुए तागे का गोल बंडल उसके गले में अँटक गया था, जिसका सिरा पकड़ने की कोशिश में जीभ लटपटा रही थी' (पृ० 442)। इस बिम्ब में विपिन की हिचक, विवशता, रुकावट, असमर्थता आदि स्थितियों का समर्थ और प्रसरणशील अर्थ-बोध निहित है। अमूर्त को मूर्त और मानसिक क्रिया को हूबहू व्यक्त करने वाले इस बिम्ब में अर्थ-संश्लेष अनुभव को समग्रता मे प्रकट करता है। शिवप्रसाद सिंह ने 'वैतरणी' मे उपमान-मूलक बिम्ब के अनेकशः प्रयोग किये हैं। इससे आलंकारिक भाषा का निर्माण तो हुआ ही है, अर्थ को सम्प्रेषणीयता के सहारे गति भी मिली है।

1. "इन खबरों का सिलसिला पुष्पी के मन पर सिलाई की मशीन की तरह बखिया मारता रहा, किन्तु यह एक अजीब सिलाई थी, जिसमें एक परत पर, जो मन के सामने थी, बुनावट कुछ थी और दूसरी परत पर जो आँखों से ओझल थी, बुनावट कुछ थी।" (411)

2. "और सहसा मिसराइन के सीने में कोई चीज सुई की नोक की तरह लगातार टुप्-टुप् गड़ती चलती जाती। उन्हे लगता है कि कोई कलेजे को सिलाई मशीन के नीचे रख कर पैडल हिला रहा है और दर्द-भरी चुभन की एक अटूट

कतार में बखिया लगती चली जा रही है।" (पृष्ठ 302)

उद्धरण एक में अर्थ की कहीं अधिक तीव्रता है, बिम्ब अभिनव है। सिलाई की मशीन की तरह बखिया मारने से खबरों के सुदृढ़ रूप में ग्रहण किये जाने की स्थिति और बखिया के दश की पीडक स्थिति—दोनों ही का परिचय प्राप्त होता है। 'मन के सामने की बुनावट' और 'आँखों से ओझल की बुनावट' अर्थ को और क्षिप्र बना देती है। इस बिम्ब से भीतर और बाहर की स्पष्ट अलगाव का नया अर्थ मिल जाता है। साथ ही, लेखक की अनुभव-संवेदी काल्पनिक सर्जन-प्रक्रिया स्पष्ट हो पड़ती है। उद्धरण दो में भी उपमानमूलक बिम्ब व्यथा की अनुभूति को क्रमशः शाणित करने वाला है। यहाँ निर्ममता से कलेजे के छिदने और दर्द-भरी चुभन के सहने की संश्लिष्ट, पीड़क अनुभूति अपने प्रकर्ष पर है, जिसका संबंध पाठकीय संवेदन के साथ कहीं तीव्र और प्रभावमय है। 'वैतरणी' की गद्य-भाषा में अर्थ की गूंज-अनुगूंज उत्पन्न करने के संदर्भ में उपमान की प्रयोगशीलता भी आत्यन्तिक महत्त्व की है"—"मेला भी एक ऐना ही है पंडित। करैता का मेला पूरे नरवन का ऐना है। जैसी सभ्यता होगी आपके देस-बिहात की मेले के ऐने में वैसी ही दीखेगी" (पृ० 13)। यहाँ अनुभव अपनी परिपूर्णता में रूपायित है।

अर्थवान प्रतीकों की कथाभाषा :

'वैतरणी' की भाषा में, जैसा डा० बच्चन सिंह ने 'सेतु' की गोष्ठी में अपने निबन्ध में स्वीकार किया था, "अनेक नये प्रतीक हैं, जो कथा को अर्थवान् बनाने के साथ-साथ उसे दिशा-निर्देश भी देते हैं" (कल्पना 197 39)। यह प्रतीक-योजना सबसे पहले तो शीर्षक में ही है, जो पूरी कथा को आच्छन्न किये हुई है। बूढ़े बाघ और मेमनों की प्रतीकात्मकता (पृष्ठ 48) जमींदार जयपाल सिंह और उनकी रैयत के सम्बन्ध को बहुत दूर तक अर्थ देती है। जमींदारी-उन्मूलन के प्रतीक-रूप में तूफान को प्रस्तुत कर (पृ० 88-89) उन्मूलन के परिणाम और जयपाल सिंह की परवर्ती स्थिति के भावाभाव को बड़ी सटीकता से अर्थीकृत किया गया है। खानदानी प्रतिष्ठा को प्रतीकित करने वाली दीवालों की नींव और उसकी ईंटों को चाटने वाली दीमकों के रूप में 'बुझारथ', 'खुदाबक्स' और 'सुगनी' की अर्थवत्ता (पृ० 97) तो पूर्वार्थ-बोध तक करा देती है। स्वतः 'वैतरणी' की प्रतीकात्मकता केन्द्रित और प्रसरित दोनों ही प्रकार की है। केन्द्राभिमुख प्रतीक के रूप में 'वैतरणी' बदफैली की खाई को प्रतीकित करती है। (पृ० 453), 'तो कौन किसको पार कराता है वैतरणी' (पृ० 324) की प्रतीकात्मकता लौकिक स्वार्थ की व्यापक सीमा का अर्थ-बोध कराती है।

'सूरज की रोशनी' के प्रकाश और 'रात की अँधेरी' के अन्धकार से (पृ० 532) आशावादिता और निराशावादिता के प्रतीकार्थ चमक उठते हैं। मोगरे के फूल, जिससे पता नहीं कब का अनुराग है शशिकान्त का (पृ० 458), की अभिव्यक्ति तो शिवप्रसाद सिंह की प्रसिद्ध कहानी 'केवड़े का फूल' की तरह ही अपना स्तरीय प्रतीकार्थ स्पष्ट कर जाती है।

चरित्रों के अनुभव और संवेदन को संपृक्त कथाभाषा :

'वैतरणी' में चरित्रों के अनुभव और संवेदन को संपृक्त करने वाली भाषा-प्रतीति के अधिकाधिक प्रयोग हुए हैं। यह भाषा हृदय-संस्पर्श की भाषा है। अनुभूति की यह भाषा जलीयता का सुन्दर उदाहरण है—

1. "यह सब कहते-कहते पुष्पी को लगा कि उसका शरीर किसी चौमुहानी पर नंगा किया जा रहा है।" (पृ० 418)

2. "उसे लगता है कि यह गर्मी कितनी आत्मीय है। जलते हुए बदन के भीतर जैसे कुछ टूट-टूट कर पिघल रहा है और उसकी आत्मा एक अबूझ शीतलता में डूबती जा रही है।" (पृ० 550)

3. "विपिन को लगा कि करैता आज उसके भीतर के तन्तुओं से निकलकर अलग खड़ा हो गया है। विपिन अलग है, उसका गाँव अलग है।" (पृ० 555)

4. "विपिन उनके मुँह से यह बातें ज्यों-ज्यों सुन रहा था उसे लग रहा था कि भीतर कहीं कुछ टूट रहा है, मेड़ें धसक रही हैं, अवरोध ढीले पड़ रहे हैं।" (पृ० 407-8)

उद्धरण 1. में पुष्पी के लज्जा-मिश्रित भय, उद्धरण 2. में विपिन के संबंध-स्वीकार की ऊष्मा, उद्धरण 3. में विपिन का गाँव से वैमुख्य-वैभिन्न्य और उद्धरण 4. में कनिया की बातों का विपिन के हृदय पर क्रमिक रूप से होने वाला तीव्र प्रभावी अनुभव-संवेदन औपन्यासिक सर्जनात्मक भाषा की सफलता है। अनुभव-संवेदन को उक्त भाषा एक हल्के मोड़ से 'वैतरणी' में चिन्तनात्मक संवेदन का स्वरूप ग्रहण कर लेती है, जिसका विकास बड़ी सूक्ष्मता से सतह-पर-सतह पार करने और कदम-पर-कदम रखते बढ़ने में हुआ—"उसे बार-बार जाने क्यों लगता है पुष्पा जन्म-जन्मांतर से उसकी पहचानी है। उसके तन-मन का कुछ भी जैसे अनजाना या अपरिचित लगता ही नहीं। उसने उसके पूरे शरीर को इतने-से-इतना होते देखा है" (पृ० 378)। यहाँ 'इतने से 'इतना' का प्रयोग अद्भुत है। ये अन्यतम क्षमता वाले शब्द हैं, जो अपनी सीमा में ही फैल कर सब-कुछ कह देते हैं, बालिका पुष्पा से जवान गदरायी पुष्पा के सौन्दर्य के सावयव आरोहावरोह का बिम्ब प्रत्यक्ष करा देते हैं।

शब्दभंगी या इंगिति से अर्थ की अनुगूंज निकालने वाली कथाभाषा :

शब्द-भंगी से अर्थ-बोध कराने की विशेषता तथा इंगिति और संकेत से ही अर्थ की गूंज-अनुगूंज निकालने की सम्पन्नता 'वैतरणीकार' की भाषा को उसी तरह सिद्ध है जिस तरह जैनेन्द्र की भाषा को। जैनेन्द्र की पंक्तियां, "माता अत्यन्त कुशल गृहिणी थी। जैसे कुशल थी वैसी कोमल होती तो?' को उद्धृत करते हुए डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है कि "ऐसा सहज और अनाटकीय संयम पहली बार हिन्दी उपन्यास की भाषा में देखने में आता है, मुख्य है वर्णन न करके वर्णन को व्यंजित कर देने की क्षमता" (कल्पना 200/11)। 'वैतरणी' का एक सन्दर्भ है—"अचानक फसल, फूल, फल, ममता, सुरक्षा और आत्म-विश्वास की मिली-जुली गन्धों से भूत और भविष्य नहा जाते थे। मधुमास और भविष्य—मधुमास की विपिन ने खुद जैसे अपने हाथ से हत्या कर ली। और भविष्य?" (पृ० 459) यहाँ मधुमास की हत्या का तो उल्लेख है, किन्तु 'भविष्य' के विषय मे भाषिक उल्लेख का सर्वथा अभाव है। यहाँ लेखक एक प्रश्न-चिह्न लगा कर भविष्य की स्थिति को शब्दों मे नहीं बाँध कर भी उसकी ईप्सित सूचना दे देता है। फलतः जरा-सा चिन्तन के प्रति उन्मुख होते ही सारा अर्थ प्रस्फुट हो पड़ता है। 'वैतरणी' का एक दूसरा सन्दर्भ है—"एक प्रसंग में विनोबा ने लिखा था : मैंने देखा है कि शिक्षकों के साथ उनकी पत्नी नहीं रहती। लेकिन गुरु-पत्नी के बिना कैसे चलेगा? शायद वैसे ही जैसे जवाहिर लाल चलाते हैं और अगर गुरुपत्नियां गांवों के स्कूलों पर रहने लगें तो? तो क्या?" (पृ० 464)। एक ईमानदार आलोचक इसे वर्णन न कह कर वर्णन को व्यंजित कर देने की कला का श्रेष्ठ उदाहरण मानेगा। इसीलिए यह निष्कर्ष निकालना गलत है कि *शिवप्रसाद सिंह की भाषा वर्णन को व्यंजित करने की उस कला से शून्य है*, जो जैनेन्द्र आदि को सिद्ध है।

सन्दर्भ-सर्जन से अर्थवत्ता को गहराने वाली कथा-भाषा :

'वैतरणी' की भाषा सूक्ष्म अर्थवत्ता को तिहरे सन्दर्भ-सर्जन से ज्ञापित करती है। पहला सन्दर्भ-सर्जन प्रकृतिपरक है—"गांव के बाहर तो जैसे कुहरे का पहाड़ झूल रहा है। पूरा तालाब इस विराट् सफेद जन्तु के मुंह में समा गया था भीठे के पेड़, नीम गाछ, कनेर और पाकड़ सभी धुन्ध में छिप गये हैं। एक ऐसा ही धुन्ध विपिन के भीतर भी है। बहुत घना, बहुत दमघोंट। उसके अन्दर क्या-क्या छिपा है? एक बीस-बाईस साल लम्बी डगर उसके दोनों तरफ बहुत-कुछ था। खेत, क्यारियां, पेड़, घर, मकान, रेल, यात्रा, विश्वविद्यालय सभी कुछ। पर एक और चीज थी जो मधुमास की तरह डगर पर छा जाती थी।" (पृ०469) इस उद्धरण मे प्राकृतिक कुहरे के सन्दर्भ-साम्य से आन्तरिक कुहरे को अर्थ दिया

गया है। प्रकृति का यह वर्णन 'माटी' न होकर 'पानी' की गतिशीलता से सम्प्रेरित है। शिवप्रसाद सिंह ने अपनी रचना-प्रक्रिया स्पष्ट करते हुए 'मुरदासराय' के 'कुछ न होने का कुछ' मे लिखा है—'मेरे प्रकृति-चित्रण कभी भी स्टिल फोटोग्रैफी नही थे। उनमे वस्तुओं के स्वभाव और मानव-सम्बन्धों की स्थितियां स्पष्ट थी। मैं मनुष्य और पदार्थ के बीज की हारमनी का कायल रहा हूं"।(मुरदासराय, प्रथम संस्करण, पृ. 17) उनका यह साक्ष्य प्रकृति-सन्दर्भपरक अर्थ की नयी विच्छित्ति को बहुत स्पष्ट तौर पर पुष्ट कर देता है।

'वैतरणी' में प्रकृति-इतर सन्दर्भ-साम्य का उपयोग प्रकृति-परक साम्य की अपेक्षा अधिक है—

1. 'लोशन के कारण आंखों से पानी बह रहा था। शशिकान्त जानता है कि इन आंसुओं में सिर्फ लोशन के कारण ही गर्मी नही उपजी है। एक अन्दरूनी गर्मी और है जो दवाई का बहाना बनाकर लगातार पिघल-पिघल कर बह रही है।" (पृ 539)

2. "ढेकुल के बांस का एक सिरा दूसरे सिरे पर बँधी पत्थर की चक्की के भार से उठ कर काफी ऊँचाई पर शून्यता मे खोया था। यह भार कितना कृत्रिम और कितना बाहरी है, जो बांस के व्यक्तित्व पर बिल्कुल ऊपर से आरोपित है। फिर भी क्या ऊपर से आरोपित भार भी सन्तुलन खोने के लिए विवश नहीं करता, किन्तु इस विवशता मे भी शायद एक सन्तुलन है। तभी तो बांस भार से दबकर अपना सिर उठाए खड़ा है। मगर विपिन तो एक ऐसे कृत्रिम भार से दब रहा है, जिसके चलते वह अपना सिर उठाये खड़ा भी नहीं हो सकता"। (पृ० 405)

3. "ताश के पत्ते चारपाइयों पर बिछे रह गये। गोटियाँ चौबीसी की चौकोर रेखाओं पर वैसे ही पड़ी थी। सारे खेल का वारा-न्यारा इनके हिलने-डुलने से ही हुआ करता है, पर ये हिल कहां पाती हैं अपने से? ये किसी के हाथ के इशारे से हिला-डुला करती हैं बेचारी?" (पृ० 137)

पहले उद्धरण में लोशन के कारण बहते आंसू के सन्दर्भ से अश्रु-प्रवाह के मूल कारण—किसी अन्दरूनी गर्मी तक अर्थ-यात्रा चलती है। अश्रु-प्रवाह के बाह्य प्रातिभासिक कारण से आन्तर कारण के संयुक्त होते ही बाह्य कारण केवल व्याज बनकर रह जाता है और 'माटी' पर 'पानी' तैर पड़ता है। इस भाषा में बाहरी सन्दर्भ से भीतरी मरोड़ को पकड़ने की कोशिश है। यहाँ अर्थ की तीव्रता अनुकूल दिशा में है। दूसरे उद्धरण में प्रतिकूल अर्थ-तीव्रता की सिद्धि है। यहाँ भाषा जड़ वस्तु के सिर उठाने की प्राप्त समर्थता और चेतन मनुष्य की एतद्विषयक असमर्थता के अन्तर को बड़ी बेबाक अर्थ-व्यक्ति देती है, जिस तुलनात्मक बोध मे अभीप्ट अर्थ तीव्रता के प्रकर्ष पर पहुँच जाता है और संवेदन का व्यास फैलने लगता है। ध्यान देने योग्य है कि सन्दर्भ-सर्जन अभीप्ट

अर्थ के लिए प्रवेश-द्वार का काम भी करता है। तीसरे उद्धरण में पदार्थ-परक सन्दर्भ अपने से भिन्न अर्थ को संकेतित कर देता है। यहां माटी और पानी का संयोग न करा कर जलीय मृदा की जलीयता निचोड़ी गयी है। सिरिया और उसके साथ ताश खेलने वाले तमाम छोकरे ताश के पत्ते की तरह हैं, जो बिना सुरजू सिंह के इशारे के हिल-डुल तक नही सकते।

सन्दर्भ-साम्य से तीसरा अर्थ-सर्जन गीत शिल्प का है। सम्पूर्ण उपन्यास में आठ स्थलों पर गीत की ऐसी योजना की गयी है। इन गीतों के सहारे नियत अर्थ तक कहीं अत्यन्त सुगमता पूर्वक प्रवेश संभव हुआ है, तो कहीं अर्थ अधिकाधिक प्रसरित हुआ है, कही अतीत को अर्थ मिल गया है तो कहीं भविष्य अर्थवान हो उठा है, कही सामान्यार्थ को तीव्रता मिली है तो कही स्थिति की दयनीयता उद्घाटित हुई है। कही थीम और चरित्र प्रतिबिम्बित हुए हैं और कहीं पात्रीय अनुभव-संवेदन ही बोल पड़े हैं। इस प्रकार इस *गीति-मूलक सन्दर्भ-सर्जन* की सर्वोपरि विशेषता सार्थक सम्प्रेषणीयता ही है।

छोटे संदर्भ से व्यापक संदर्भ को उजागर करने वाली कथा-भाषा :

'वैतरणी' की भाषा प्रसंगातीत अर्थ का भी बोध करती है, जहां किसी पूर्व प्रसंग से जुड़ कर उपस्थित प्रसंग से ऊपर उठते हुए अर्थ का दुहरा वार किया जाता है। पटनहिया भाभी का विपिन से किताब लेते समय यह कहना: "जहां कुछ भी नही वहां सभी अच्छे ही हैं" (पृ० 220) केवल पुस्तकीय अर्थ का नहीं प्रत्युत जीवन की शून्यता का भी अर्थोद्घाटन करता है। यहां 'कुछ' पुस्तक का अवबोधक होने के साथ-साथ शून्य और निहंग भूत-वर्तमान का भी संकेतक बन जाता है।

पूर्व संकेत से परवर्ती अर्थवत्ता को गहराने वाली कथाभाषा :

'वैतरणी' की भाषा की एक विशेषता परवर्ती अर्थ को बड़े कौशल से पूर्व-संकेत के माध्यम स्पष्ट करना है—"उनके हाथ के कई फूल शव के पास ही जमीन पर बिखर गये" (पृ०298)। जग्गन मिसिर के विषय में उल्लिखित वाक्य कालान्तर में उनके जीवन के बिखरने वाले स्वप्नाभिलाष को पूर्व-बोध दे जाता है, जिससे जग्गन अविवाहित रह जाते हैं। ऐसे कौशल से चारित्रिक अर्थ भी पूर्ण स्पष्ट हो जाता है—"बिना बुल्लू के पेट की बुबुनों को कौन पहचाने ?" (पृ० 26)। यहां बुल्लू की वह चारित्रिक विशेषता स्पष्ट की गयी है, जिसका काम सुगनी, पुष्पा आदि के प्रणय-प्रसंगों और मिलन-सन्दर्भों की विस्तृत जानकारी रखना है। यही कहीं व्यंग्यपरक अर्थ भी अपनी गूंज-अनुगूंज छोड़ता भाषा को सर्जनात्मक शक्ति देता है—"तोहमत लगा कर मेहरारू छोड़ते हैं, [illegible] नही" (पृ० 686)। जग्गन मिसिर के इस वाक्य में बड़ा करुण व्यंग्य

है। यहाँ खलील मियाँ का वह कथन—"झूठी तोहमत लगाकर वतन को छोड़ना सबसे बड़ा कुफ्र है" (पृ० 273) सहसा याद आ जाता है। एक ओर पाकिस्तान बन जाने के बाद भी खलील मियाँ की ऐसी पाक-साफ विचार-धारा और दूसरी ओर विपिन की गाँव को तोहमत लगा कर छोड़ने की विचार-पद्धति। ऐसे में मिसिर का यह वाक्य शाणित व्यंग्य की विविध करुण अर्थ-छायाओं का उद्‌घाटन करा देता है।

काम-सांवेगिकता को निपुणता से निरूपित करने वाली कथाभाषा :

कामोद्रेक की स्थिति, यौन का चिन्तन-कथन, रति-क्रिया की आरम्भिक स्थिति और उसकी समग्र प्रक्रियाओं को 'वैतरणी' की भाषा बड़ी सूक्ष्मता, निपुणता और समर्थता से व्यक्त करती है—

1. "सचेत भाव से खून पर रखे अनजाने गर्म खून ने एक-दूसरे से चिरादिम स्वभाव में बातचीत करना आरम्भ कर दिया था।" (पृ० 477)

2. "उनकी आँखों में कई दृश्य हैं ऐसे जब उनकी दृष्टि कल्पू के शरीर के एक खास हिस्से पर कई बार केन्द्रित हुई है। सोये हुए कल्पू के शरीर के इस अशिथिल हिस्से को उन्होंने देखा नहीं है क्या?" (पृ० 210)

3. "नीचे तल में आघात हल्के थे, स्तर से ऊपर उठ कर तो जैसे पूरा अस्तित्व ज्वार-भाटे मे उलझ रहा था। हरहराहट की आवाज, सभी दिशाओं से छूटने वाले असंख्य तीरों की सनसनाहट, लहरों का अथक क्रम और वे दोनों नंगे शिशुओं की तरह इस प्रवाह मे टकराते रहे।" (पृ० 216)

4. "जग्गन का सारा बदन जैसे एक दैत्याकार हथेली की तरह भाभी को अपने अन्दर बन्द करने के लिए तड़प रहा था और भाभी थी कि उनकी पारे की तरह चंचल देह इस सैलाब से मुक्त होने के लिए छटपटा रही थी। तभी एक चिरादिम जल-जन्तु जैसा कुछ धारा में चिलका था और जल की पारदर्शी सतह चीरता अतल में लीन हो गया था। एक सुनहरी चादर में थिरकनों की गति बँध गयी थी और दोनों जल-भरे बादलों की तरह परस्पर टकरा कर एकाकार हो गये थे।" (वही)

पहले उद्धरण में कामोद्रेक अपनी पूरी ऊष्मा में भाषा-भंगी से व्यक्त हो रहा है, जिसमें क्षण-विशेष की अनुभव-प्राप्ति भी है। इस अर्थ को उजागर करने के लिए इतने कम शब्दों और इतनी प्रभावमयी शैली मे भाव दूसरा अच्छा चोला पहन भी नही सकता था। दूसरे उद्धरण मे यौन के चिन्तन-वर्णन की भाषा सम्पूर्ण कथ्य व्यक्त कर देती है, पर उसमें अश्लीलता की गन्ध तक नही आ पाती है। वस्तुतः ऐसी अभिव्यक्ति में भाषा को कई खतरों का सामना करना पड़ता है। एक ओर बाजारू स्तर के छिछलेपन की समस्या होती है, दूसरी ओर संयमवश अर्थ-संप्रेषण की कठिनाई की, तीसरी ओर अर्थ-बोध होने पर भी उसकी

आत्यन्तिक तीव्रता और प्रभविष्णुता में उभर नहीं पाने की। पर इस मानी में दूसरे उद्धरण की भाषा अत्यन्त समर्थ, सटीक और उपयुक्त है। 'वैतरणी' की ऐसी भाषा उस फल की तरह है, जो बेल के छिलके के कठोर संयम, कटहल के अनावृत्त कोये की अश्लीलता और जामुन के कठोर बीज की असम्प्रेषणीयता से मुक्त है। इस दृष्टि से यह अंगूरी भाषा है--छिलका, बीज सब हिसाब से और रसास्वाद में कोई कठिनाई भी नहीं। तीसरे उद्धरण की केलि-पृष्ठभूमि की भाषा और चौथे उद्धरण की रति-प्रक्रिया के स्पष्टीकरण की भाषा अत्यन्त समर्थ है। वासना के जिस घटाटोप को उसके रेशे-रेशे में पकड़ कर उपन्यासकार ने अपने गद्य में उपस्थित किया है, उस शक्ति का परिचय 'कामायनी' के 'कर्म' सर्ग की—

"दो काठो की सन्धि बीच उस निभृत गुफा में अपने
अग्नि-शिखा बुझ गयी, जागने पर जैसे सुख-सपने।"

जैसी पंक्तियों में ही मिल पाता है।

अर्थ-केन्द्रित कथाभाषा :

'वैतरणी' की भाषा कथाकार की अर्थ-सचेष्टता को स्पष्ट स्वर मे अभिव्यक्ति देती है। अर्थोन्मुख चिन्तन को उपस्थित करने वाले ऐसे दो उद्धरण द्रष्टव्य हैं—

1. "मरदजात का भी कितना-कितना अर्थ है। औरतजात से अचानक इसे काट कर अलग कर देने मे हमें कितना सन्तोष मिलता है।" (पृ० 214)

2. "पर गाँव मे विद्यमान कोई भी नही है ऐसा, जो दरवाजे से, आँगन या छज्जे से इस आवाज़ को सुनकर चौंकता नही। चौंक कर इसके अर्थ पर सोचने की फिकर कितनों को होती है। एक कुतूहल, एक तमाशा सबको अपनी ओर खींचे जा रहा है।" (पृ० 116-117)

बाहर से भीतर को और स्थूल से सूक्ष्म को सूक्ष्मतरता देने वाली कथा-भाषा :

'वैतरणी' में बाहर से भीतर की भाषा, स्थूल अनुभव से सूक्ष्म अनुभव की भाषा एक-पर एक क्रमिक स्थिति पार करती तीव्रतर होती दीख पड़ती है— "शिथिल लेटे रहना, लेटे-लेटे सोचना, सोचते-सोचते कुछ प्रीतिकर दृश्यों को याद करना, यह खुद मे कोई महत्त्वपूर्ण काम नही है, पर विपिन को यह अच्छा लगता है" (पृ०446)। यहां 'शिथिल लेटे रहना' से 'लेटे-लेटे सोचना' मे अन्तर्मुखता है तथा' लेटे-लेटे सोचना' से 'सोचते-सोचते कुछ प्रीतिकर दृश्यों को याद करने' मे और अधिक केन्द्रित अन्तर्मुखता है। इस प्रकार एक-पर-एक सीढ़ी पार कर भाषा अत्यन्त सूक्ष्मतर हो गयी है। 'वैतरणी' की एक बड़ी भाषागत शक्ति कल्पनात्मक चिन्तन और अनुभव में बाहर और भीतर के अन्तर को विलगा देने वाली औपन्यासिक प्रोक्ति-भाषा भी है—

1. "कभी-कभी ऐसे शील का सीमेंट ऊपर से तो टुकड़ों को मिलाकर जोड़ता-सा नजर आता है, पर कहीं भीतर अनजाने दरारें भी पड़ जाती हैं।' (पृ० 441)

2. "मजाक उड़ा कर शायद वह अपने दिल का दर्द बहा लेती मगर खामोश होकर मेरे दिल को मथती रही।" (पृ० 279)

3. "पुष्पी सिल पर लोढ़ा रगड़ती रही···खड़र ··खड़र···खड़र। एक आवाज जो जानी-पहचानी थी रेलगाड़ी की तरह खड़खड़ाती हुई जैसे उसके ऊपर से निकल गयी। उसका शरीर दो टुकड़ों में बँट गया। सिर और कबन्ध अलग-अलग हो कर तड़पने लगे।" (पृ० 412)

4. "सभी लोग अपने-अपने तयशुदा कामों में लगे थे, पर उनका कितना हिस्सा कामों को अदा कर रहा है और कितना किसी अनजानी स्थिति के उभरने की प्रतीक्षा, इसे ठीक-ठीक बता पाना मुशकिल होगा।" (पृ० 594)

सजातीय क्रिया-व्यापारों को भी सूक्ष्म स्तर पर अलगाने वाली कथाभाषा :

'वैतरणी' में अलग-अलग बाह्य-आन्तर स्थितियों के अतिरिक्त कोलाहल से कोलाहल और चुप्पी से चुप्पी को निजी सजातीयता में बिलगा देने वाली भाषा भी है—

1. "गाँवों में कोलाहल भी कई सूरत धर कर आता है। उसकी अदृश्य काया को छू कर ही यह बोध हो जाता है कि यह कोलाहल किस किस्म का है। खेल-तमाशे का कोलाहल कुछ-कुछ कम्प और खुशी की हिलोरें लिए होता है। उसका हर धक्का आदमी को गुदगुदाता है कि अपने जरूरी कामों को जैसे-तैसे निबटा कर उधर की ओर बढ़ चले। एक कोलाहल मकान गिरने, आग लगने का भी होता है, एक छप्पर उड़ने, कीचड़ में धँसे मवेशी को निकालने का भी, जिसे सुन कर अपने-आप इन्सान सहायता करने के लिए चल पड़ता है। पर एक कोलाहल और भी होता है। सबसे अलग, सबसे रहस्यात्मक। इस कोलाहल का स्पर्श मन को मथ जाता है। शिथिल सजगता शरीर को बांध लेती है। एक जिज्ञासा, जो उठ कर भी उठना नहीं चाहती, पर लोभ ऐसा कि बिना कुछ जाने चैन नहीं मिलता है।" (पृष्ठ 569)

2. "कभी-कभी आदमी चुप इसलिए होता है कि उसे कुछ साफ सूझता नहीं, सब-कुछ पिघल कर एक में गड्डमगड्ड हो जाता है। उसे अलगाना-बिलगाना मुश्किल हो जाता है, मगर चुप्पी एक और भी होती है। वह तब उपजती है जब कुहरा छँटते ही दीखता है कि उसके भीतर तो चितकबरा साँप फन फुला कर झूम रहा है। तो इसी की आवाज थी वह?" (पृष्ठ 609)

अनुभव-चिंतन की प्रक्रिया की उद्घाटिका भाषा :

'वैतरणी' में अनुभव-चिन्तन की समग्र प्रक्रिया की उद्घाटिका भाषा का भी प्रयोग हुआ है, जिसमें कथाश्रित गतिशीलता तक आबद्ध है—"सन्दो···

पुष्पा। पुष्पा···चन्दा।···पु···न्दा···ष्पा···च। पुष्पा भी दिव्य उठा सकती है अगर विपिन चाहे" (पृष्ठ 473)। यहाँ विपिन के मस्तिष्क में चन्दा और पुष्पा की एक-पर-एक उभरती तसवीर, दोनों को तौलती मानसिक स्थिति, फिर दोनों को एकमेक करने वाली विवेक-बुद्धि की स्पष्टता तथा इन सारी स्थितियों की गतिशीलता ध्वनि के विघटित कौशल के द्वारा अद्‌भुत ढंग से अभिव्यक्त हो उठी है।

विरोधी समांतरता की कथा-भाषा :

शिवप्रसाद सिंह ने अपने उपन्यास में ऊपर-नीचे, दूर-सामने, अगति-गति तथा प्राचीन-नवीन की विरोधी समांतरता के सहारे अभीप्सितार्थ को विवृत किया है—

1. "देह नीचे आयी पर राजो बहुत ऊपर चली गई थी।" (पृष्ठ 45)

2. "अब तक इतनी तेज प्यास थी, गला सूख रहा था। अब जब पानी सामने है, तो उन्हें लगता है कि पानी पीने की इच्छा मर गई है।" (पृष्ठ 492)

3. "सारा बदन काँप कर थिर हो गया। पंछी उड़ गया।" (पृष्ठ 94)

4. "पर अब तो एक तरह का अनंत गौन हो रहा है। यहाँ रहते वे हैं जो यहाँ रहना नहीं चाहते, पर कहीं जा नहीं पाते। यहाँ से जाते अब वे हैं जो यहाँ रहना चाहते हैं, पर रह नहीं पाते।" (पृष्ठ 686)

अभिव्यक्ति की नयी भंगिमा की कथा-भाषा :

'वैतरणी' की भाषा में अभिव्यक्ति की नई भंगिमाएँ भी हैं। चेहरे पर स्वागतम् का पोस्टर चिपकाए घूमना (पृष्ठ 5), चेहरे पर उत्सुकता का फैल कर बेवकूफी में बदल जाना (पृष्ठ 191), गोल चेहरे को अठकोण होते देखना (पृष्ठ 78), उदासी से चेहरे का तिकोना होना (337) जैसी अभिव्यक्तियाँ भाषा की सर्वथा मौलिक सर्जना है। पपिहरी के लिए जिदियाये बच्चे की पपिहरी रुलाई (पृष्ठ 2) और 'बबुए' को देख कर बबुए की ठुनक को शिवप्रसाद सिंह की भाषा ही कह-बोल सकती है। तत्सम और तद्‌भव शब्दों के प्रयोग-संदर्भ में 'वैतरणी' में प्रयुक्त ग्राम्य, तद्‌भव शब्द यदि देहाती परिवेश को सिरजते हैं, पाठकों में कृतिधर्मा संवेदनाएँ जगाते हैं और मूर्तता तथा विशिष्टता को उजागर करते हैं, तो तत्सम शब्द लालित्यपूर्ण सौन्दर्य की सर्जना करते हैं, धारणाएँ बनाते हैं और अमूर्तता एवं व्यापकता को झलकाते हैं।

अलग-अलग वैतरणी : कितनी माटी, कितना पानी :

डेविड डेचेज ने प्रकारान्तर से भाषा के जल-तत्त्व को प्रवाह देते हुए लिखा है, "जीवन घटनाओं का जंगल है, जिसके अधिकाधिक सामयिक अर्थ महत्त्वहीन

हैं, पर इनमें संभावित गूढार्थ भरे पड़े हैं। एक कुशल कथाकार इन अर्थों को तुरंत विशिष्ट प्रभावपूर्ण बनाता है। वह जीवन का सहज साध्य खण्ड चुनता है और उलझाव से अलगाता और यथार्थ जीवन की किसी घटना के मामूली ज्ञात अर्थ की अपेक्षा उसकी अधिक सूक्ष्म व्याख्या करता है और इस अर्थ-सम्प्रेषण को शुरू से आखिर तक अनोखी रीति से सम्पन्न करता है।"[1] 'वैतरणी' की भाषा डविड डैचेज के इस कथनरूपी पवन के उतार-चढाव के साथ ही आद्यन्त प्रवाहित है और शिवप्रसाद सिंह इसका जल-मार्ग निर्मित-प्रशस्त करने वाले कुशल कथाकार हैं।

---

1. डैविड डैचिज, अ स्टडी ऑव लिटरेचर (न्यूयार्क : कार्नेल यूनिवर्सिटी प्रेस, 1984), पृष्ठ 29

कथा-भाषा : रचनाकार का संदर्भ

1. अज्ञेय
2. हजारी प्रसाद द्विवेदी

'अज्ञेय' की कथा-भाषा

अज्ञेय की कथाभाषा : काव्यात्मक गद्य-भाषा :

'अज्ञेय' हिन्दी के कवि और कथाकार दोनों ही हैं। उनकी रचना में विचित्र भाषिक अपवर्तन (डायवर्सन) है। उनकी काव्य-भाषा में कथा-भाषा की सहजता-निजता व्याप्त हो गयी है और कथा-भाषा में काव्य-भाषा के बहुतेरे गुण संक्रमित हो उठे हैं। स्पष्टतः इस संक्रमण में उनकी काव्य-समृद्धि भी प्रतिबिम्बित है। 'अज्ञेय' की कथा-भाषा की पहली पहचान यही काव्यात्मकता है।

मौलिक संदृष्टि की कथाभाषा :

उनकी भाषा की दूसरी बड़ी शक्ति मौलिकता है। अपनी पूर्ववर्ती कथा-भाषा की परम्परा से विलग, अनुकरण और नकल से सर्वथा परे शक्तिवान् हो सकना ही उनकी जीवन्तता का प्रमाण है। पूर्ववर्ती कथाकारों में प्रेमचन्द की कथा-भाषा साफ, सुलझी हुई, उर्दू-हिन्दी मिश्रित, मुख्यतः ग्राम्य शब्द-कोश की विवरणात्मक-सर्जनात्मक भाषा है और प्रसाद की कथा-भाषा काव्य के अनुशासन से अनुशासित शब्दों की अभिराम सर्जना वाली ऐन्द्रजालिक, बंग-भाषा-प्रभावित ललित काव्य-भाषा। प्रेमचन्द की कथा-भाषा युग-भावना और पाठकीय संवेदना की भाषा है, प्रसाद की काव्यपोषी व्यक्ति-संवेदना की। समवर्ती कथा-कारों में यशपाल की कथा-भाषा वर्णन-प्रमुख सूचना देने वाली है और जैनेन्द्र की घुमावदार, चिन्तन से बोझिल। यशपाल की कथा-भाषा दूर तक युग-सत्य की भाषा है और जैनेन्द्र की दूर तक ऐकान्तिक व्यक्ति-संवेदना की। इससे परे परवर्ती नये कहानीकारों की भाषा व्यक्ति-संवेदन और युग-संवेदन से एकतान, आत्मा और कलेवर में परस्पर प्रतिच्छायित भाषा है, जो अधिकाधिक प्रयोगी, सर्जनात्मक, महीन और अर्थगर्भी है। 'अज्ञेय' हिन्दी कथा-भाषा की विकास-यात्रा में इन सभी सोपानों के बीच अपनी भाषिक दृष्टि और सर्जनात्मकता में मौलिक हैं। उन्होंने लिया नहीं, दिया है।

विकसनशील कथाभाषा :

'अज्ञेय' की तीसरी भाषिक शक्ति निरन्तर गत्यात्मक रूप में उनका भाषा-अर्जन और सर्जन है। उनकी प्रारम्भिक कृतियों से बाद की कृतियों तक की भाषा इसी आधार पर एक विकसनशील वैभिन्न्य प्रकट करती है, शब्दों की 'मितव्ययिता' से 'मितकथन' तक की यात्रा पूरी करती है। इसी कारण वे 'शेखर' के 'अलकृत' गद्य से चलकर 'नदी के द्वीप' के 'माइक्रोस्कोपिक' और 'कार्डियोग्रामी' गद्य तक पहुंचे हैं। इसी कारण उनकी बाद की कृति—'अपने-अपने अजनबी' की भाषा का रचाव एक दूसरी ही 'स्टाइलिस्टिक्स' पर हुआ है, जहाँ उनका कथा-गद्य बहुत दूर तक 'जीवन-सग्राम की भाषा' बन सका है।

पाठक-निर्माण के लिए सचेष्ट कथाभाषा :

पाठक-निर्माण की क्षमता कथाकार 'अज्ञेय' की चौथी भाषिक शक्ति है। हिन्दी में सबसे पहले भारतेन्दु को पाठक-निर्माण की चिन्ता हुई थी। कथा-क्षेत्र में प्रेमचन्द की भाषा पाठकों के अनुकूल ही साफ और सरल थी। पर इसके बाद भी कथा-भाषा में क्षमता-विकास के साथ-साथ इस चेतना की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए था, जो नहीं हो सका। 'अज्ञेय' बिना किसी बाह्य दबाव से अपनी रचना से पाठकों को खीचते, बुलाते तथा भाषा का संस्कार देते हुए उनका निर्माण करते हैं। उनका शब्द-अर्थ-सचेष्ट गद्य स्वयं अपनी सम्भावनाओं को व्याख्येय दृष्टि से पाठक के लिए उजागर करता चलता है। पर यह व्यापार ऊँचे गाम्भीर्य और गहरी मर्यादा के साथ अद्भुत कौशल से सम्पादित होता है। मुनासिब तौर पर 'यह 'अज्ञेय' की ही कथा-भाषा है, जिससे कई बार गुजरने के कारण ही हिन्दी कथा का पाठक 'नयी कहानी' में इसके आगे के संकेतित अर्थ-विषयक तनाव को भी सहजतः ग्रहण कर लेता है।

शब्दार्थ-सजग कथाभाषा :

उनकी कथा-भाषा की पाँचवी शक्ति उनकी भाषा-विषयक—शब्द, अर्थ तथा दोनों की प्रस्तुति-सम्बन्धी—अतिरिक्त सावधानता है, जिसमें उन्होंने अंग्रेजी वाक्य-गठन से लोच और तत्सम, संस्कृत शब्दावली से ऊर्जा प्राप्त की है तथा उनके भीतर के प्रबुद्ध रचनाकार ने अपने विज्ञ व्यक्तित्व के उद्घाटन के साथ-साथ जेम्स ज्वायस, वर्जीनिया वुल्फ़, ई० एम० फोर्स्टर, डी० एच० लारेंस आदि की औपन्यासिक भाषा की तरह अपनी कथा-भाषा को लय-राग दिया है। यह अतिरिक्त सावधानता 'अज्ञेय' के यहाँ जानदार, अधिकाधिक रचना-उर्वर और प्रकृतिगत है। इसीलिए उनकी कथा-भाषा में शब्द कहीं मानो 'खतर-

नाक औजार' बनकर आये हैं, तो कहीं वे 'अधूरे,' फिर कहीं 'ओछे' भी सिद्ध हुए हैं और उनकी कुछ बातें 'शब्दों से परे' होकर भी, 'बिना कुछ कहे' भी, 'बहुत-बहुत अर्थ लिए' प्रकट हुई है, जहाँ 'सबका अर्थ हैं, सब-कुछ का अर्थ है।'

अभिजात कथा-भाषा :

'अज्ञेय' की कथा-भाषा उनकी रचना-प्रक्रिया और रचनात्मक मनोविज्ञान को खोलती चलती है। यहाँ उनका अभिजात भाषा-संसार परिलक्षित होता है। पर आभिजात्य उनकी भाषा में दोष न होकर गुण है। उन्होंने अपनी भाषा मे क्या, किससे, कैसे, कब और कहाँ कहने का सर्वत्र ध्यान रखा है, जो आभिजात्य की ही विशेषता है। आभिजात्य केवल तत्समता मे सिमटा नही होता, उसका आयाम बड़ा होता है। हिन्दी कथाकारों मे औरो का आभिजात्य जहाँ अभिव्यक्ति में बाधक बना है, वही 'अज्ञेय' का साधक। यह उनकी कथा-भाषा की छठी शक्ति है।

'अन्यथाकरण' के कौशल से भरी कथा-भाषा :

उनकी सातवी भाषिक शक्ति 'अन्यथाकरण' (डिस्टार्शन) का कौशल है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कालिदास के आधार पर एक स्थल पर 'अन्यथाकरण' का उल्लेख किया है। जैसे राजा दुष्यन्त द्वारा शकुन्तला की बनायी गयी तस्वीर ठीक-ठीक, हू-ब-हू शकुन्तला नही थी, बल्कि रेखाओं द्वारा 'अन्यथा' अभिव्यक्ति पाकर कुछ अधिक रम्य हो गयी थी, वैसे ही भाषिक अभिव्यक्ति में जहाँ-जहाँ 'अज्ञेय' मानस-संवेदन और अनुभव को माध्यम-विवशता के कारण तद्वत् व्यक्त नही कर पाते, वहाँ-वहाँ उनका कलाकार मार नही खाता, अपितु 'अन्यथाकरण' कर देता है।

भाषा में रचने की जगह स्वतः रचना करने वाली कथाभाषा :

'अज्ञेय' ने अपने पूरे कथा-साहित्य मे कही भी 'सामान्य भाषा' का प्रयोग नही किया है। 'सामान्य भाषा साहित्य की भाषा नही होती, क्योंकि सामान्य भाषा बनने के लिए भाषा को अपनी विशेषताओं का बलिदान करने की कीमत चुकानी पड़ती है।'[1] और साहित्य-भाषा विशेषता का बलिदान नही कर पाती। 'अज्ञेय' की भाषा मे तत्सम हो या तद्भव, सघन वाक्य-रचना हो या ठेठ, अलंकरण हो या सादगी—सर्वत्र भाषिक विशिष्टता है। यह बड़ी बात है।

---

1. आर्नल्ड टॉयनबी : इतिहास का अध्ययन-1 (लखनऊ : सूचना प्रका० उत्तर-प्रदेश), पृ० 393

विकसनशील कथाभाषा :

'अज्ञेय' की तीसरी भाषिक शक्ति निरन्तर गत्यात्मक रूप में उनका भाषा-अर्जन और सर्जन है। उनकी प्रारम्भिक कृतियों से बाद की कृतियों तक की भाषा इसी आधार पर एक विकसनशील वैभिन्न्य प्रकट करती है, शब्दों की 'मितव्ययिता' से 'मितकथन' तक की यात्रा पूरी करती है। इसी कारण वे 'शेखर' के 'अलंकृत' गद्य से चलकर 'नदी के द्वीप' के 'माइक्रोस्कोपिक' और 'कार्डियोग्रामी' गद्य तक पहुचे हैं। इसी कारण उनकी बाद की कृति—'अपने-अपने अजनबी' की भाषा का रचाव एक दूसरी ही 'स्टाइलिस्टिक्स' पर हुआ है, जहाँ उनका कथा-गद्य बहुत दूर तक 'जीवन-संग्राम की भाषा' बन सका है।

पाठक-निर्माण के लिए सचेष्ट कथाभाषा :

पाठक-निर्माण की क्षमता कथाकार 'अज्ञेय' की चौथी भाषिक शक्ति है। हिन्दी में सबसे पहले भारतेन्दु को पाठक-निर्माण की चिन्ता हुई थी। कथा-क्षेत्र में प्रेमचन्द की भाषा पाठकों के अनुकूल ही साफ और सरल थी। पर इसके बाद भी कथा-भाषा में क्षमता-विकास के साथ-साथ इस चेतना की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए था, जो नहीं हो सका। 'अज्ञेय' बिना किसी बाह्य दबाव से अपनी रचना से पाठकों को खींचते, बुलाते तथा भाषा का संस्कार देते हुए उनका निर्माण करते हैं। उनका शब्द-अर्थ-सचेष्ट गद्य स्वयं अपनी सम्भावनाओं को व्याख्येय दृष्टि से पाठक के लिए उजागर करता चलता है। पर यह व्यापार ऊँचे गाम्भीर्य और गहरी मर्यादा के साथ अद्भुत कौशल से सम्पादित होता है। मुनासिब तौर पर 'यह 'अज्ञेय' की ही कथा-भाषा है, जिससे कई बार गुजरने के कारण ही हिन्दी कथा का पाठक 'नयी कहानी' में इसके आगे के संकेतित अर्थ-विषयक तनाव को भी सहजतः ग्रहण कर लेता है।

शब्दार्थ-सजग कथाभाषा :

उनकी कथा-भाषा की पांचवी शक्ति उनकी भाषा-विषयक—शब्द, अर्थ तथा दोनों की प्रस्तुति-सम्बन्धी—अतिरिक्त सावधानता है, जिसमें उन्होंने अंग्रेजी वाक्य-गठन से लोच और तत्सम, संस्कृत शब्दावली से ऊर्जा प्राप्त की है तथा उनके भीतर के प्रबुद्ध रचनाकार ने अपने विज्ञ व्यक्तित्व के उद्घाटन के साथ-साथ जेम्स ज्वायस, वर्जीनिया वुल्फ़, ई० एम० फोर्स्टर, डी० एच० लारेंस आदि की औपन्यासिक भाषा की तरह अपनी कथा-भाषा को लय-राग दिया है। यह अतिरिक्त सावधानता 'अज्ञेय' के यहाँ जानदार, अधिकाधिक रचनाधर्मी और प्रकृतिगत है। इसीलिए उनकी कथा-भाषा में शब्द वहीं मानों 'खतर-

नाक औजार' बनकर आये हैं, तो कहीं वे 'अधूरे,' फिर कहीं 'ओछे' भी सिद्ध हुए हैं और उनकी कुछ बातें 'शब्दों से परे' होकर भी, 'बिना कुछ कहे' भी, 'बहुत-बहुत अर्थ लिए' प्रकट हुई है, जहाँ 'सबका अर्थ है, सब-कुछ का अर्थ है।'

अभिजात कथा-भाषा :

'अज्ञेय' की कथा-भाषा उनकी रचना-प्रक्रिया और रचनात्मक मनोविज्ञान को खोलती चलती है। यहाँ उनका अभिजात भाषा-संसार परिलक्षित होता है। पर आभिजात्य उनकी भाषा में दोष न होकर गुण है। उन्होंने अपनी भाषा में क्या, किससे, कैसे, कब और कहाँ कहने का सर्वत्र ध्यान रखा है, जो आभिजात्य की ही विशेषता है। आभिजात्य केवल तत्समता में सिमटा नहीं होता, उसका आयाम बड़ा होता है। हिन्दी कथाकारों में औरों का आभिजात्य जहाँ अभिव्यक्ति में बाधक बना है, वहीं 'अज्ञेय' का साधक। यह उनकी कथा-भाषा की छठी शक्ति है।

'अन्यथाकरण' के कौशल से भरी कथा-भाषा :

उनकी सातवीं भाषिक शक्ति 'अन्यथाकरण' (डिस्टॉर्शन) का कौशल है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कालिदास के आधार पर एक स्थल पर 'अन्यथाकरण' का उल्लेख किया है। जैसे राजा दुष्यन्त द्वारा शकुन्तला की बनायी गयी तस्वीर ठीक-ठीक, हू-ब-हू शकुन्तला नहीं थी, बल्कि रेखाओं द्वारा 'अन्यथा' अभिव्यक्ति पाकर कुछ अधिक रम्य हो गयी थी, वैसे ही भाषिक अभिव्यक्ति में जहाँ-जहाँ 'अज्ञेय' मानस-संवेदन और अनुभव को माध्यम-विवशता के कारण तद्वत् व्यक्त नहीं कर पाते, वहाँ-वहाँ उनका कलाकार मार नहीं खाता, अपितु 'अन्यथाकरण' कर देता है।

भाषा में रचने की जगह स्वतः रचना करने वाली कथाभाषा :

'अज्ञेय' ने अपने पूरे कथा-साहित्य में कहीं भी 'सामान्य भाषा' का प्रयोग नहीं किया है। 'सामान्य भाषा साहित्य की भाषा नहीं होती, क्योंकि सामान्य भाषा बनने के लिए भाषा को अपनी विशेषताओं का बलिदान करने की कीमत चुकानी पड़ती है।'[1] और साहित्य-भाषा विशेषता का बलिदान नहीं कर पाती। 'अज्ञेय' की भाषा में तत्सम हो या तद्भव, सघन वाक्य-रचना हो या ठेठ, अलंकरण हो या सादगी—सर्वत्र भाषिक विशिष्टता है। यह बड़ी बात है।

---

1. आर्नल्ड टॉयनबी : इतिहास का अध्ययन-1 (लखनऊ : सूचना प्रका० उत्तर-प्रदेश), पृ० 393

हिन्दी मे अन्य कथाकारो की भाषा में कथा-भाषा के वर्णनात्मक रूपवश कहीं-न-कहीं यह स्खलन हो ही गया है। 'अमृत और विष' जैसे उपन्यास के कथाकार का तो इस दृष्टि से बुरा हाल है। यहीं यह फर्क साफ होने लगता है कि अन्य कथाकार जहाँ ज्यादातर भाषा मे रचना करते हैं, वहाँ 'अज्ञेय' की भाषा स्वत: रचना करती चलती है।

कथा-भाषा बनाम काव्यभाषा :

उनकी कथा-भाषा में 'अत्यन्त ऊँची कोटि की सर्जनात्मकता है।' फलतः उनकी काव्य-भाषा के मामले उनकी कथा-भाषा की शक्ति कहीं भी उन्नीस नहीं होकर बीस ही पड़ती है। उनकी काव्य-भाषा मे 'तथ्य को सत्य बनाने वाली कीमियागिरी' साथ छोड़ देती है, किन्तु कथा-भाषा में गहरी रागात्मक संपृक्ति' और ऊष्मा कभी साथ नहीं छोड़ती। डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी ने 'अज्ञेय' की एक प्रसिद्ध काव्य-पंक्ति 'दुख सबको मांजता है' से उनके एक कथांश—'वेदना में एक शक्ति है जो दृष्टि देती है'—के भाषा-स्वरूप का तुलनात्मक विवेचन किया है। वहाँ तद्भव-प्रयोगवश काव्य-पंक्ति मे जिस 'सर्जनात्मक स्तर पर विविध अर्थच्छायाओं के पारस्परिक टकराव से उत्पन्न गूंज-अनुगूंज का उल्लेख किया गया है', वह गूंज-अनुगूंज 'नदी के द्वीप' की गद्य-पंक्तियों में भी प्राप्त होती है। 'गौरा' वाले अध्याय में गौरा को भुवन का पत्रोत्तर मिलने पर कथाकार टिप्पणी करता है। वहाँ 'मांजना' का ठीक वैसा ही काव्य-पंक्तिवत् प्रयोग हुआ है—"आत्मानुशासन अगर भुवन के लिए सहल है तो उसके लिए और भी सहल होना चाहिए—सहल और हाँ, उपयोगी भी, क्योंकि वह जीवन को मांजेगा···"(नदी के द्वीप, 1966, पृ० 309) गौरा भी अपने पत्र मे 'मंजने' की बात लिख चुकी है ···' 'भुवन दा, मुझे आशीर्वाद दीजिए, बल दीजिए कि आप दूर हों चाहे पास, आपके स्नेह से मंजकर, शुद्ध होकर मैं चमकीली रहूँ···' (वही, अन्तराल, पृ० 278)। और 'रेखा' परिच्छेद मे रेखा का कथन·····"पर उसकी विलक ही जैसे दृश्य को मांज जाती है···' (वही, पृ० 105)। चतुर्वेदजी ने प्रसंगतः यह दिखाकर कि तद्भव शब्द में अधिक सर्जनात्मक संस्कार होते हैं और तत्सम में कम, यह प्रतिपादित करना चाहा है कि 'अज्ञेय' की काव्यभाषा उनके गद्य से अधिक रचनात्मक है, पर वे यह भूल गये हैं कि 'रचनात्मकता तद्भव और तत्सम शब्दो से···शब्द की जाति से नहीं उत्पन्न होती, बल्कि वाक्य-प्रवचन के वैशिष्ट्य से झलमलाती है। इधर आलोचना में तो केवल तद्भव की बात करना भी बेकार है, क्योंकि मे अपने आप मे छूछे ···'एम्पटी'···बनकर रह गए हैं। तद्भव 'मांजना' से ही बने एक वाक्य····'स्त्री बर्तन मांजती है' को भला कौन रचनात्मक भाषा का उदाहरण मानेगा? स्पष्टत: यह रचनात्मकता अप्राणिवाचक कर्ता-प्रयोग से उत्पन्न हुई है, जो सन्दर्भित कर्म से शक्ति पा रही है। यह रचना-

त्मकता 'दुःख सबको माँजता है' और 'वह (आत्मानुशासन) जीवन को माँजेगा' मे एक ही तरह प्रयुक्त होकर भाषा को विशिष्टता दे रही है। तत्सम की अपेक्षा तद्भव की सार्थकता, सर्जनात्मकता को 'अज्ञेय' की कथाभाषा मे एक ऐसे दूसरे वाक्य मे परिलक्षित किया जा सकता है, जिसमे एक ही साथ तत्सम और तद्भव दोनों ही प्रयुक्त हुए हैं।' रेखा ने भुवन को पत्र लिखा है'''व्यथा सृजन करती है, मेरी व्यथा बाँझ रह गयी, मुझे भी झुलसा गयी''' (रेखा का भुवन को पत्र, नदी के द्वीप, पृ० 268) यहाँ 'सृजन' अर्थ को वह तेजी और जोरदार पैठ नही दे पाया है, जो 'बाँझ' 'और' झुलसा' जैसे शब्द दे गए हैं। फिर भी 'सृजन' का महत्व है। यह महत्व उसकी बिम्ब-शून्यता का नही, उसके द्वारा एक महान् कार्य-सम्पादन का है, जो अपने-आप मे बड़ा ऊँचा है। चतुर्वेदी जी ने आगे पुनः 'तुम्हारे साथ कितने हियो मे कितनी असीसें उमड़ आयी हैं'—जैसी काव्य-पंक्ति से 'नदी के द्वीप' की रेखा के प्रसिद्ध कथन—'आई ऐम फुलफिल्ड' की तुलना करते हुए'असीस' की व्यंजना को अधिक महन बताया है। लगता है, चतुर्वेदीजी प्रस्तुत कविता-पंक्ति में कवि की आत्माभिव्यक्त भाषा और कथा-पंक्ति मे पात्र-विशेष के संलाप की भाषा, कविता-पंक्ति मे शब्द-संकेतित अर्थाभिव्यक्ति की भाषा और कथा-पंक्ति मे अन्य आसन्न वाक्यों तक फैली अर्थ-सिद्धि की भाषा, कविता-पंक्ति में नरजगत् की चराचर-जगत् के प्रति निवेदित भाषा, कथा-पंक्ति में नारी की पुरुष के प्रति निवेदित भाषा और कविता-पंक्ति मे बहुवचनमूला प्रीति-धन्यता की निस्संकोच भाषा तथा कथा-पंक्ति मे एकात्मक प्रीति की परिपूर्णता की संकोची भाषा का अन्तर नही महसूस कर सके है। 'आई एम फुलफिल्ड' कहने वाली रेखा के पूर्व सन्दर्भ मे उसकी 'आर यू रीयल' उक्ति है। अपना कथन समाप्त करते ही वह हठात् 'भुवन के पैरों की धूल' लेती है। उसी पृष्ठ पर 'अब सब कुछ सकूँगी, भुवन को स्वीकारोक्ति जताती है, बाद मे —'मेरी यह देह जैसी तुम्हारी और उमड़ी थी, कभी नही उमड़ी', फिर 'मेरे मालिक,' 'अच्छे भुवन', 'राजा भुवन' 'त्रिभुवन के महाराज'—'महाराज ए कि साजे एले मम हृदयपुर माझे'। कथा-भाषा में गहन व्यंजना की यह दूरी मापते ही चतुर्वेदी जी की भ्रांत स्थापना बेबुनियाद हो जाती है और कथाकार की रहस्य-भरी सर्जनात्मकता उजागर होकर कही अधिक निखार पा जाती है।

शास्त्र के ज्ञान-संस्कार से समर्थ, प्रभावक्षम कथा-भाषा :

'अज्ञेय' ने अपनी सर्जनात्मक गद्य-भाषा को काव्यशास्त्र, व्याकरण, रचना (कम्पोजीशन) और भाषिकी के ज्ञान-संस्कार का योग देकर कही अधिक प्रभाव-क्षम और समर्थ बनाया है—

1. "निरा तथ्य तब तक सत्य की अभिधा नही पाता जब तक उसके साथ रागात्मक सम्बन्ध न हो'''" (जयदोल, तृतीय संस्करण, पृ० 65)।

2. "इसलिए मेरी बात पर ध्यान न दें·· वह चलती बात है । अपने 'श्लेष' पर वह हँस पड़ी ।" (नदी के द्वीप, पृ० 33)

3. "वह देख रहा था कि कोई जातिवाचक विशेषण उसके साथ आता ही है···यहां तक कि उसे लगता, स्वयं अपने को वह 'मैं' 'चन्द्र' न कहकर कहीं 'वह' 'बुर्जुआ पत्रकार चन्द्रमाधव' न कहने लग जाए ।" (वही, पृ० 190)

4. "विधि हँसती है, विधि है या नही, कौन जाने, पर वह हँसती जरूर है । मुहावरे ने उसे हँसने का हक दिया है ।" (ये तेरे प्रतिरूप, 1969, पृ० 104) ।

5. 'खू-ब्लाई' खासिया भाषा का 'रामराम' है, किन्तु यह उच्चारण परदेशी है और स्वर परिचित ···।' (जयदोल, पृ० 51) ।

6. 'मै ? मै ? एक ही शब्द की दो प्रकार के स्वरो में आवृत्ति—बिना कुछ कहे भी रेखा कितना कह सकती थी ।' (नदी के द्वीप, पृ० 22)

उद्धरण एक में अभिधा व्यजना मे अपनी अभिप्रेयता और सत्य की अभिप्रेयता को उत्पन्न करती है । 'सत्य नही बनता' की जगह 'सत्य की अभिधा नही पाता' अधिक सर्जनात्मकता का प्रमाण है । उद्धरण दो में श्लेष के द्वारा 'चलती' के अर्थ दर्शाये गए हैं । हँसी इसी श्लेष के कारण उठती-सँवरती है । इसलिए भाषा श्लेष-गर्भित होकर यहां सार्थकता पा जाती है । उद्धरण तीन में 'रूसी डेलीगेशन' के प्रभाववश चन्द्रमाधव के निर्वैयक्तिक रूप मे बोलने के अन्दाज को व्याकरण के स्तर पर पकड़ कर स्पष्ट किया है । इससे लक्षित होते भाषाई परिवर्तन के साथ 'स्व' त्याग कर 'जाति' तक पहुँचे संवेदन को भी बड़े चमत्कारी और प्रभावी ढंग मे व्याकरणिक शब्द के सहारे सर्जनात्मकता दी गई है । उद्धरण चार में 'मुहावरे' मात्र के प्रयोग से सम्पूर्ण 'लोक' को ध्वनित कर दिया दिया गया है ।'मुहावरा' 'फिट' नही होता तो 'लोक' के प्रति 'अज्ञेय' की इतनी प्रखर चेतना उजागर नही होती । यहां भाषा-रचना की विश्लेषण और रेखांकन करने वाली सूक्ष्म दृष्टि भी है । उद्धरण पांच मे इतर भाषा के एक विशिष्ट शब्द को प्रस्तुत कर, वाचिक भाषा की दृष्टि से उसके उच्चारण को 'मार्क' कर उसके विशिष्ट और कांक्षित अर्थ को उजागर किया गया है । 'अपरिचित स्वर' ने रोज के परिचित स्वर से कही अधिक कह दिया है । अन्तिम उद्धरण का 'मैं' अयोगात्मक 'चीनी' भाषा की तरह लय-वैभिन्न्य से सर्वथा दो भिन्न अर्थ ध्वनित कर देता है । योगात्मक हिन्दी के पहले 'मैं' मे जैसे पिपृच्छा है कि क्या सवाल मुझसे कर रहे हैं और दूसरे 'मैं' में सहसा ही पकड़े जाने की चोर मनःस्थिति की घबड़ाहट वाली अभिव्यक्ति ।

मर्म को पकड़ में समर्थ कथाभाषा :

'अज्ञेय' की भाषा मे 'मर्म की पकड़' है । शब्दो के प्रयोग मे वे संस्कारी हैं ।

मर्म पकड़ने की प्रक्रिया में भाषा का बाह्य धर्म झूठा भी पड़ा है। पर इसकी चिन्ता उन्हें नहीं—'भाषा अथवा शब्द का संस्कार व्याकरण-शुद्धि से अधिक बड़ी और गहरी बात है।' (आत्मनेपद, प्रथम संस्करण, पृ० 164) उनके कथा-गद्य में लिंग, वचन, कारक, वर्तनी, विशेषण और समास के अतिरिक्त 'लोनवर्ड' की भाषाई प्रकृति तक से सम्बद्ध भूलें हैं। लिंग-भूल के उदाहरण 'सच्चे' विनय (नदी के द्वीप, 14), 'निरी' लोलुपता (वही, २८), लखनऊ से प्रतापगढ़ की यात्रा एक 'रेवेलेशन' ही 'था' (वही, 147), जेब 'टटोला', सिगरेट 'ये' (वही, 41), साँस बन्द हो 'जाता' है (वही 147)', 'निरी' होमसिकनेस (वही, २75), नदी का पानी बहती हुई सूखी बालू हो 'जाती हैं', (वही, 315), खिड़की 'के' काँच (अपने-अपने अजनबी, प्रथम सं० 81) आदि हैं। इनमें विशेषण, परसर्ग और क्रिया तीनों ही मुद्दों पर लिंग की भूलें हैं। 'निरा' जैसे अव्यय का भी लिंग-परिवर्तन किया गया है। वचन की भूल का उदाहरण—'कोई जूठे बर्तन नहीं थे' (अपने-अपने अजनबी, 46) जैसा प्रयोग है। इसमें 'कोई' के अनुरूप एकवचन क्रिया का निर्वाह नहीं हो सका है। कारक भूल मुख्यतः 'ने' चिह्न के प्रयोग में हुई है—'लेकिन यह तो' मैं बताया नहीं' कि बम्बई कैसे बुला रहा हूँ।' (नदी के द्वीप, पृ० 256) वर्तनी की भूल 'घनिष्टता' (वही, 45), 'अधुरी' (वही, 70), 'सबेरे' (वही, 198) और 'चिथड़े-चिथड़े' (वही, २37) जैसी है। विशेषण-विषयक भूलों के उदाहरण 'प्रस्फुटित' (वही, 73) और अनुमानित (वही, २83) जैसे प्रयोग हैं, जिनके रूप 'प्रस्फुट' और 'अनुमत' होने चाहिए थे। 'अनधिकार' की जगह 'अनाधिकार' (वही, 308) का व्यवहार सामासिक भूल का उदाहरण है तथा 'बावजूद भी' (वही, 256) का प्रयोग 'लोनवर्ड' की भाषाई प्रकृति के अज्ञान का परिचायक है। पर 'अज्ञेय' की भाषा में इन भूलों की वजह केवल उनका अज्ञान नहीं है। उन्होंने मातृभाषा समझने वालों की तरह हिन्दी की उपेक्षा नहीं की है, बल्कि भाषा मानकर, पढ़-समझकर सही संस्कारी ढंग से उसका उपयोग किया और उसको दिया है।[1] उनकी स्थिति एच०ऐलन स्मिथ की तरह केवल कानों की पकड़ से व्याकरण का परिचय पाने की नहीं है और न मिस्टर हर्स की तरह प्रचलन-मात्र में भाषा के 'आर्किटेक्चर' को देखने की है। वस्तुतः उनकी भाषा में व्याकरण के यत्किंचित् स्खलन का एक कारण भिन्न-भिन्न स्थलों के स्थानिक प्रयोग के आधार पर भाषाई प्रकृति का ग्रहण है। शेष भूलों की खटक उनकी रचना (कम्पोजीशन)-सावधानता और सर्जनात्मकता के प्रवाह में शीघ्र पता नहीं देती; क्योंकि उनके वाक्य चमकते हुए छुरे की तरह का पैनापन लिए और उसकी सफाई के लिए व्याकरण की काट करते हुए भी भीतर-बाहर अपनी स्पष्ट और प्रत्यक्ष आकृति निखारते चलते हैं। उनकी भाषा में

1. आत्मनेपद, पृ० 163

बीस-बीस पंक्तियों के संघट्ट वाले एकमेक वाक्य की भी ऐसी प्रवहमान रचना है, जो पाठ और अवबोध में जरा भी कृत्रिम तथा बोझिल नहीं लगती है।[1] ऐसा उनमे भाषा-मर्म की परख से ही सम्भव हुआ है।

संवेदना से एकतान कथाभाषा :

भाषा-मर्म की 'अज्ञेय' मे कई-कई परतें हैं। इसके स्वरूप और रहस्य को ठीक-ठीक नही परख सकने के कारण ही नन्दकिशोर मित्तल ने उन पर दो आरोप लगाये हैं—1. उनमे संवेदना और भाषा परस्पर सम्बद्ध नहीं है। २. उनकी वाक्य-रचना विचित्र शब्दो का जाल बुनने वाली हैं, जिसमें लेखक मौके के मुताबिक अर्थ बताया करते हैं और पाठक सर फोड़ता रह जाता है।[2]

पर वास्तविकता इसके प्रतिकूल है। अज्ञेय की कथा-भाषा उनकी संवेदना से एकतान है। वह उनकी संवेदना के तनाव का वहन और सहन दोनों ही करती है। 'शेखर: एक जीवनी' की भाषा बहुत साफ तौर पर उस व्यक्ति और समाज-संवेदना की भाषा है, जिसमें लेखक और लेखक का समाज जीता है। 'रोज'और 'शरणार्थी' जैसी कहानिया जिस भाषा मे बोलती हैं वे नकली खड़ी की हुई समस्याओ की भाषा न होकर जीती-जागती, लहकती समस्याओं की भाषा है। लेखक के विचार और उसके चिन्तन-संवेदन को उसकी किसी भी कथा-कृति या कहानी मे बिना किसी उलझाव के महसूस किया जा सकता है, चाहे हम 'शेखर' पढ़ें या 'नदी के द्वीप' या 'अपने-अपने अजनबी'। भाषा और संवेदना की उनकी एकतानता ही *'अपने-अपने अजनबी'* मे *'क्षण'* को *भीतरी भाषा, सच्ची भाषा,* अनुभव की भाषा मे पकड़ना चाहती है····'और अनुभव की भाषा में क्षण क्या है?' (23) इसी कृति मे योके को लगता है कि 'उसके और सेलमा के बीच···

---

1. ये तेरे प्रतिरूप, पृ० 44-45
2. "पढ़िए 'शेखर' से लेकर 'अपने-अपने अजनबी' और मालूम हो जाएगा कि वे कुछ विचित्र शब्दों के माध्यम से बुना जाल और नकली (सायास) खड़ी की हुई समस्याएं हैं, जो न तो लेखक के विचारों के बारे में कुछ बताती हैं, न उस समाज के बारे में, जिसमे लेखक जी रहा है। ऐसे लेखक सीधी बात करने के आधुनिक तरीके से कतराते हैं। इस तरह के लेखक ऐसी वाक्य-रचना करते हैं, जिसका कुछ भी अर्थ निकाला जा सकता है। वे यह नही कहेंगे कि 'राजनीतिक चालबाजी गन्दी है', बल्कि वे इसे यूं उलझा कर लिखेंगे—'राजनीति की राजनीति राजनीतिज्ञता नही। वक्त आने पर ये लोग मौके के अनुसार अन्वय करेंगे और पाठक ऐसे वाक्यों से सर फोड़ता रह जाएगा।' 'नकली क्रांतिकारी चेहरे : नकली समस्याएँ, नकली हल'— धर्मयुग, 14 फरवरी, 1971, पृ० 21

दोनों के बीच कोई सामान्य भाषा नहीं है।' (48) फिर आगे वह बुढ़िया की दार्शनिक भाषा को सुन-सुनकर उसे देखती रह जाती है "'यह क्या बर्फानी वीरान में रहने वाली गड़ेरियों की मा की भाषा है ?' उनको जहा विवेकी भाषा तथा बस्ती-गाँव की भाषा की क्षमता-अक्षमता की अच्छी पहचान (जयदोल, 103) है, वहीं उन्हे चाहकर भी न कही जा सकने वाली भाषा—"फिर उसने कहना चाहा, जो रूप तो हर सुन्दर चीज में है, बल्कि आनुपातिक होता है··· पर यह बात भी उससे कहते न बनी"···(नदी के द्वीप, पृ० 220) का भी मर्म पता है।

'अज्ञेय' शब्दों के मामले में अमित दृष्टि रखने वाले मित प्रयोग के भाषाकार हैं। मित्तल को शब्द-जाल वहां मालूम पड़ता है, 'जहां अपनी वाक्य-संघटना में 'अज्ञेय' एक ही शब्द की सटीक आवृत्ति से साधारण भाषा को सर्जनात्मकता दे देते हैं—'

(क) *"जो प्यार करता है, जो प्यार पाता है वह क्या कुछ सोचता है ?* सोच सब बाद में होता है जब सोचने को कुछ नही होता ?' (जयदोल, पृ० 55)

(ख) "जानने का कारण न होना ही जानने के लिए पर्याप्त और वास्तविक कारण है।" (नदी के द्वीप, पृ० 222)

(ग) "जीवन सर्वदा ही वह अन्तिम कलेवा है, जो जीवन देकर खरीदा गया है और जीवन जलाकर पकाया गया है।" अपने-अपने अजनबी, (पृ० 102)

पर 'अज्ञेय' स्वयं भी अपनी ऐसी वाक्य-रचना मे अर्थ-चेतना के प्रति सजग हैं—"और यह कहने से कुछ बात नही बनती ''क्योंकि जीवन का सारा जीवन ही कारण है, यह कहने के क्या मानी हैं ?' '''मानी है', भुवन इतना ही कह पाया, गाड़ी फिर चल दी।' (नदी के द्वीप, पृ० 33) यह कथन जाहिर कर देता है कि *उनकी ऐसी वाक्य-रचना साभिप्राय है। मानी के सवाल का नुकता ही* बताता है कि यह संप्रेष्यता निरर्थकता से बचने के लिए कितनी सचेत है। भाषा के ग्रहण में संप्रेषण और अर्थ दो बातें होती हैं। गहरी और शक्त सर्जनात्मक भाषा संप्रेषित तो तुरत हो उठती है, पर साफ अर्थ तुरत नहीं दे पाती, क्योंकि 'सोचना चित्र से, प्रतीकों से होता है, कहना शब्दो से और शब्द अधूरे हैं।" 'अज्ञेय' शब्दों का आच्छादन करने के लिए विवश हैं, पर उसको कुव्यवस्थित, गड्ड-मड्ड नही होने देने के लिए सचेत भी। 'ए पैसेज टु इंडिया' में मिसेज मूर का कथन स्मरण हो आता है''''आई लाइक मिस्ट्रीज, बट आई रादर डिस्लाइक मड्डल्स।' उनकी ऐसी वाक्य-रचना का अर्थ तो तब निकलता है जब हम लेखक की ओर से दिए गए कहीं उसके अर्थ-विस्तार, कहीं उसके अर्थ-संकोच और कहीं उसके अर्थादेश के 'जेस्चर' को समझ पाते हैं। सच पूछिए तो ऐसी वाक्य-संघटना सूत्रात्मक सर्जनशीलता के लिए अवदान है। 'गीता' में 'आत्मन्येवात्मनातुष्टः (मनुष्य आत्मा में आत्मा के द्वारा ही तुष्ट रहता है) और टी० एस०

एलियट की 'जेरनशन' कविता में····'द वर्ड विदिन ए वर्ड अनेबुल टु स्पीक ए वर्ड'—जैसे वाक्य यह जोरदार ढंग से प्रमाणित करते हैं कि इनके भीतर न तो कहीं शब्द-जाल है और न इनकी वाक्य-रचना मौके के मुताबिक अर्थ निकालने के लिए ही हुई है। सचमुच 'अज्ञेय' की वाणी में 'चित्रों को उभार कर सामने रख देने की अद्भुत शक्ति है।'

'अज्ञेय' की भाषा संवेदना के स्तर पर एक और वैशिष्ट्य से युक्त है। यह हिन्दी पाठक के परम्परित संस्कार को धक्का देने वाली भाषा है, जिसमें नया आधुनिक संवेदन बोल रहा है। डॉ० देवीशंकर अवस्थी ने 'एक पति के नोट्स' का एक वाक्य उद्धृत करते हुए किसी समीक्षा-सन्दर्भ मे यह टिप्पणी की है कि····"अगर वह मेरी पत्नी न होती तो मैं उसे चूम लेता या चूमने की इच्छा को दबाता कड़वा मजा लेता।" हिन्दी कहानी का अभ्यस्त पाठक इन पंक्तियों को पढ़कर एक धक्के का अनुभव कर सकता है और विवेकी पाठक एक नए स्वर की पहचान का।'[1] उपर्युक्त संवेदन और बोध 'नदी के द्वीप' की भाषा में भी एक स्थल पर विद्यमान है—"कौतूहल से चन्द्र सोचता कि अगर वह नौकरानी होती या कोई और स्त्री होती तो चन्द्र उससे छेड़-छाड़ करना चाहता और शायद कमीज का गला पकड कर अपनी ओर खींच लेता, पर वह तो उसकी स्त्री थी, जो उसके खींचने पर झुक जाएगी, हाथ बढाने पर सह लेगी, चौंकेगी नही, विरोध नही करेगी, निषिद्ध के रोमांचकारी रस से उमड़े—सिमटेगी नही"—(नदी के द्वीप, पृ० 189-190) 'अज्ञेय' की यह भाषा डॉ० देवीशंकर अवस्थी के आरोप—"पिछले दशक के कहानीकार सामान्य अनुभवो को इस तरह नया सन्दर्भ देते हैं कि पाठक को कही संस्कारगत धक्का नही लगता।"[2]—का जबर्दस्त खण्डन करती है, जबकि 'अज्ञेय' इसके पिछले दशक के भी पिछले दशक के कथाकार हैं। निश्चित रूप मे यह भाषा एक परम्परामुक्त, नये स्वर की पहचान कराने मे समर्थ है।

अभिव्यंजना के शब्दस्तरीय तनाव की कथाभाषा :

'अज्ञेय' की भाषा मे शब्द-प्रयोग की बड़ी सावधानता है। कथाकार सही शब्द की पकड़ के लिए हर जरूरी स्थल पर बेचैन और सचेष्ट दीखता है। वह ज्यादा-से-ज्यादा सटीक और उपयुक्त शब्द की टटोल करता रहता है। 'अज्ञेय' की यह प्रकृति भी है कि—"महीन-से-महीन बारीकी मे गए बिना और उस काम की सफाई पाये बिना इन्होंने वह काम छोड़ा नही है।"[3] पर शब्द हैं कि आखिर

1. देवीशंकर अवस्थी, नयी कहानी : संदर्भ और प्रकृति (दिल्ली : अक्षर प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1964), पृष्ठ 201
2. वही
3. विद्यानिवास मिश्र (सं०), आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि अज्ञेय (दिल्ली : राजपाल एँड संज, प्रथम सं०), पृ० 22

संवेदन और अनुभूति की पकड़ से विछल हो जाते हैं और रचनाकार के भाषा वैवश्य-विषयक ऑडेल शेपर्ड की पंक्तियां याद दिला जाते हैं—

> "हू वाट वाज मियर लैंग्वेज टु अस, आफ्टर ऑल :
> आवर ट्रायल ऍंड ट्रेड एण्ड आर्ट, बट नाट द कॉल
> ऑफ वन माइंड टु द अदर, नाट द ब्लेंट
> लाइफ ऑफ आवर थॉट, ओह, नाट द थिंग वी मीन्ट।

'अज्ञेय' की कथा-भाषा में अभिव्यंजना का पहला तनाव इसी शाब्दिक स्तर पर है, जहाँ वे ईमानदार सावधानी का कवच धारण किए हुए हैं—

1. "मैंने अपने शब्द तौलते हुए कहा।" (ये तेरे प्रतिरूप, पृ० 49)

2. "मैंने रुकते-रुकते कहा'''मेजर मेरे पास शब्द नहीं है कि कुछ कहूं'''" "कहोगे क्या प्रधान ? कुछ बातें शब्दों से परे होती हैं'''।"(जयदोल, पृ० 132)

3. "सुखद, शायद ठीक शब्द नहीं'''किन्तु ठीक शब्द तत्काल मिल नहीं रहा है, सोचकर शायद ढूंढ निकालूं।" (नदी के द्वीप, पृ० 34)

4. "आपका ऐसा स्पष्ट सुनिश्चित रूपाकार-मुक्त व्यक्तित्व है कि, वह शब्दों के लिए कुछ अटका तो रेखा ने कहा, आप चलकर गाड़ी पर सवार हो जाइए। फिर आगे बात होगी।" (वही, पृ० 35)

5. "मुझमें जो परिवर्त्तन'''ठीक परिवर्तन वह नहीं है, विकसन, प्रस्फुटन भीतरी और घटनाजन्य संभावनाओं का स्फुरण'''हो रहा है'''।' (वही, पृ० 280)

शब्दों की इस सावधानता के अतिरिक्त अज्ञेय में शब्द-सामर्थ्य भी है, जो 'कॉनोटेशन' के साहचर्यमूलक आवेगी शब्दों से भी ऊपर 'सेन्नोटेशन' की ऋद्धि से भरी है, जिसमें संवेदक अनुक्रिया जगाने वाले, ऐन्द्रिय पुकार वाले शब्द-प्रयोगों की प्रचुरता है। इतर दृष्टि से भी उनका शब्द-संसार एकरसता को सब तरह रोकता-बरजता चलने वाला है। उनकी कथा-भाषा मूर्त्त-अमूर्त्त, लघु-प्रलम्ब, संस्कारी-संरचनात्मक, परिपूर्ण-पूरक, पूर्वानुमेय-चमत्कारी, सामान्य-विशिष्ट, घरेलू-किताबी, कूटशब्द-पिष्टोक्ति शब्द, वर्णशब्द-बीजशब्द आदि की भाषा है, जिसमें छोटे-छोटे वाक्य से लेकर लम्बे-लम्बे वाक्यों और अनुच्छेदों तक का सफल समावेश है। उनकी शब्द-सर्जना में कहीं नाना बिम्ब-विधायक विशेषणों का सुश्रृंखल भाव-सौंदर्य व्यक्त हो रहा है—'उल्लसित, उच्छ्वसित, लोलुप, गर्वित, याचक, पाप-संकुचित, दर्पस्फीत मुद्राएँ'' '(जयदोल, पृष्ठ 54-55), तो कहीं अनाम अनुभूति को सर्वनाम ही संज्ञा प्रदान कर रहा है—'मेरे भीतर धक्-धक् करने वाला वह 'कुछ' चीत्कार कर उठा।' (वही, पृष्ठ 36) उनके यहाँ 'रामजी की गिलहरी' से 'हिडिम्बा' तक के और 'प्रकटी' से 'आशापना' तक के अद्भुत प्रयोगों का शब्द-कौशल है।

अर्थ-केंद्रित सजग कथाभाषा :

अर्थ को लेकर 'अज्ञेय' अपनी कथा-भाषा में काफी जागरूक हैं। इस दृष्टि से उनकी भाषा छिलती-उघड़ती, विच्छित्तियों की भाषा है। कथाकार ने अर्थ की सार्थकता के लिए, भाषा की बारीकी को प्रकट करने के लिए एवं उसको सटीकता देने के लिए, जैसे रेशे-रेशे को विलगा दिया है। उसकी भाषा में जो हर-कहीं सप्रयोजन है, सही-सही अर्थ का उद्भावन, एकाधिक छाया व्यतिकरों की झलमलाहट तथा संकेत इस तथ्य के पुष्ट प्रमाण हैं। उन्होंने अर्थ-दृष्टि से शब्दों की उन्मुक्तता को अपने कथा-साहित्य में कहीं नहीं नकारा है। उनके यहाँ यह अर्थ सूक्ष्म का रेखांकन है, भीतरी पड़ताल है। वर्जीनिया वूल्फ ने अपने साहित्य में किसी महान् समवर्ती साहित्यकार के आविर्भूत न हो सकने के प्रश्न पर विचारते हुए लिखा है कि इसका कारण हमारे द्वारा शब्दों को दी जाने वाली ईप्सित मुक्तता का अस्वीकार है। हम शब्दों को रूढ़ एकार्थ वाली निश्चिति देते हैं, उसको व्यावहारिक प्रचलन वाला अर्थ लेने को मजबूर करते हैं, वह अर्थ, जिसे शब्द से लेकर हम छूटती गाड़ी पकड़ते हैं, वह अर्थ, जिसे शब्द को देकर हम परीक्षा में पास होते हैं। पर शब्द जब इस प्रकार रूढ़ तौर पर केवल एक अर्थ-पिंजड़ में जकड़ दिये जाते हैं, तब वे पंख फड़फड़ा कर दम तोड़ देते हैं।[1] अज्ञेय ने अर्थवत्ता के पंछी को नयी रोमिल पाँखें दी हैं।

क : 'सिख ने कहा; आप बैठी रहिए। यहाँ आपको कोई डर नहीं है। एक हिन्दू ने कहा, सरदार जी, जाती है तो जाने दो न, आपका क्या ?'

'सुरैया न सोच पाती कि सिक्ख की बात को और इस हिन्दू की टिप्पणी को किस अर्थ में ले'…' (ये तेरे प्रति रूप, पृष्ठ 84)।

ख : 'महेश के लिए जो वाक्य संसार का सारा अभिप्राय लिये रहते हैं, वे मंसो के लिए कुछ भी महत्त्व नहीं रखते, कुछ भी अस्तित्व तक नहीं।' (परम्परा, द्वितीय संस्करण, 1946, पृष्ठ 85)

ग : 'कविता की वही पंक्ति 'प्रिये, वही है अचिर अमरता का क्षण' फिर अनन्त के मस्तिष्क में गूंज गयी, लेकिन अभी ही उसे लगा, जैसे *उसका अर्थ* नष्ट हो गया हो।' (परम्परा, द्वितीय संस्करण, 1964, पृष्ठ 96)।

घ : 'बच्चे अधनंगे हैं' इसका ठीक अर्थ अब उसके मन में बैठता है—इस मोहल्ले में बच्चों को निचले आधे शरीर में तो यों भी कुछ पहनाने का रिवाज नहीं है, इसलिए अधनंगे का मतलब यही हो सकता है कि ऊपर का आधा शरीर तो ढँका नहीं है।' (ये तेरे प्रतिरूप, पृष्ठ 30)।

---

1. वर्जीनिया वुल्फ, कलेक्टेड एसेज, वाल्यूम-2 (लंदन : चाटो ऐण्ड विंडस, 1967), पृष्ठ 251

ङ: 'भुवन ने कहा था, थोड़ा ऊँघ लीजिए, रात भर जागी हैं, तो सहसा सजग होकर बोली थी, अभी ? ऊँघने के लिए सारा जीवन पड़ा है; थोड़ा-सा जाग ही ली तो क्या हुआ ?' (नदी के द्वीप, पृष्ठ 125)

च: 'गौरा ने कहा, मास्टर साहब अगर खिंचवा देंगे तो होंगे। तब आप उन्हीं से मँगा लीजिएगा।'

'चन्द्र नहीं समझ सका कि इसमें केवल भुवन के प्रति सहज सम्मान है या भुवन को ही स्पष्ट उलाहना या कि चन्द्र के आत्मीयता-प्रकाशन की ही परोक्ष अवहेलना।' (नदी के द्वीप, पृष्ठ 96)

छ: 'प्रत्यक्ष उसने कहा, थैंक्यू, रेखा जी, मैं भी शायद अब फ्रेंड के सिवा कुछ नहीं हो सकता।' वाक्य का दोहरा अर्थ है, यह उसने लक्ष्य किया, पर उसमें दोष क्या है, 'कलाकार तो हमेशा दोहरे अर्थों से खेलता ही रहता है।' (नदी के द्वीप, पृष्ठ 170)

उद्धरण 'क' के स्थितिगत व्यंग्य में भाषा अपने द्विधात्मक अर्थ-वैवश्य में 'यह-वह' की 'स्नेह-उपेक्षा' के अलग-अलग तेवर दिखा रही है। उद्धरण 'ख' में यह भाषा-तत्त्व प्रकट हो रहा है कि अर्थ वस्तुनिष्ठ रूप में शब्द या वाक्य-मात्र नहीं देते, बल्कि उसका भावन गृहीता के पक्ष में होता है, उसकी आत्मनिष्ठता मानस-संसार की बुनावट के अनुरूप होती है। इसलिए महेश को साभिप्राय दीखने वाली भाषा मंसो के लिए निस्सार है। उद्धरण 'ग' में सन्दर्भ बदल जाने में अर्थ के निरर्थ हो जाने का उल्लेख है, एक पंक्ति के अर्थ खो देने से जीवन के अर्थ-शून्य उचाट को दिखा देने वाला संकेत है। उद्धरण 'घ' में अर्थ-केन्द्रण है, जहाँ सामान्य व्याख्या से ही 'फजीहत' निकलने लगता है और 'अध-नंगे' अपने अर्थ-विस्तार में पूरी तरह 'नंगे' का अर्थ दे बैठता है। उद्धरण 'ङ' में वक्रोक्ति से अर्थ ग्रहण किया गया है, जहाँ सामान्य 'ऊँघना' क्रिया जीवन-फलक पर व्यापक लयार्थ दे जाती है। उद्धरण 'च' में अर्थ के तीन विविध स्तरों—भुवन के प्रति सम्मान, भुवन के प्रति स्पष्ट उलाहना और चन्द्र के आत्मीयता-प्रकाशन की अवहेलना—की स्पष्ट झलक दिखायी गई है। उद्धरण 'छ' में अर्थ की दोहरी छाया है। ये सारे उदाहरण किसी-न-किसी रूप में बड़ी खूबसूरती से अर्थ फूटने की प्रक्रिया को उजागर कर रहे हैं। साहित्य की भाषा में न्याय के 'छल'—वाक् छल, सामान्य छल, उपचार छल भी काम्य है। इनसे भाषा को सर्जनात्मकता का तेज प्राप्त होता है। 'अज्ञेय' की कथा-भाषा में ये सब अर्थोद्गार बड़ी कलात्मकता से रसे-बसे हैं। उनके यहाँ अर्थ कहीं अबूझ नहीं है। हाँ, उसके अवबोध के लिए कहीं पनेक रुकना पड़ सकता है, पर जैसे ही वह स्पष्ट होता है बाढ़ की तरह स्पष्ट हो जाता है। 'अज्ञेय' भाषा और सन्दर्भ को वह अर्थवत्ता

देते हैं, जो *'अर्थवत्ता नहीं मिटती, पाये हुए सारे अर्थ चाहे छिन जावें।'*[1]

1—'साँझ, रात, दूर टुनटुनाती गोधूली की घंटियाँ, शुक्रतारा, तारे, चाँद, लहरियों पर चाँदनी की बिछलन, छोटे-छोटे अभ्रखंड, ठण्डी हवा, सिहरन, ऊँचाई के ऊपर आकाश में चुभता-सा पहाड़ का सींग, आकाश—सबका अर्थ है, सब-कुछ का अर्थ है, अभिप्राय है; ठिठुरे हाथ, अवश गरमाई, रोमांच, सिकुड़ते कुचाग्र, कनपटियों का स्पन्दन, उलझी हुई देहों का घाम, कानों में चुनचुनाते रक्त-प्रवाह का संगीत—इन सबका अर्थ है, अभिप्राय है, प्रेष्य सन्देश है।' (नदी के द्वीप, पृष्ठ 156)

2—'क्यों सब-कुछ का अर्थ है—दूसरा गहरा अर्थ ? ऐसा ही रहा तो और एक-आध दिन में हर स्थान का, हर दृश्य का, हर बात का एक गहनतर, गोपनतम अर्थ हो जाएगा, एक रागात्मक ऐश्वर्य—तब रेखा किसी ओर मुड़ नहीं सकेगी, बिना उस अर्थ से अभिसंचित हुए—भुवन पूछता है, पहाड़ पर चलोगी ? तो वह सिहर उठती है, ठंड तो नहीं लगता ? तो लजा जाती है, आओ बैठें, तो मानो उसके घुटने मोम हो जाते हैं"'।' (वही, पृष्ठ 157)

ऊपर के अवतरण ऐसे ही हैं, जहाँ नर, नरेतर और चराचर क्षेत्र में फैले व्यापक अर्थ तीव्रतम, वैयक्तिक हो उठते हैं, काल और देश का लघुतम क्षण-कण भी अर्थवान् हो पड़ता है। यह गहरा अर्थ ही वह अर्थ है, जिसकी अर्थवत्ता अमर है। यह सृष्टि का अर्थ है, सन्दर्भ और भाषा तो उसकी अभिव्यक्ति के माध्यम हैं।

'अज्ञेय' की भाषा प्रकृति और पदार्थ के साहचर्य से ही अर्थवान् हुई है। यहाँ सन्दर्भगत प्रकृति और पदार्थ दोनों ही ने बड़े गहरे और जीवन्त अर्थ उजागर किये हैं—

क: 'इतनी देर में ही उसका आकार बाँका-टेढ़ा होकर सिकुड़ गया था। और एकाएक मुझे लगा कि जिस थिगली को मैं देख रही हूँ, वह धूप की नहीं है, फर्श पर पड़े हुए सेलमा के चेहरे की है।' (अपने-अपने अजनबी, पृष्ठ 66-67)

यहाँ पूर्व सन्दर्भ में धूप की एक पतली-सी किरण एक छोटा-सा चकत्ता बन चुकी होती है, फिर बड़ी-सी थिगली। उस धूप को देखने की एक उदास चाह भी उमड़ती है, जो सेलमा की धूप के प्रति शुक्रिया-अदायगी में ही रीत जाती है, क्योंकि वह उसे देखना नहीं चाहती, चाहती है कि चुन सकती। और अन्त में योके को धूप के बाँके-टेढ़े, सिकुड़े आकार में धूप का अर्थ नहीं मिलता, सेलमा का अर्थ दीख जाता है। फिर उस धूप में सेलमा को मृत्यु की ओर अग्रसर

1. अपने-अपने अजनबी (दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ, प्रथम संस्करण), पृष्ठ 101

चेहरा झिलमिल हो जाता है—यह 'केवल अपह्नुति' की शैली नहीं है, एक पूरा सन्दर्भ है और फिर अर्थ का टकराव—धूप और सेल्मा, सेल्मा और धूप और अन्ततः सेल्मा, सेल्मा, सेल्मा।

ख : 'केवल एक टूटा हुआ अर्थहीन पुल—कहाँ-से-कहाँ तक और कब तक? एक टूटा हुआ अर्थहीन पुल, जो कि वह स्वयं है ''यह, सेल्मा, जो न कहीं से है, न कहीं तक है—जो है तो यह भी नहीं जानती कि कब तक है'''।' (अपने-अपने अजनबी, पृष्ठ 99)

ऊपर जीवन के अस्तित्ववादी दर्शन—'बान बीइंगनेस' की दृष्टि है। सार्त्र ने कहा था—'मैं स्वयं को स्वयं के अस्तित्वमय रूप में नहीं अपितु अस्तित्वमय के व्यवहार के रूप में चुनता हूँ।' (बीइंग एण्ड नथिंगनेस) और फिर यह भी कि 'बाढ़ तुम्हें बहा ले जाती है। यही जीवन है। हम न समझ सकते हैं, न निर्णय दे सकते हैं। हम केवल बह सकते हैं।' ('इंटिमिसी' कहानी) ऊपर के सन्दर्भ में जीवन के इस अर्थ को एक टूटे हुए अर्थहीन पुल के सहारे बड़ी कुशलता से उकेर दिया गया है। 'पुल' एक एक टूटा अर्थहीन पुल है, जो सेल्मा है और सेल्मा के जीवन में अस्तित्ववादी बोध की स्थिति है। यहाँ पदार्थ-रूप, टूटा हुआ, अर्थहीन पुल प्रतीक, संकेत, बिम्ब, विभावन, क्या नहीं दे रहा है?

सूक्ष्म पर्यवेक्षण को रेखांकित करने वाली कथाभाषा :

'अज्ञेय' की कथाभाषा में जहाँ अर्थ की विविधता का टकराव है, वहीं वांछित अर्थ की उद्भावना के लिए कहीं-कहीं अर्थ-गुच्छ में बड़े बारीक चयन का कौशल और कसाव भी है। यह एक ऐसी तराश है, जहाँ अर्थ फिर अनेक रंगारंग प्रकाश की लहरें फेंकने लगता है। उनकी भाषा में प्रकृति में बाहर की स्थूल प्रकृति और धमनियों में गर्म-गर्म प्रवाहित होने वाली भीतरी सूक्ष्म प्रकृति (नदी के द्वीप, पृष्ठ 203); आँसुओं में व्यथा के आँसू, ग्लानि के आँसू और किसी पर छाँह करते हुए रोने के आँसू (वही, पृष्ठ 138) तथा यथार्थ में स्थूल वास्तव, सूक्ष्म वास्तव, भावमूलक वास्तव एवं तथ्यमूलक वास्तव (जयदोल, पृष्ठ 11) का अन्तर इसी सन्दर्भ में उपस्थित हुआ है। इसी सन्दर्भ में उनकी भाषा की एक भंगी भीतर और बाहर में फर्क उपस्थित कर फिर भीतर और बाहर को मिला भी देती है—'मैं कल्पना कर रही हूँ कि बाहर खूब खुली धूप है'''बड़ी निखरी हुई स्निग्ध धूप, जिसको घाम में बदन अलसा जाए।'

मैंने कहा—'ऐसी कल्पना से फायदा? और बाहर धूप हो भी तो हमें क्या जो'''

'हमें क्यों नहीं कुछ? जो हमारे भीतर नहीं है, वह हम बाहर कैसे दे सकते हैं'''कैसे देना चाह सकते हैं? खुली, निखरी हुई, स्निग्ध, हँसती धूप—मैं बाहर उसकी कल्पना करती हूँ तो वह मेरे भीतर भी खिल जाती है''।'

(अपने-अपनेअजनबी, पृष्ठ 37)

संकेत और गणित का भाषिक उपयोग करने वाली भाषा :

'अज्ञेय' की कथा-भाषा में संकेतभाषा और गाणितिक भाषा भी अर्थ दे रही है—

1—'भुवन का हाथ उसका हाथ खोजता आता है और उस पर टिक जाता है, बहुत धीरे-धीरे उसे दुलराता हुआ···उसमें भी अर्थ है, गहनतर, उस धीरे-धीरे दुलराते हाथ में···' (नदी के द्वीप, पृष्ठ 127)

2—'थोड़ी देर बाद भुवन बिना कुछ कहे उठकर बाहर चला गया। जाते हुए तम्बू का पल्ला गिरा दिया। रेखा ने उसका अभिप्राय समझ लिया, उसने कपड़े बदल लिये···।' (वही, पृष्ठ 150)

3—'कितना अच्छा हुआ कि तुम अकेली थी, जब मैं पहुँचा, रेखा···' 'रेखा ने समझकर धीरे से हाथ उसकी ओर उठा दिया, कुछ कहा नहीं, उसकी आँखों की मुस्कराहट ही उसे दुलरा गयी।' (वही पृष्ठ 210)

3—'और एक अर्थ-भरी दृष्टि से उसने भुवन की ओर देख लिया···।' (वही, पृष्ठ 144)

ये कुछ आदिम संकेत-भाषा के उदाहरण हैं, जिसमें हाथ का इशारा है, स्पर्श की वाचा है और 'अनेकु कही नैननि' की अभिव्यक्ति है। हर-कहीं गहन अर्थ है। 'अज्ञेय' की भाषा में ऐसे अनेक स्थल हैं, वहाँ आलपोर्ट द्वारा वर्गीकृत संकेत-भाषा के ''संवेगात्मक, प्रदर्शनकारी, सुचित्रित, प्रतीकात्मक, अभ्यस्त और अवचेतन संकेत का विस्तार के साथ विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जा सकता है। यह संकेतार्थवैज्ञानिक (सिमिओटिक) अध्ययन का भी विषय है।

संकेत-भाषा के अतिरिक्त 'अज्ञेय' ने गणित की भाषा में भी कथ्य को अर्थ दिया है —'गणित की भाषा मे कहूँ—जो शायद हमारे आपके मुहावरे के अधबीच आ सके ''तो कहूँगी कि दौड़ का अर्थ है—देश (भाग) काल, जबकि शोध का अर्थ है देश (गुणा) काल।' (नदी के द्वीप, पृष्ठ 80) यह भाषा विभाजन-फल, गुणनफल और स्वल्प, विस्तार का अर्थ प्रस्तुत करने वाली भाषा है। दौड़ घटाती है, अन्वेषण जोड़ता है। यहाँ भाषा चन्द्रमाधव और गौरा के अलग-अलग व्यक्तित्व पक्ष को भी प्रकट करती है।

उपराम की विविधता से भरी कथाभाषा :

कथा-भाषा में वाक्यों के बीच उपराम या यति (पॉज) का बहुत बड़ा महत्त्व है। इसके प्रयोग से कथा-भाषा के पाठ में अर्थ-बोध की कठिनाई नहीं रहती। पाठ और अर्थ साथ-साथ साफ होते-खुलते जाते हैं। उपराम से भाषा में वह प्रवाह भी आ जाता है, जो निर्विरोध पाठकों को साथ बहा ले जाता है। भाषा की ग्राह्यता को बढ़ाने के अतिरिक्त भाषावैज्ञानिक दृष्टि से उपराम

भाषोच्चार की स्वाभाविकता का भी निर्वाह कराता है। एफ० गोल्डमैन आइलर ने वाक्यों के बीच इस प्रकार के उपराम की दो कोटियाँ बताई हैं—1—व्याकरणिक उपराम और 2—अव्याकरणिक सामान्य उपराम। व्याकरणिक उपराम के अन्तर्गत—1—प्रकृत विरामाकन का उपराम, 2—आसंजक-संयोजक का उपराम, 3—सहायक संयोजक का उपराम, 4—सम्बन्धवाचक-प्रश्नवाचक सार्वनामिक उपराम, 5—प्रश्न की अन्तर्निहितता का उपराम, 6—कालगत, स्थानगत और रीतिगत पदांश के पूर्व का उपराम 7—निवेशित संदर्भ की प्रस्तुति से उत्पन्न उपराम जैसे—सात उपराम आते हैं, तो व्याकरणिक सामान्य उपराम के अन्तर्गत 1—पद-समुच्चय (फ्रेज) के मध्य या अन्त का उपराम, 2—शब्द या पद-समुच्चय के बीच में हुई आवृत्ति से उत्पन्न उपराम, 3—क्रियात्मक सहृति (कम्पाउण्ड) के मध्य का उपराम और 4—वाक्य-बनावट में पुनर्विचार या मिथ्यारंभवश खंडित प्रस्तुति से उत्पन्न उपराम जैसे चार उपराम।[1]

'अज्ञेय' की कथा-भाषा में व्याकरणिक और प्रचलन-सिद्ध दोनों ही प्रकार के उपराम का सौन्दर्य विद्यमान है—

व्याकरणिक :

1. प्रकृत विरामांकन का उपराम—'हम मिलेंगे' ॥ लेकिन मानो इस दीवार के आर-पार; ॥ हाथ मिलाएँगे ॥ लेकिन मानो इस चौखटे के भीतर से, ॥ एक-दूसरे को देखेंगे ॥ लेकिन मानो इस चौखटे में जड़े हुए ॥ तुम उधर से ॥ मैं इधर से ॥'''रेखा ॥ मैं अब भी तुम्हें प्यार करता हूँ, ॥ उतना ही ॥ पर' (नदी के द्वीप, पृष्ठ 262)।

यहाँ अल्पविराम, अर्द्धविराम, संकेतक और बिन्दुक-प्रयोगवश यति उत्पन्न हुई हैं। यह उपराम पूरे वाक्य को कई लघु खण्डों में बाँटता है, जिससे कथ्य चित्रात्मक रूप में उभर आता है।

2. आसंजक-संयोजक का उपराम—'और ठीक इसके बाद उसने सहसा जाना था कि वह भीतर कहीं विचलित है ॥ और उसके कुहनी कहीं चुनचुना रही है ॥ और उसका हाथ उसका अपना अवयव नहीं है ॥ और सब पर्याय विपर्यय है ॥ और आस-पास सब-कुछ गोरखधंधा है।' (वही, पृष्ठ 37)।

यहाँ उपराम गद्यराग की सृष्टि कर रहा है। साथ ही कथन-शृंखला को आकर्षक और प्रभावी ढंग से बढ़ा रहा है।

3. सहायक संयोजक का उपराम—'लेकिन दुबारा ॥ जब मैं गया ॥ तब वह बदल गयी थी।' (वही, पृष्ठ 225)।

---

1. एफ० गोल्डमैन आइलर, सायकोलिंग्विस्टिक्स : एक्सपेरीमेंट्स इन स्पांटेनियस स्पीच (लंदन : एकेडमिक प्रेस, 1968), पृष्ठ 13

इस वाक्य को 'लेकिन दुबारा मेरे जाने तक वह बदल गयी थी' कहने पर भाषा में तद्वत् बल नही आ पाता। ऐसा उपराम भाषा मे विस्तार-वर्णन और प्रभाव—दोनो लाने के लिए ठीक है।

4. सम्बन्ध-वाचक, प्रश्नवाचक सार्वनामिक उपराम—'उसने एक कापी और नीली साड़ी पैकेट बनाकर मुझे दी थी ॥ जो मैंने बाद में देखी।' (वही, पृष्ठ 294)।

यहाँ अभीष्ट उपराम को मिटाकर यदि यह लिखा जाता कि 'उसकी पैकेट बनाकर दी हुई एक कापी और नीली साड़ी मैंने बाद मे देखी तो यह भाषा 'स्टेटमेंट' की भाषा हो जाती, 'नैरेशन' की भाषा नही रह पाती।

5—प्रश्न की अन्तर्निहितता का उपराम—'तब ॥ क्या यह नही पढ़ सकोगे कि मेरा यह आहत, चिथड़े-चिथड़े हो गया जीवन ॥ क्या चाहता है।' (वही, पृष्ठ 237)।

ऐसा उपराम दूर तक अर्थ को प्रभावित करता है, जो 'तब क्या मेरे आहत, चिथड़े-चिथड़े हो गये जीवन की चाह तुम नही पढ़ सकोगे?' मे अपेक्षया कहीं अधिक क्षीण और प्रभावहीन हो जाता।

6. कालगत, स्थानगत, और रीतिगत पदांश के पूर्व का उपराम—

क : 'मैंने इससे बढ़कर ॥ कभी कुछ नही मांगा।' (वही, 299)

ख : 'मैं उसे ॥ वही छोड़कर चला आया।' (वही, पृष्ठ 294)

ग : 'तुम्हारे साथ ॥ कैसे उलझ गयी?' (वही, पृष्ठ 65)

'अज्ञेय' की कथा-भाषा मे ऐसे उपराम अभिव्यक्ति की तार्किक साफगोई पेश करने वाले है।

7—निवेशित सन्दर्भ की प्रस्तुति से उत्पन्न उपराम—'चन्द्र, तुम कभी अपने बारे मे नही सोचते कि जीवन—॥ जीवन नही, तुम्हारा जीवन, एक विशेष और अद्वितीय ॥ क्या है, क्यों हैं, कहाँ जा रहा है?' (वही पृष्ठ 49-50)

यहाँ उपराम अभिप्राय मे जोर उपस्थित करता हुआ वार्ता को स्वाभाविक तथा सजीव बनाता है।

अव्याकरणिक :

1. पदसमुच्चय के मध्य या अन्त का उपराम—'पर्यवलोकन करके ॥ भुवन ॥ फिर वही-का-वही ॥ आ गया था।' (वही, 37)

2. शब्द या पद-समुच्चय के बीच में हुई आवृत्ति से उत्पन्न उपराम—'और मानसिक यंत्रणा के उस चरम क्षण मे यद्यपि प्यार—॥ प्यार रेखा, करुणा नही, अपने उत्कर्ष पर था····।' (वही, 261)

3—क्रियात्मक योग (कम्पाउण्ड) के मध्य का उपराम—'मैं बराबर ही वैसे खंडित स्वप्न देखता ॥ रहता हूँ।' (वही, 261)

4. वाक्य-बनावट में मिथ्यारम्भवश खंडित प्रस्तुति से उत्पन्न उपराम—'पीछे देखता हूँ तो ।। लेकिन वह तो मैं आपको बता चुका हूँ ।' (वही, 50)

ऊपर पहला उदाहरण कथ्य को विश्लेषक संप्रेषण देता है, दूसरा उदाहरण 'प्यार' की शाब्दिक आवृत्ति से 'प्यार' को विशेषतः रेखांकित करता है, तीसरा उदाहरण क्रियात्मक योग के बीच लयकारी पैदा करता है और चौथा उदाहरण कथ्य की खंडित दशा को स्वाभाविक रूप में व्यक्त करता है।

इस प्रकार उपराम 'अज्ञेय' की कथा-भाषा में भाषा को विरसता से बचाकर आरोह-अवरोह की क्रियात्मक गति देते हैं, अर्थ को गहन प्रभावी बनाते हैं, संलाप में उच्चार की प्रकृति और मर्यादा की रक्षा करते हैं तथा कथा-भाषा को समाचारपत्रीय सपाटबयानी और निबन्धालोचनों की अपेक्षा कहीं कम उपरामी भाषा से बचाकर 'नैरेशन' का सौन्दर्य और अभिप्राय की सामर्थ्य प्रदान करते हैं।

चाप या उभार का रचाव प्रस्तुत करने वाली कथाभाषा :

सर्जनात्मक लेखक प्रायः भाषा में नयी व्यवस्था का विधान करता है, जिससे कथा-गद्य ऊँचा उठता है। कथाभाषा में चाप या उभार (एम्फेसिस) का रचाव इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। वर्जीनिया वूल्फ ने भाषा में इस बल के सौन्दर्य-स्वास्थ्य को नौ दृष्टियों से निखरता बताया है—1. आरम्भ में उभार, 2. अन्त में उभार, 3. यति से उत्पन्न उभार, 4. सादृश्य से उत्पन्न उभार, 5. विसादृश्य से उत्पन्न उभार, 6. आवृत्ति से उत्पन्न उभार, 7. अर्थ-विरोध से उत्पन्न उभार, 8. चमत्कृति से उत्पन्न उभार और 9. द्विविधा-द्विधा से उत्पन्न उभार।'[1]

'अज्ञेय' की कथा-भाषा में अभिव्यक्ति का कसाव उभार का सौंदर्य लेकर निखर उठा है—

1. आरम्भ में उभार—'व्यथा सृजन करती है, मेरी व्यथा बाँझ रह गयी, मुझे भी झुलसा गयी, पर मैंने, मानना चाहा था कि वह तुम्हीं को बनाएगी···।' (नदी के द्वीप, पृष्ठ 268)।

2. अन्त में उभार—'मोह की अवस्था में, झूठ में जो कल्पना की गयी है वह क्या और भी अधिक झूठ नहीं है···झूठ का भी झूठ नहीं है ?' (अपने-अपने अजनबी, पृष्ठ 104)।

3. यति से उत्पन्न उभार—'चौकीदार ने कहा, सो तो ठीक है बाबूजी मगर···'' (नदी के द्वीप, पृष्ठ 109), 'चन्द्र ने कहा। आप अपने पास किसी को आने नहीं देती, जैसे—' (वही, 47)।

---

1. वर्जीनिया वूल्फ, कलेक्टिड एसेज, वाल्यूम-2, 1967, पृष्ठ 138

संवेदना के विस्तार में भाषाई उभार है। आठवाँ उद्धरण भुवन द्वारा बड़े जोर से रेखा के ओठ चूम लेने और रेखा के जमकर उमड उठने—उमड़ने के आप्लवनकारी लहर हो जाने के बाद का है। इस वर्णन में 'आलोक' के पुल्लिंग तथा 'किरण' के स्त्रीलिंग प्रयोग भाषा मे चमत्कृतिमूलक उभार सिरजते हैं। नौवाँ उद्धरण अपनी भाषाई रचना में द्विधा के कारण ही प्राणवान् है। यह द्विविधा-द्विधा पाठकों को आकृष्ट कर अपना चाप सहजतः प्रमाणित कर देती है। इस प्रकार 'अज्ञेय' की कथा-भाषा कथाकार की मौलिक, स्वरचित, सर्जनात्मक भाषा का वह उदाहरण भी है, जिसे उभार के आकर्षक गुम्बद—प्रायः उन्नतोदर, पर कहीं नतोदर भी—से मनोरम वैशिष्ट्य मिला है।

आवृत्ति से उत्पन्न लयात्मकता की कथाभाषा :

कथा-भाषा में लयात्मकता की अपनी विच्छित्ति है। मूलतः यह संवेदना से एकतान साहित्यकार का भाषा-कौशल है। यह शब्दों की अव्यवस्था मे व्यवस्था बनाती, भाषा को सजाती तथा उसे अन्तर्भूत करने योग्य क्षमता देती है। यह गद्य की हृत्-गति है, उतनी ही जीवन्त, विशिष्ट और भेद-भरी, जितनी शरीर की लय। इसीलिए यह गद्य को प्रवाही गति तथा प्राणशक्ति देती है। लय कथा-भाषा का मूल संघटक है।[1] यह उन विचारो को जोड़ती तथा अभिव्यक्त करती है, जो शब्दकोश के शब्दों मे नही मिल सकते, जबकि लय के द्वारा भाषा में आया यह फैलाव शब्दो को अतिरिक्त सामर्थ्य, शक्ति और चमक दे जाता है। कथा-भाषा में लय सूक्ष्म-से-सूक्ष्म भावावस्थाओं को उरेहती अपना गूंज-अनुगूंज-भरा प्रभाव छोड़ जाती है। यह लयराग उतार-चढ़ाव के साथ होने वाली आवृत्ति है।[2] हेमिंग्वे ने आवृत्ति का महत्व समझा था, क्योंकि कोई कला आवृत्तिहीन नही हो सकती, किन्तु किस्मो मे न फैल सकने वाली आवृत्ति एकरस हो जाती है। कथा-भाषा को ऐसी आवृत्ति काम्य नही है।

भाषा में लयकारी दो प्रकारों की होती है। एक स्पष्ट श्रव्य होती है, जबकि दूसरी ठीक उस रूप मे नही। एक लयकारी साँचे से सम्बद्ध होती है, पर हर-हमेशा यह साँचे के ही बतौर नही उभरती, बल्कि हमे चमत्कृति, ताजगी और आशा से भर देने वाले कथ्य के खूबसूरत घटाव-बढ़ाव से भी बनती-सँवरती है। यही लयकारी आवृत्ति से उपजती है। आवृत्ति भी शब्दों, वाक्यों और विशिष्ट सन्दर्भों तक की आवृत्ति। एक और लयकारी मौन के संगीत से निस्सृत होती

1. लियोन सर्मेलियन, टेकनीक्स ऑव फिक्शन राइटिंग (न्यूयार्क : डाबुलडे ऐंड कंपनी, 1968), पृ० 198
2. इ० के० ब्राउन, रिद्म इन द नावेल (कनाडा; यूनिवर्सिटी आफ टोरेंटो प्रेस, चौथी आवृत्ति, 1967), पृ० 7

है। जब आर्केस्ट्रा बजता है हम कुछ ऐसा सुनते हैं, जो यथार्थतः बजाया नहीं जाता है, पर उसका सब-कुछ मस्तिष्क में बरबस पैठ जाता है और एक सामान्य विद्यमानता में एक-दूसरे के आगे परस्पर फैल जाता है। (विशेषतः क्लिप सिम्फोनी)।

'अज्ञेय' की कथा-भाषा में दोनों ही लयात्मकता प्राप्त होती है। उनकी यहां पहली लयात्मकता के तीनों स्तरों की बुनावट बड़ी बारीक और महीन है—

शब्दगत आवृत्ति :

1. '···उसकी कुहनी पर चुनचुनाहट हो रही हो।' (नदी के द्वीप, 11)।

2 'और जहां उसने भुवन की कुहनी को छुआ था, वहीं वह अद्भुत अपूर्व परिचित चुनचुनाहट हो रही थी—' (वही, पृ० 11)

3. 'एक स्त्री के द्वारा सहज भाव से ठेलकर गाड़ी पर सवार करा दिए जाने पर उसकी कुहनी में स्पर्शित स्थल पर चुनचुनाहट होने लगी है—' (वही, पृष्ठ 11)

4. 'फिर उसे लगा कि यह चुनचुनाहट अभी गयी नहीं है, वह अपनी कुहनी पर अब रेखा के स्पर्श का दबाव अनुभव कर सकता है और दबाव ढकेलने का नहीं है, खींचने का है।' (नदी के द्वीप, पृ० 14)

5. 'और ठीक उसके बाद उसने सहसा जाना था कि वह भीतर कहीं विचलित है और उसकी कुहनी चुनचुना रही है।' (वही, पृ० 37)

यहां पहली चुनचुनाहट के कारण भुवन की कुहनी अपने-पराये का संधि-स्थल लगती है, दूसरी चुनचुनाहट स्पर्श-संवेदना को केन्द्रीभूत करती गहन बनाती है, स्वतः अद्भुत-अपूर्व हो जाती है। बाद की चुनचुनाहट तिहरे स्मरणवश यह जताती है कि रेखा ने गाड़ी पर चढ़ाते समय उसे ठेला नहीं, खींचा था। एक चुनचुनाहट और होती है, तो लगता है कि चुनचुनाहट गयी नहीं, वहीं बस गयी है। इसमें स्पर्श का दबाव घुल कर अनुभव होने लगता है तथा पहली याद और दूरी होकर इस भावना को दीर्घायित कर देती है कि रेखा ने उसे ठेला नहीं, और-और खींचा था। सर्वान्त में यह चुनचुनाहट भुवन को भीतरी विचलता और छटपटाहट की स्थिति में ले जाती है। यहाँ चुनचुनाहट में रक्त-प्रवाह का संगीत बोलने लगता है। इस प्रकार ऊपरी पाँचों उद्धरणों में 'चुनचुनाहट' की आवृत्ति से एक अनुभूति-तारतम्य सर्जित होता है और रेखा के प्रति भुवन का आकर्षण-राग अपनी पूरी निश्छल प्रक्रिया में अनायास बज उठता है। कथा-भाषा शब्द-लय से अर्थ-लय तक सिद्ध कर लेती है।

वाक्यावृत्ति में शब्द के घटाव-चढ़ाव से उत्पन्न लय :

'अज्ञेय' ने 'नदी के द्वीप' में एक प्रसंग में आरम्भ में ही भुवन के मुँह से

एक अंग्रेजी कविता की पंक्ति कहलायी है—'द पेन ऑफ लविंग यू इज आल मोस्ट मोर दैन आई कैन बियेर····' (पृ० 19) और उसे याद आया, अंग्रेजी का जो वाक्य-पद उसने सुनाया था, वह वास्तव मे यों आरम्भ होता था—'डीयरेस्ट, द पेन आफ लविंग यू' पर उद्धरण देते समय वह पहला सम्बोधन-शब्द छोड़ गया था ''अवश्य ही जान-बूझकर और सकोचवश···' (वही, पृष्ठ 19)। कथाकार बड़े कौशल से 'डीयरेस्ट' शब्द को 'माइनस' कर देता है और तत्क्षण भाषा में पर्त्त के भीतर से संकोच, आकर्षण, राग, छिपाव के बहुत-बहुत अर्थ तैर जाते है। सचमुच कौशल से व्यवहृत शब्द लय पैदा कर देते हैं।[1] पर इति यही नही है। इसी संदर्भ को प्रायः उपान्त में रेखा स्मरण करती है—'द पेन आफ लविंग यू इज आलमोस्ट मोर दैन आइ कैन बियर'— उस दिन पहली पंक्ति में से तुम 'डीयरेस्ट' शब्द छोड़ गए थे, चाहूँ तो मान सकती हूँ कि वह छूट जाना भी विधि का संकेत था, पर नही, वह नही, इतना जरूर है कि आज मैं एक शब्द और छोड जाऊँ 'आलमोस्ट—' क्योंकि सचमुच यह दर्द मेरी सहन-शक्ति से परे है······मैं उसे नही संभाल सकती······' (वही पृ० 269) इसको पढते-न-पढ़ते बीच की सारी घटनाएँ, स्थितियाँ इस पंक्ति की कील पर ढेरा-सारा अर्थ देती नाच जाती हैं। 'डीयरेस्ट' का छूट जाना विधि-संकेत बन जाता है—तभी अन्तरंग नैकट्य भी 'विवाह' में नही बदल सका, 'बीनकार सर्जन' की प्राप्ति नहीं हो सकी। पहले स्थल पर भुवन पंक्ति के प्रति सचेत है, पर कथन के उपरान्त उसका विश्लेषक भी है। दूसरे स्थल पर रेखा। और क्या सबसे बड़ी लय यही नही है कि रेखा अब भी उस पंक्ति में जी रही है? और उसका 'आलमोस्ट' को 'माइनस' कर देना उसकी वेदना को क्या दीर्घलय नही देता? 'अज्ञेय' की कथा-भाषा मे लयकारी की सामर्थ्य और शक्ति का यह उदाहरण निहायत खूबसूरत और ऊँची कोटि का है, जहाँ पहले मार्क की गयी सारी लय साथ-साथ लौटती है।

वाक्यगत आवृत्ति से उत्पन्न लय :

1. 'रेखा ने फिर कहा, अकेले हैं न सभी लीक पकड़ चलते हैं।' (नदी के द्वीप, पृ० 31)

2. 'भुवन को रेखा की शाम को कही हुई बात याद आ गयी···अकेले हैं न सभी लीक पकड़ कर चलते हैं।' (वही, पृ० 34-35)

3. 'नहीं, क्या होगा कहीं जाकर, इलाहाबाद से सीधे वापस, अपनी छोटी-

---

1. लारेंस ब्रेंडर: इ० एम० फोर्स्टर: ए क्रिटिकल स्टडी (लंदन: रूपट-हार्ट डेविस, 1968), पृ० 200

सी जगह अच्छी है । कुछ पढना-लिखना होगा— अकेले हैं न तभी लीक पकड़ कर चलते हैं ।' (वही, पृ० 37)

4. 'भुवन ने फिर कापी ले ली । जेब से कलम निकालकर सुस्पष्ट अक्षरों में लिखा 'अकेले हैं न, तभी लीक पकड़ कर चलते हैं, फिर तनिक रुककर दुहरे उद्धरण-चिह्न—लगा दिये ।' (वही, पृ० 123)

ऊपर पहली उक्ति मे भुवन के न समझने पर भी वाक्य साभिप्राय है । यह अब तक के सन्दर्भ मे भुवन के आचार-व्यवहार, उसकी 'पंक्चुएलिटि' और रेखा के सामने उसके पूरी तरह नही खुलने का अर्थ देता हुआ एक विचारात्मक लय उत्पन्न करता है, जिसकी अलग-अलग सन्दर्भों मे आवृत्ति से लय काफी गहराती और फैलती चली जाती है । दूसरी आवृत्ति रेखा के यह कहने पर कि 'जो रास्ते वाले हैं, उन्हें रास्ते से एक इंच भी इधर-उधर नही ले जाना चाहिए' भुवन के मानस मे होती है । यहाँ उसका अभिप्राय भी खुला है—उसके व्यक्तित्व के निश्चित भविष्य, निश्चित गन्तव्य के अनुरूप उसकी यात्रा । तीसरी आवृत्ति जब होती है तब वह कही जाने की अपनी यायावरी इच्छा को दबा लेता है । इस प्रकार भुवन के मन में देर तक, एक अरसे तक गूंज-अनुगूंज पैदा करने वाली यह पंक्ति स्मृति के सहारे अतीत से वर्तमान तक की स्थिति-यात्रा मे अपनी विशिष्ट लय उत्पन्न करती हुई कई अर्थ-छायाएं उजागर करती जाती है । अन्तिम आवृत्ति रेखा के द्वारा भुवन को कुछ स्टेशनो तक छोड़ने चलने के लिए आग्रह करने पर होती है । कापी पर भुवन जब यह वाक्य सोद्धरण लिखता है तब दोनों के लिए पहले अतीत से इसकी लय जुड़ जाती है, जिससे रेखा अचकचा भी जाती है । फिर दोनो ही के लिए इस लयकारी से अर्थ भी चमक उठता है । ऐसे ही 'नदी के द्वीप' मे 'शुभाशंसा चूमती है भाल तेरा, स्नेह शिशु, उठ जाग' (पृ० 146, 147, 208) 'पब्लिक फेसेज इन पब्लिक प्लेसेज' (पृ० 110, 143), 'आकारों मे हम क्यों इतना बँध जाते हैं कि 'आत्मा मर जाए' (पृ. 246 पर दो बार), 'अच्छा अध्यापन वही है, जिसमे अध्यापक भी सीखता जाए' (पृ. 62, 73), 'शब्द अधूरे हैं, क्योंकि उच्चारण माँगते हैं' (पृ. 299, 300, 321) जैसे कई वाक्य आवृत्त होकर अपना लयात्मक प्रभाव उत्पन्न कर व्यक्त से कही अधिक अभिव्यक्त कर देते हैं ।

सन्दर्भगत आवृत्ति से उत्पन्न लय :

1—'वह कहता गया'''राह चलते जिस दिन बैठे-बैठे जानूंगा, मेरे पीछे कोई है और मुड़कर नही देखूंगा और वह झुककर अपने खुले बाल मेरी आंखों के आगे डाल देगी—उस दिन मैं जान लूंगा कि मेरी खोज'''कि मेरे लिए खोज समाप्त हो गयी और पड़ाव आ गया ।' (नदी के द्वीप, पृ० 205)

2—'भुवन की दोनों हाथो की उंगलियों ने ढरके हुए बालों की एक-एक

लट पकड़ ली। फिर एक हाथ उसने छोड़ दिया, हाथ बढ़ाकर गौरा के माथे को धीरे-धीरे थपकने लगा।'''

'राह चलते जिस दिन बैठे-बैठे जानूंगा कि मेरे पीछे कोई है और मुड़कर नही देखूंगा, और फिर झुककर अपने खुले बाल मेरी आखों के आगे डाल देगी, उस दिन मैं जान लूंगा कि मेरी खोज'''मेरे लिए खोज समाप्त हो गयी और पड़ाव आ गया।' (वही, पृ० 296)

3—'मसूरी में'' मैंने सहसा देखा कि मेरे आगे एक मेघ है और वह तुम्हारे बालों का है'''तो जान लिया'''जान क्या लिया, तुमने कह दिया और मुझे लगा कि जान कर ही तुमने कहा है, नही तो तुम भी कैसे कह पाती? मैंने तुम्हें कहा'''कुछ हँसी में ही सही, कहा तो था कि जिस दिन ऐसा होगा जान लूगा कि मेरी खोज'''मेरे लिए खोज'''समाप्त हो गयी और पड़ाव आ गया।'''पर।' (वही, पृ० 327)

'रेखा' वाले अध्याय मे भुवन गौरा के साथ उसकी वैवाहिक समस्या पर विचार करता है। गौरा वही भुवन से पूछती है कि आपने क्या सोचा है अपने विषय में? इसी सन्दर्भ मे 'भुवन गौरा को पहले उद्धरण की बात कहता है, जिसे गौरा बच्चों जैसी और रोमांटिक'''जैसी बताती है। मसूरी मे जब गौरा के खुले बाल आगे ढरक आते है और भुवन के चेहरे को छा देते हैं तब भुवन को अपना बहुत पहले का कहा कथन याद आ जाता है। पूरा-पूरा वह सन्दर्भ दूसरे उद्धरण मे रूपायित है। अतीत से वर्तमान जुड़ने लगता है, चिन्तित सन्दर्भ से घटित सन्दर्भ टकराता है और लगता है, भविष्य प्रकाशित हो उठेगा। तीसरे उद्धरण में पुनः इसी सन्दर्भ का प्रत्याह्वान है। भुवन गौरा से कहता है कि अब नही भागूगा। यही वह अपना 'कुंतल-छांह' तुम मुझ पर किये हो जैसा एक पूरा कथित, स्मृत, अनुभूत और जीवित सन्दर्भ फिर से उपस्थित कर देता है। पहले भी इस सन्दर्भ के राग को दोनो ने साथ-साथ सुना था। बीच मे यह सन्दर्भ भुवन को चिलका था और अब पुनः दोनो उसके आमने-सामने है। उसके ढेर-सारे मानी की लय में डूबे हैं। रुमान कैसे साकार हो जाता है? हम कहां-से-कहां पहुंच जाते हैं? शब्द की पर्त से अर्थ की लयात्मक झंकार निकल आती है। प्रतीक संवर उठता है और सन्दर्भ की आवृत्ति से अर्थ को गहरे उकेर देता है।

मिश्र आवृत्ति से उत्पन्न लय :

'कोई बात नही मैन फ्राइडे, तारा खुद तुम्हें ढूढ लेगा।'''' मैं अंधेरे में डूबना नही चाहती?''''अच्छा, मैंने फ्राइडे तुम्हारा तारा कौन-सा है?' '''और 'तुम, शुक्रतारा' 'क्यों चांद नहीं'?'' 'वेन मैन? नहीं, शुक्र। मेरा तारा (नदी के द्वीप, पृ० 206)

'रेखा' नामक परिच्छेद में ही गौरा जब भुवन को कहती है''''या तारा ही

आप तक पहुँचे' तब भुवन को लगता है कि यह भी प्रतिध्वनि है। और फिर ये अलग-अलग उखडे-उखडे वाक्य सहसा ही उसके मन-मस्तिष्क मे चक्कर मारने लगते हैं। बहुत पहले ये अलग-अलग ढंग से अपने-अपने विशिष्ट सन्दर्भ में कहे जा चुके है। यहां इनकी आवृत्ति हो रही है, शब्दों की, वाक्यो की, सन्दर्भों की मिश्र आवृत्ति, एक दूसरे ही विपर्यस्त क्रम मे। ऊपर के अवतरण का तीसरा वाक्य रेखा ने भुवन से एक सौ सत्रहवे पृष्ठ पर कहा था '''अच्छा मैन फ्राइडे, तुम्हारा तारा कौन-सा है ?' दूसरा वाक्य गौरा ने भुवन को पत्र में लिखा था, जो रेखा के साहचर्य में उसे एक सौ अट्ठारहवें पृष्ठ पर याद आता है। अन्तिम वाक्यांश 'मेरा तारा' भी इसी पृष्ठ पर गौरा को पढायी गयी एक कविता के शीर्षक के रूप मे चर्चित है। वही रेखा ने कहा था''''कोई बात नही मैन फ्राइडे तारा खुद तुम्हें ढूँढ लेगा,' जो यहाँ 'तारा ही आपतक पहुँचे' से जुड़कर सबसे पहले स्मरण आता है। उसी परिच्छेद में रेखा ने भुवन को 'और तुम शुक्रतारा' (पृ० 134) कहा था। भुवन ने पूछा था '''क्यों चाँद नहीं' ? 'वेन-मैन, नहीं शुक्र, केवल शुक्र''' रेखा बोली थी। यहाँ सब-के-सब आवृत्त होकर एक लय, अत्यन्त प्रभावी लय सिरज रहे हैं, मानो कथाकार ने कथा-वस्तु को भीतर-ही भीतर बुने गये रूप मे उपस्थित करने के लिए न्यूनाधिक एवं विपर्यस्त रूप में आवृत्ति का सहारा लिया है।

'अज्ञेय' की कथा-भाषा में ये सारी आवृत्तियां अतिरिक्त बल लेकर उपस्थित हुई हैं, जिसे कथाकार ने एक मौलिक अनुक्रम में प्रस्तुत किया है, कृत्रिम एकर-सता से बचाया है, अर्थ के साथ व्यापक संगति प्रदान की है तथा वहां वैभिन्न्य का आसामान्य पेंचीलापन अनुक्रम के कुंडलीदार होने का अवबोधक सिद्ध हुआ है।

मौन के संगीत से निस्सृत लय :

उनकी भाषा में एक और लयात्मकता है, आवृत्ति से ऊपर की लयकारी, मौन के संगीत से निस्सृत लय—

'कहीं वरण की स्वतन्त्रता नही है। हम अपने बन्धु का वरण नही कर सकते'''*और अपने अजनबी का भी नही'''हम इतने भी स्वतन्त्र नही कि अपना* अजनबी भी चुन सकें—' (अपने-अपने अजनबी, पृष्ठ 114)

इस अवतरण मे सारे अर्थ के निश्शेष होने पर एक निष्क्रिय शान्ति की लय बरबस ही घेर लेती है। यह लय प्रकट अर्थ-संगीत के चुकने पर मौन के प्रभावी संगीत से निस्सृत है। 'अज्ञेय' जब मौन को अभिव्यंजना मानते हैं तब केवल बिन्दुक और उपराम के मौन से उनका आशय नहीं होता, न ही भाषाकार के ''''जितना तुम्हारा सच है उतना ही कहो' वाले संयम-मात्र से उनके मौन का अभिप्राय खुलता है, अपितु उसका अभिप्रेत कथ्य उजागर करने की उस बारीक कला में भी होता है, जिसके सारे अर्थ बोल देने के बाद की चुप्पी मे बिना बजाए

ही कोई लय बज जाती है । क्या 'अज्ञेय' उसके विषय मे नही कहते: 'दीठ से टोहकर नही मन के उन्मेष से उसे जानो।' तभी तो लय उनके यहां स्थिति की काव्यात्मकता सिरजती है ।

विवेक-अभिषिक्त कथाभाषा :

'अज्ञेय' की कथाभाषा के सर्जनात्मक संस्कार मे जहाँ राग का अनुराग है, वही विवेक का अभिषेक भी । यह विवेक पूर्व-विवेचित सावधानता, सचेतता से ज्यादा गहरा है और उनके आभिजात्य का तलस्पर्शी विवेचक है । यहाँ शब्द कर्म का स्थानापन्न है ।[1] कहते हैं, 'अपने-अपने अजनबी' भाषा के आभिजात्य का प्रायश्चित है ।[2] पर नही, विवेकी 'अज्ञेय' की कथा-भाषा अन्त तक संवेदना और अभिव्यक्ति की तनाव-प्रक्रिया में अपना अभिजात्य लिये हैं—

1. 'लाला के मोटे थुलथुल हाथ का थप्पड़ जो नौकर के गाल और आड़े आए हुए हाथ पर पड़ा तो मेरे मन मे तीखी प्रतिक्रिया हुई । लाला के बच्चे, क्यों पीटता है ?'

ऐसी मेरी भाषा नही है, गुस्से में भी नही । पर उस समय लाला को 'लाला का बच्चा, कहना ही मुझे ठीक जान पड़ा या ऐसे कह लीजिए कि लाला के बच्चे के नाम से ही उस मोटे और भोंड़े रूप को मै कोई संगति दे सका ।' (ये तेरे प्रतिरूप, पृ० 35)

2. 'वह बोला : तुम ऐसा सोच भी सकती हो ? मैं जीवन में कभी नही गया किसी—

वह कहना चाहता था कि वह कभी वेश्या के पास नहीं गया । लेकिन 'वेश्या' शब्द पर उसकी वाणी अटक गयी । उस स्त्री के सामने वह उस शब्द को जबान पर नही ला सका ।' (अपने-अपने अजनबी, पृ० 122)

ऊपर की वे दोनों कृतियाँ जिनसे उद्धरण लिये गयेहैं, 1961 मे प्रकाशित है । पहले उद्धरण मे न चाहकर भी 'लाला के बच्चे' कहा गया है, दूसरे में चाहकर भी 'वेश्या' शब्द नही कहा जा सका है । यह भाषा-विवेक है, जो दोनों जगहों पर 'अज्ञेय' के आभिजात्य की जरूरत को देखते उसे जरूरी तौर पर सुरक्षित रखे हुए हैं । पहले में यह विवेक-रक्षित आभिजात्य रेखांकित अंश में 'लाला के बच्चे' कहने की सफाई और औचित्य प्रस्तुत करने में है तो दूसरे में स्त्री के समक्ष 'वेश्या' शब्द के अनुच्चार के स्पष्टीकरण वाली अवरेखित पंक्ति मे ! यहां जगन्नाथन में

1. दिनमान (साप्ताहिक), सम्पा० सच्चिदानन्द वात्स्यायन (दिल्ली : टाइम्स ऑव इंडिया प्रकाशन, 23 जनवरी 1972), पृ० 43
2. रामस्वरूप चतुर्वेदी: अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या (दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ, प्र० संस्करण), पृ० 51

वह विवेक ही है, जिसे चाहें तो उक्त शब्द न बोल पाने की असमर्थता कह लें। 'विवेकी अज्ञेय भाषा जबान सँभाल कर बोलते हैं, फिर भी तू-तड़ाक से ज्यादा असरदार हो जाती है।[1] 'अपने-अपने अजनबी' में, जिसका कथ्य पूरी तरह अस्तित्ववादी है, जहाँ भाषा में योके द्वारा 'हरामी' जैसी गाली का प्रयोग 'दुनिया' और 'मौत' के लिए किया गया है वहाँ इसके बाद भाषिक संकोच की पर्त्त रह जाने का कोई सवाल ही नहीं होना चाहिए था। पर विवेक ने अपना सन्तुलन रखा है। इसलिए यहाँ अभिव्यक्ति का वह भाषिक संकोच भी है और है बड़े विवेक से इस संकोच का अगोपन उद्घाटन, प्रकट उल्लेख। 'अज्ञेय' का यह भाषा-विवेक बताता है कि 'अज्ञेय' यहाँ अपने आभिजात्य का 'पुनस्सर्जन' कर रहे हैं।

इस प्रकार 'अज्ञेय' की कथा-भाषा को पढ़-सुनकर लगता है कि हम हिन्दी पाठक कथा-भाषा के साथ कितना कम न्याय बरत पाते हैं। कविता की भाषा की तो हमारी भावन-दृष्टि एक दूरी तक विकसित भी है, किन्तु कथा-भाषा की उस अनुपात में बहुत कम, जहाँ पाठ के क्रम में हम बहुत सारे महत्वपूर्ण बिन्दुओं को छोड़ते भागते हैं, जिसके बिना कृति की ऊँचाई और उसकी परख हर्गिज नहीं हो सकती।

'जयति बचन रचना अति नागर' !

'अज्ञेय' की कथा-भाषा बड़ी ही एकतान और गुँथी हुई है। यह सतत अविछिन्न और सह-निर्भर है। पृष्ठ-पृष्ठ की भाषा एक दूसरे से जुड़ी है, जो चुकने-रीतने के बजाय सदा ही कुछ और अधिक जोड़ती चली जाती है। यह वह कथा-भाषा है, जो वामन-निरूपित गद्य के वृत्तगन्ध, चूर्ण और उत्कलिकाप्राय—तीनों रूपों को आयत्त कर भी अपने तेवर में उसकी निश्चित चौहद्दी से ऊपर उठी हुई है और जो बहुत दूर तक 'गीता' के शब्दों में अनुद्वेगी, प्रिय और स्वाध्याय-मार्जित होने के कारण अपने पूरे औचित्य के साथ 'वाङ्मय तप' की भाषा है। उनकी संवेदना से एकतान कथाभाषा, 'कवि तथा प्रज्ञ रूप के सम्मिलित सौष्ठव की भाषा, (डॉ० सत्यपाल चुघ), 'एक निश्चित आभिजात्य की भाषा' (डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी) है, जो 'एक सिद्धहस्त भाषाकार' (ओम प्रभाकर) की 'प्रौढ़ि और सौन्दर्य में अद्वितीय' (डॉ० नगेन्द्र) 'हिन्दी गद्य की सूक्ष्म अभिव्यंजना-शक्ति को एक सार्थक नया स्तर प्रदान करने वाली' (नेमिचन्द्र जैन), 'असाधारण और तीखे चित्रों वाली मँजी और पैनी' (डॉ० शिवदान सिंह) कथा-भाषा है, जिसमें एक ओर 'भाषाई तरलता, कोमलता तथा सूक्ष्मता मानसिक परतों को

1. दिनमान (साप्ताहिक), 2 जनवरी, 72, पृ० 42

उघाड़ने में सफल' (डा इन्द्रनाथ मदान) है, तो दूसरी ओर 'विभिन्न पदों की आभामयी अर्थवत्ता' (डा० देवराज) है और तीसरी ओर 'कम-से-कम शब्दों में अधिक-से-अधिक व्यक्त करने की असाधारण शक्ति'(डा०भगवत शरण उपाध्याय) है। हमें कथा-भाषा की ऐसी कारयित्री-भावयित्री प्रतिभा से सम्पन्न विशिष्ट व्यक्तित्व को अधिक-से-अधिक सम्मान देने मे कही किसी किस्म की कोई हिचक नहीं होनी चाहिए—'जयति बचन रचना अति नागर !'

हज़ारी प्रसाद द्विवेदी की कथा-भाषा

कथाकार हज़ारी प्रसाद द्विवेदी की कथा-भाषा अपने साभिप्राय सम्प्रेषण के लिए सतत सचेष्ट यदि एक ओर आलोक और आवरण की द्वि-आयामी कथा-भाषा है तो दूसरी ओर भाषिक संकेतों के अतिरिक्त भाषिकेतर संकेतों के प्रयोग की बहुआयामी कथा-भाषा भी।

द्विवेदी जी की दूसरी कथाकृति 'चारुचन्द्रलेख' में तपस्वी कहता है, 'भाषा बड़ी रहस्यमयी देवी है। ...महामाया का सबसे परिष्कृत रूप भाषा है। सत्त्वोन्मुखी होकर वह प्रकाश देती है, किन्तु तमोगुण की ओर उन्मुख होने पर वह केवल मोह की सृष्टि करती है, केवल आवरण उत्पन्न करती है, केवल कुहेलिका का जाल ताना करती है।'[1] आचार्य द्विवेदी की कथा-भाषा में भाषा के उक्त सतोगुणी और तमोगुणी—आगरण और मोह, आलोक और आवरण, स्पष्टता और कुहेलिका जैसे दोनों ही पक्ष प्राप्त होते हैं। द्विवेदी जी भाषिक सम्प्रेषणीयता को महत्व देते हैं, पर आवरण और अवगुंठन का निषेध नहीं करते हैं। छायावादी कवि प्रसाद के काव्य-संदर्भ में विचार करते हुए वे कहते हैं, 'आवरण और अवगुंठन बुरा क्या है? विधाता ने तो सारे संसार में अवगुंठन का जाल बिछा रखा है। नग्न और अनावृत्त सत्य उन्हीं को इष्ट नहीं है। यह आलोक और अंधकार की आंख-मिचौनी तो उन्होंने चला रखी है।'[2] अतः बहुत स्वाभाविक है कि इस मान्यता के पक्षधर का सर्जक-उपन्यासकार भी अपनी रचना में हर-कहीं नग्न और अनावृत्त सत्य को व्यक्त नहीं करना चाहता है। फलतः उसके अपने कथा-भाषा-संसार में भी आलोक और अंधकार की आंख-मिचौनी चलती है।

वास्तव में आलोक और अंधकार की आंख-मिचौनी का क्षेत्र सर्जन की भाषिक रचना-प्रक्रिया की बनावट और बुनावट का क्षेत्र होता है। 'चारुचन्द्र-लेख' में ही जल्हण को अपने पूछे गये प्रश्न के उत्तर में पिता का कथन स्मरण

---

1. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, चारुचन्द्रलेख (दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 1963, पचम आवृत्ति 1972, पृष्ठ-76.
2. वही, हिन्दी साहित्य (दिल्ली : राजकमल प्रकाशन)

आता है। चन्द अपनी रचना-प्रक्रिया को स्पष्ट करता हुआ कहता है कि 'कई बार मेरे चित्त में जो उठता है वह वाणी की रस्सी पकड़ कर कहीं ऐसी जगह चला जाता है, जो चित्तगत आरम्भिक विचारों से एकदम भिन्न होता है। मैंने कई बार सोचा है कि ऐसा क्यों होता है ? मुझे ऐसा लगता है कि मेरे अंतरतर में कोई और बैठा है, जो मेरी वाणी में छन्दों के पर बांध देता है और वह प्रयोजनों की दुनिया से ऊपर बहुत-ऊपर विपुल व्योम मे उड़ने लगती है।'[1] कथाकार द्विवेदी की कथा-भाषा से गुजरते हुए विशेषतः 'बाणभट्ट की आत्म-कथा' को पढ़ते हुए उसकी कथा-भाषा की सर्वोपरि विशेषता उसका अद्भुत, पर वैविध्यमूलक रूप में कल्पना-प्रधान, भावावेगी और काव्यात्मक होना है, जिसमें सर्वाधिक रूप मे भाषा का सौन्दर्यपरक प्रकार्य (Aesthetic Function) क्रियाशील होता है। उनकी भाषिक सर्जना में यह मोह, आवरण और कुहेलिका का पक्ष है। पर चन्द अपनी बात आगे बढाता हुआ जल्हण से कहता है : 'जब उस देवता का उल्लास मेरी वाणी के साथ मुखर होता है तो (मैं) कुछ और हो जाता हूं। मेरी वाणी में लाख-लाख लोगों की आशाओं और आकांक्षाओं के स्वर झंकृत हो उठते हैं। '''जन-चित्त की समष्टि-शक्ति ही वह विशेष बात है, जो कवि को कुछ और बना देती है।'[2] कहना न होगा कि द्विवेदी जी के कथा-संसार से गुजरते हुए धीरे-धीरे यह स्पष्ट होने लगता है कि 'जनचित्त की समष्टि-शक्ति' उनकी कथा-भाषा का आलोक-पक्ष है, उसकी प्रोक्तिगत विशेषता (Discourse Feature) है। प्रोक्ति (Discourse) को आधुनिक भाषाविज्ञान मे वाक्योपरि या वाक्यातीत स्तर की इकाई माना जाता है। वास्तव में यह अनेक वाक्यों की परस्पर ग्रथित वह शृंखला है, जिसमे संबंधिकता के साथ-साथ तार्किक अनुक्रम और आंतरिक संसक्ति विद्यमान रहती है। एक प्रोक्ति का प्रत्येक वाक्य परस्पर सापेक्षिक और नैरन्तर्यमूलक व्यवस्था को द्योतित करता है। चाहे 'बाणभट्ट की आत्मकथा' हो या 'चारुचन्द्रलेख', 'पुनर्नवा' हो या 'अनामदास का पोथा'—इनकी प्रोक्ति-भाषा मे आलोक का, स्पष्टता का, जागरण का यह पक्ष भी सोद्देश्य और साभिप्राय रूप में मुखर हुआ है। 'जनचित्त की समष्टि-शक्ति' की प्रोक्ति-परकता के अतिरिक्त द्विवेदी जी अपनी कथाभाषा मे अनेक संज्ञाओं, पारिभाषिकों को अनावृत्त-व्याख्यायित करते हुए भी आलोक, स्पष्टता और जागरण का पक्ष संपुष्ट करते दीखते हैं। इस रूप में वे सार्त्र के इस कथन को सार्थकता देते हैं कि 'किसी वस्तु को नाम देने का अर्थ है (था) उसको निवारण करना, फिर उसकी रचना करना, उसे ग्रहण करना तथा आत्म-

---

1. वही, चारुचन्द्रलेख (दिल्ली : राजकमल प्रकाशन 1979), पृष्ठ-276.
2. वही, चारुचन्द्रलेख (दिल्ली : राजकमल प्रकाशन 1979), पृष्ठ-276.

सात् करना।'[1] द्विवेदी जी भी नाम देते हैं, उसे निरावृत करते हैं, उसकी पुनस्सर्जना करते हैं, तथा उसे आत्मसात् करते हैं।

'पुनर्नवा' में देवराज कहते हैं, 'यहां शुद्ध स्वर्ण कहीं नहीं है, सब जगह खाद मिला हुआ है। सब कुछ शुद्ध सुवर्ण और खाद से बना हुआ हेमालंकार है।'[2] कथाकार द्विवेदी की कथाभाषा को भी, हम चाहें, तो इस कथन की सटीकता को देखते हुए हेमालंकारी कथाभाषा कह सकते हैं। उनकी कथाभाषा में स्वर्ण और खाद के इस मेल को देखते हुए ही डॉ० नामवर सिंह को यह लिखना पड़ा है कि 'गद्य में उनका भदेसपन है, कल्पनाशीलता भी, अंगदकूद भी, ढीलाढाला-पन भी, भाषा का सहज प्रवाह भी और बीच-बीच में उद्धरण देने का शौक भी।'[3] पर इन सबके बीच मुझे जो बड़ी बात सर्वत्र दीखती है वह है उनकी कथा-भाषा की छन्दोमयता। जैसे 'सुचरिता' का सारा शरीर ही छन्दों से बना था, उसके वस्त्र, उसके पदविक्षेप, उसका कंठस्वर, उसकी दृष्टि—सब कुछ छन्दोमय थे, वैसे ही आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की यह कथाभाषा अपनी हेमालंका-रिता में भी सर्वत्र छन्दोमयता से भरी है।

उनकी मोहात्मक सृष्टि करने वाली कथाभाषा अपनी संरचना में समुच्चय शैली में स्वरूपित हुई है। समुच्चय शैली समांतरता (Parallelism) पर आधारित होती है और गद्य-लय (Prose-rhythm) की सृष्टि करती है। पर समांतरता जहां एक बार के आवर्तन से ही स्वरूपित हो उठती है, वहां समुच्चय शैली के लिए एक से अधिक बार किया जाने वाला आवर्तन अपेक्षित होता है। वास्तव में यहां आवर्तन-संरचना का पूरा गुच्छ (Cluster) विद्यमान होता है। इस रूप में इसे घनत्वमूलक या शृंखल समांतरता कहा जा सकता है। द्विवेदी जी की कथाभाषा में उनकी यह समुच्चय शैली वाक्यांश और वाक्य-संरचना के स्तर पर 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में सर्वाधिक क्रियाशील है। वहां मुख्यतः यह शैली 'इनेत' (Enate) प्रकार की संरचना में प्राप्त होती है। एच. ए. ग्लियसन के अनुसार: 'Two sentences may be said to be enate if they have identical structures, that is, if the elements (Say, words) at equivalent places in the sentences are of the same

---

2. ज्यां पाल सार्त्र, शब्दों का मसीहा, प्रभा खेतान (दिल्ली : सरस्वती विहार, 1985) पृष्ठ-23.
3. हजारी प्रसाद द्विवेदी, पुनर्नवा (दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 1973, तृतीय संस्करण, 1977) पृष्ठ-23.
4. नामवर सिंह, दूसरी परम्परा की खोज (दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 1982), पृष्ठ-116.

clauses and is the construction in which they occur are the same."[1] अभिप्राय है कि जब दो या दो से अधिक वाक्यांशों, उपवाक्यों अथवा वाक्यों के बीच समान संरचना पायी जाती है और जब उनमें निहित भाषिक तत्त्व या शब्द समतुल्य अंतराल पर आते हैं और वे एक ही व्याकरणिक वर्ग के होते हैं – जैसे संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया-विशेषण, पूर्वकालिक क्रिया, कारक-परसर्ग आदि और उनकी बनावट भी एक-जैसी होती है तब वहां 'इनेत' (Enate) संरचना उपस्थित होती है। वास्तव में कथाकार हजारी प्रसाद द्विवेदी की कथाभाषा का यह एक ऐसा भाषा-वैशिष्ट्य है, जो अपनी प्रकृति और आनुपातिकता—दोनों रूपों में उन्हें अन्य हिन्दी उपन्यासकारों से विलगाता उन्हें निजता-निहंगता (Individuality and Singularity) प्रदान करता है। सच्चाई तो यह है कि उनकी समुच्चय शैली की समांतरता याकोब्सन की समांतरता के साँचे में नहीं अटती है—'पाट-पाट शोभा-श्री पट नहीं रही है।' उनके यहां याकोब्सन-निर्दिष्ट समांतरता का विवेचन और वर्गीकरण बहुत पीछे छूट जाता है। वास्तव में द्विवेदी जी की कथाभाषा उस प्रकार के उदाहरण या लक्ष्य-भंडार के रूप में हमारे सामने आती है, जिसके आधार पर समांतरता के अनेक नये भेद-प्रभेदों को रेखांकित करते हुए, उसके विशिष्ट नये तेवरों को पहचान करते हुए 'समांतरता' जैसे अभिलक्षण को और विस्तृत तथा और गहन रूप में स्वरूपित करने की अनिवार्यता उपस्थित होती है। 'चारुचन्द्रलेख' का धीर शर्मा जैसे श्लोकों की झड़ी लगा देता है वैसे ही कथाकार हजारी प्रसाद द्विवेदी अपनी कथा-भाषा में एक ही प्रकार की भाषिक संरचना की झड़ी लगाकर समांतरता जैसे भाषिक अभिलक्षण को समुच्चय शैली की सृष्टि करते हैं। यहां उनकी कथा-भाषा का प्रवाह रेखीय (Linear) नहीं रह जाता, अपितु वृत्तीय (Circualr) हो जाता है। यह समुच्चय शैली विभिन्न प्रकार से उपस्थित होती है। नीचे इसके उदाहरण द्रष्टव्य हैं :

1. अलंकार-मूलक समुच्चय शैली :

(क) मालोपमामूलक समुच्चय शैली :

1. वे उजड़े हुए देवमन्दिर की भांति, रास्ते में फेंकी हुई प्रतिमा की भांति, कीचड़ में धँसी हुई मालती-माला की भांति, अपनी-अपनी प्रतिभा खो चुकी थी, अपना सम्मान भूल चुकी थी, और अपनी शुचिता म्लान कर चुकी थी। (बाणभट्ट की आत्मकथा, पृष्ठ-93)

---

1. एच. ए. ग्लियसन, लिंग्विस्टिक्स ऐण्ड इंगलिश ग्रामर (लंदन : हॉल्ट, रिनेहार्ट एण्ड विंस्टन, 1665), पृष्ठ-189.

2. वे निदाघग्लपित जवा पुष्प के समान लाल होकर भी म्लान थी, झंझा-विलोड़ित कांचनार के समान प्रफुल्ल होने पर भी क्लांत थी, धूल-पटलित अशोक कुसुम के समान मनोहर होकर भी धूसर थी। (वही, पृष्ठ-130)

3. मोतियों-भरे शुचि-पटल की भांति, तुहिन-बिन्दु से पूर्ण पद्म-पलाश की भांति, शिशिरसिक्त पारिजात-पुष्प की भांति, अर्धस्फुट सिन्दुवार-कुसुम की भांति वे अश्रुभरी आंखें चित्त को करुण रस से प्रक्षालित कर रही थी, सहानुभूति की वर्षा से सींच रही थी, अनुकम्पा की धारा से धौत कर रही थीं। (वही, पृष्ठ-160)

4. वे उर्ध्व-विपाटित चन्द्रदलों की भांति, तांडवविहारी मत्त धूर्जटि के विकट अट्टहास के छोटे-छोटे अवयवों की भांति, तांडव-विध्वस्त वासुकि नाग के फणकलशों की भांति, पाचजन्य शंख के सहोदरों की भांति, क्षीरोद सागर के हृदय-पद्मों की भांति, ऐरावत-समर्पित मुक्तामय मुकुटों की भांति महादेव की मूर्ति की शोभा बढ़ा रहे थे। (वही, पृष्ठ-248)

5. मैं कुछ मांगती हुई-सी, सर्वस्व निछावर करती हुई-सी, सर्वात्मना उनकी रूपराशि में विलीन होती हुई-सी, शरणागता होती हुई-सी, स्तम्भिता चित्रलिखिता, उत्कीर्णा-संयता-मूर्च्छिता-विधृता की भांति निरुद्धचेष्ट हो गई। (वही, पृष्ठ-204)

6. एक क्षण में ही मेघमुक्त चन्द्रमंडल की भांति, शैवालमुक्त कमलपुष्प की भांति, काई हटाई गई पुष्करिणी की भांति और कुज्झटिका-विरहित दिङ्-मंडल की भांति वह प्रसन्न और निर्मल हो गई। (वही, पृष्ठ-117)

7. उनकी आयत-खिन्न लाल आंखें धूलि-लुंठित पलाश-पुष्प के समान, आतपम्लान बंधुजीव कुसुम के समान और पिंजरबद्ध खंजन शावक की भांति दर्शक को व्यथित, खिन्न और उत्सुक बना देती थी। (वही, पृष्ठ-144)

8. वह मूर्तिमती भक्ति की भांति, विग्रहवती शोभा की भांति, प्रत्यक्ष आविर्भूतलक्ष्मी की भांति और अनुरागवती संध्या की भांति हृदय को एक अपूर्व रस से सिक्त कर रही थी। (वही, पृष्ठ-181)

9. मैं अपराधी की भांति, मेय की भांति, विधृत की भांति उनके सामने कर्त्तव्यविमूढ़ होकर ठिठक रहा। (वही, पृष्ठ-218)

10. जाह्नवी की धारा में प्रतिफलित रक्तोत्पल की भांति, जलचादर के भीतर से परिदृश्यमान दीपशिखा की भांति, शरतकालीन मेघों से अन्तरित बाल-सूर्य के प्रभाव के समान ही वह लालिमा अधिकतर रमणीय होकर प्रकट हुई। (वही, पृष्ठ-205)

11. मैं मूक की भांति, स्तब्ध की भांति, जड़ की भांति, देर तक हाथ जोड़े खड़ा रहा। (वही, पृष्ठ-162)

12. कुछ देर तक भट्टिनी आविष्ट-सी, अभिभूत सी, पूर्ण-उद्भ्रान्त सी, जानुपातपूर्वक खड़ी रही। (वही, पृष्ठ-162)

13. केवल उस मृदुल-मनोहर दृष्टि की ओर मुग्धभाव से देखता रहा, जो इन्दीवर की माला की भांति मुझे बांध रही थी, कस्तूरिका-लेप की भांति मुझे स्निग्ध बना रही थी और मंदार माल की भांति अंदर और बाहर को चिर आमोद-मग्न कर रही थी। (वही, पृष्ठ 159)

14. बाणभट्ट पथभ्रान्त अकर्मा नहीं है, छिन्न रज्जु अनड्वान् की भांति अनर्गल-पाठी नहीं है, केदारोत्पाटित दूर्वादल की भांति रास्ते पर विक्षिप्त हत-भाग्य नहीं है, वन में खिलकर मुरझा जाने वाले जंगली फूल की भांति निष्फल-जन्मा नहीं है, क्षुर-क्षुण्ण धूलिकण के समान आश्रयहीन नहीं है, मरुकांतार में सूख जाने वाली नदी के समान व्यर्थकार्य नहीं है। (वही, पृष्ठ-159)

15. उसकी बड़ी-बड़ी काली आंखें शतदल-विबद्ध भ्रमर की भांति मनोहर थी, भ्रू-लताएं मदमत्त यौवन-गजराज की भांति तरंगायित होती दिख रही थी। और ललाट-पट्ट पर मन-शिला का लाल बिन्दु अनुराग-प्रदीप की भांति जल रहा था। (वही, पृष्ठ-118)

16. पार्वती के समान निर्मल अंतःकरण गंगा के समान पूतकारी विचार-धारा, कैलाश के समान शुभ चरित्र और मानसरोवर के समान सकरुण हृदय ने जिस देवी को अशेष लोक की पूजनीया बनाया है, उसे कलंकिनी समझने वाला नरक-भागी होगा। (वही, पृष्ठ-109)

17. वे देर तक निस्पन्द दीपशिखा की भांति, अचंचल विद्युल्लता की भांति और प्रफुल्ल दमनक-यष्टि की भांति बैठी रही। (वही, पृष्ठ-164)

18. मैं मूक की भांति, स्तब्ध की भांति, जड़ की भांति देर तक हाथ जोड़े खड़ा रहा। (वही, पृष्ठ-171)

19. आप अश्रद्दधान की भांति, नेय की भांति, लोकवृत्तान्त से अनभिज्ञ की भांति बात कर रहे हैं। (वही, पृष्ठ-171)

उपर्युक्त मालोपमा-मूलक समुच्चय शैली में 'भांति', 'समान' और 'सी' कथाकार के ऐसे वाचक हैं, जिनका बार-बार आवर्तन हुआ है। वस्तुतः कथाकार अपनी ऐसी समुच्चय शैली से यहां उपमानों की माला प्रस्तुत कर रहा है, जिससे उसकी मूल उपमेय-प्रोक्ति को महत्त्व, वैशिष्ट्य, गुणवत्ता और प्रभविष्णुता का विस्तार प्राप्त होता है। यहां सम्प्रेषणीयता बिम्ब-विधान के कारण सहज रूप में ज्ञान के व्यापक फलक पर क्रियाशील होती है।

(ख) उत्प्रेक्षामूलक समुच्चय-शैली :

1. इन्द्रिय-समूह के प्रसाद ही मानो वर्षित हो रहे हैं, तपस्या के रस ही

(मानो) अभीत हो रहे हैं, आंखों की धवल प्रभा ही मानों द्रवित होकर गिर रही है, पवित्रता की मेघ-माला ही मानो बरस रही है और कृतज्ञता की मुक्त माला ही मानो छिन्न होकर मोतियों के रूप में बिखर रही है। (वही, पृष्ठ-97)

2. यहां गगन-तल ही जल रूप में मानो अवतरित हो गया है, तुषारगिरि ही द्रवीभूत होकर मानो वर्तमान है, चन्द्रातप ही मानो जल धारा बन गयी है, पार्वती का अधांग वीक्षण ही मानो तरलित हो रहा है, त्रिभुवन की पुण्य राशि ही मानो पिघल गयी है। शरदकालीन मेघ-माला ही मानो ठिठक गयी है। सरस्वती की कर्पूर-धवल कांति ही मानो द्रवित हुई है। (वही, पृष्ठ-104)

3. भट्टिनी ने देर तक अर्थहीन दृष्टि से मुझे देखा, मानो उनका मन कहीं खो गया हो, मानो हृदय में ग्राहिका-संवेदना अवशिष्ट ही न रही हो, मानो स्नेह का स्रोत सूख ही गया हो, मानो अंतःस्पन्द एकदम रुक गया हो। (वही, पृष्ठ 222)

उपर्युक्त प्रोक्ति-अवतरणों में 'मानो' वाचक के रूप में आया है, जिसकी अनेकशः आवृत्ति हुई है। यहां भी मूल उपमेय-प्रोक्ति की गुणवत्ता-महत्ता, तीव्रता को उजागर किया गया है। सम्प्रेषणीयता यहां भी बिम्ब-विधान ही के कारण सहज हो उठी है और ज्ञान का फलक विस्तृत रूप में सामने आया है।

(ग) रूपक-मूलक समुच्चय शैली :

1. गंगा कैलाश की समस्त धवलिमा की मूर्तिमती धारा है, हर-जटा से चूई हुई चन्द्रमा के पीयूष का स्रोत है, ब्रह्मा के कमंडलु से ढुलकी वेद-विद्या का प्रभाव है, आर्यावर्त के जनगण मातृत्व का चिरंतन आश्रय है। (वही, पृष्ठ-204)

2. कौन है यह ब्रह्मचर्य की विजय-पताका, धर्म का यौवनकाल, वनदेवी का वेश-विन्यास, सर्वविद्याओं का स्वयंवृत्त पति, समस्त ज्ञान का मिलन-तीर्थ, शोभा-समुद्र, गुणों की आकर भूमि, कीर्ति का कैलास, छवि का स्रोतस्थान, प्रेम का उद्गत-विहार? (वही, पृष्ठ-204)

3. मां, यह इस पृथ्वी के पारिजात हैं, इस भवसागर के पुंडरीक हैं। इस कंटकमय भुवन के मनोहर कुसुम हैं। (वही, पृष्ठ-137)

4. (पट्टदेवी) अद्वितीय प्रतिधर्मचारिणी अरुन्धती का पार्थिव-विग्रह हैं, इस धरित्री पर भूल से चली आयी हुई कल्पलतिका हैं, पार्वती के तालहास की मूर्तिमती प्रतिमा हैं, सरस्वती की कर्पूरगौर कांति का ससार-रूप है। (वही, पृष्ठ-126)

5. वह दुर्गंध का भंडार है, दुराचार का आश्रम है, लम्पटता का आवास है। (वही, पृष्ठ-114)

6. समाज में नगर की लक्ष्मी, शोभा की खानि, कला की स्रोतस्विनी, परम-शील गुणन्विता गणिका चारुस्मिता का मयूर और नृत्य होने वाला है ।

(वही, पृष्ठ-102)

उपर्युक्त अवतरणों मे 'का'/'की' के जरिये रूपक की रचना की गयी है । अत: यहां 'का'/'की' का यथासंदर्भित आवर्तन हुआ है। समुच्चय शैली की आधारभूतसंरचना में इसका महत्त्व है । रूपकमूलक समुच्चय शैली के ये प्रोक्ति-अवतरण व्यापक उपमान-भण्डार को प्रस्तुत करने वाले, इतेत संरचना का संतुलन दिखाने वाले, बिम्ब-विधान की सृष्टि करने वाले एवं गद्य-लय की लहर उपस्थित करने वाले हैं ।

(घ) संदेहमूलक समुच्चय शैली :

1. शिव के तृतीय नयन की वह्निशिखा में अपने मित्र की भस्म होते देख वसंत ने ही वैराग्य ग्रहण किया है, या फिर महादेव के शिरस्थित चन्द्र ने ही अपना मंडल पूर्ण करने के लिए तपस्या करना शुरू किया है, या स्वयं कामदेवता ने शिव को प्रसन्न करने के उपरात अपने पाप के प्रायश्चित मे यह कठोर चर्या आरम्भ की है ?

(वही, पृष्ठ-203)

प्रस्तुत समुच्चय शैली का मूल संदेह का वाचक 'या' है, जिसका आवर्तन उपमेय के लिए एकाधिक उपमानो के सन्दिग्ध चयन को निर्दिष्ट करता है । यहां उपमान की अनेकता यदि एक ओर ज्ञान की विशदता का परिचय देती है, तो दूसरी ओर उस अनिश्चय की स्थिति को भी द्योतित करती है, जिससे संदेह सामने आता है । बिम्ब-विधान और गद्य-लय का वैशिष्ट्य यहां भी सुरक्षित है ।

(ङ) उत्प्रेक्षा-सह-संदेहमूलक समुच्चय शैली :

1. अत्यन्त तेजस्विता के कारण उस मुनिकुमार को देखकर ऐसा लग रहा था मानो वे विद्युत्पुंज के भीतर विराजमान हों, या ग्रीष्मकालीन सूर्य-मंडल के भीतर प्रविष्ट हों, या अग्निशिखा के मध्य शोभायमान हों । (वही, पृष्ठ-204)

उपर्युक्त प्रोक्ति मे एक ओर पहले अप्रस्तुत विधान में 'मानो' वाचक के प्रयोगवश उत्प्रेक्षा की तथा अन्य अप्रस्तुत विधानों मे 'मानो' के लोपवश गम्योत्प्रेक्षा की सृष्टि समुच्चय-शैली को उपस्थित करती है, जबकि दूसरी ओर प्रत्येक अप्रस्तुतविधान के बीच सन्देह की स्थिति है, जिसका वाचक 'या' सन्देहमूलक समुच्चय-शैली को उपस्थित करता है । यहां समुच्चय-शैली मुनिकुमार के व्यक्तित्व के मूल्यांकन में तो सहायक सिद्ध होती ही है, साथ ही मुनिकुमार के दर्शन से पड़ने वाले प्रभाव को भी अच्छी तरह उजागर कर देती है ।

(च) दृष्टांतमूलक समुच्चय शैली :

1. पावक को कभी कलंक स्पर्श नहीं करता, दीपशिखा को अंधकार की कालिमा नहीं लगती, चन्द्रमंडल को आकाश की नीलिमा कलुषित नहीं करती और जाह्नवी की वारिधारा को धरती का कलुष स्पर्श भी नहीं करता।

(बाणभट्ट की आत्मकथा, पृष्ठ-109)

2. स्यारों के स्पर्श से सिंह-किशोरी कलुषित नहीं होती, चींटियों के स्पर्श से कामधेनु अपमानित नहीं होती, चरित्रहीनों के बीच वास करने से सरस्वती कलंकित नहीं होती। (वही, पृष्ठ-109)

(छ) रचनामूलक समुच्चय शैली :

इसमें प्रत्येक वाक्यांश के अंतिम शब्द की अगले वाक्यांश के आरंभ में एक निश्चित गति पर आवृत्ति होती चलती है।

1. जिस प्रकार वसंत काल में मधुमास, मधुमास में पल्लवराशि, पल्लवराशि में पुष्पसंसार, पुष्पसंसार में भ्रमरावली और भ्रमरावली में मदावस्था बिना बुलाये आ जाती है, उसी प्रकार मेरे शरीर में यौवन का पदार्पण हुआ।

(बाणभट्ट की आत्मकथा, पृष्ठ-201)

2. साम का आश्रय स्वर है, स्वर का आश्रय प्राण है, प्राण का आश्रय जल है और जल का आश्रय स्वर्ग-लोक है। (अनामदास का पोथा, पृष्ठ-27)

3. वह जैसी कामना करता है वैसा ही उसका संकल्प होगा, जैसे उसके संकल्प होंगे, वैसा ही वह कर्म करेगा और जैसे उसके कर्म होंगे वैसा ही वह फल प्राप्त करेगा। (वही, पृष्ठ-68)

4. जिजीविषा है तो जीवन रहेगा, जीवन रहेगा तो अनंत संभावन रहेंगी। (वही, पृष्ठ-88)

5. ज्ञान मनन के बिना नहीं हो सकता, मनन श्रद्धा के बिना असंभव है, श्रद्धा निष्ठा के बिना नहीं रह सकती और निष्ठा केवल सोचते रहने वाले के वश की नहीं। (वही, पृष्ठ-148)

6. इन्द्रिय प्राणों में, प्राण मन में, मन बुद्धि में, और बुद्धि आत्मानंद में अनायास प्रवेश करने को व्याकुल है। (वही, पृष्ठ-178)

उपर्युक्त समुच्चय शैली की सभी प्रोक्तिया अर्थक्षेत्रीय सटीकता को दर्शाने वाली हैं। इनमें कहीं अर्थ की अधोन्मुखता है, तो कहीं अधोन्मुखता के साथ-साथ पारस्परिक निर्भरता, अनिवार्यपरकता और और कहीं इनके बीच अविनाभाव संबंधमूलकता तक विद्यमान है, जो ज्ञान की व्यापकता और सटीकता को निर्दिष्ट करती हैं।

2. व्याकरणिक समुच्चय शैली :

(क) युग्म संज्ञापदबंध की समुच्चय शैली :

1. समस्त आर्यावर्त के ब्राह्मण और श्रमण, देवमंदिर और शस्यक्षेत्र, अनाथ और नारी, पौर और जनपद जिस दिन अपने रक्षक देवप्रभु तुवर मिलिन्द की नयनतारा को पहचान लेंगे उस दिन से मंदिरों मे तुम्हारी मूर्ति बनाकर पूजेंगे । (बाणभट्ट की आत्मकथा, पृष्ठ-109)

2. देवमंदिरों और विहारों के रक्षक, स्त्रियों और बालकों के मानदाता, ब्राह्मणों और श्रमणो की आश्रयभूमि, देवपुत्र आज विषम शोक-सागर मे निमग्न हैं। (वही, पृष्ठ-151)

3. मैं ब्राह्मणों और श्रमणों के नाम पर देवमंदिरों और विहारों के नाम पर, स्त्रियों और बालिकाओं के नाम पर, विद्वानों और तपस्वियों के नाम पर इस भूमि के निवासियों को आवेदित करता हूं। (वही, पृष्ठ-151)

4. उदासी और प्रसन्नता, हँसी और रुलाई सब उन्ही का प्रसाद है ।

(वही, पृष्ठ-108)

इस प्रकार की समुच्चय शैली के उक्त सभी उदाहरण एक ओर गद्य-लय की लहर बनाते उपस्थित होते हैं, दूसरी ओर संज्ञापद-बंधों के युग्म प्रयोगवश निश्चित अर्थ-मंतव्य का उद्घाटन करते हैं। इसके अतिरिक्त विस्तारपरकता और विशेषणमूलकता भी इसके वैशिष्ट्य हैं ।

(ख) संज्ञा और तिङन्त की समुच्चय शैली :

1. यह जो मनुष्य-भाव है, प्रेम है, मैत्री है, चाह है, अभिलाषा है, तड़प है, व्याकुलता है, यह मनुष्य-भाव भी सब प्राणियो को मधु समान प्रिय है ।

(पोथा, पृष्ठ-126)

यहा प्रस्तुत समुच्चय-शैली मनुष्य-भाव की व्याख्या अच्छी तरह प्रस्तुत कर देती है।

(ग) विशेषण-विशेष्य पदबंध की समुच्चय शैली :

1. मातः निश्चय नयी बात है, यह नील आकाश, यह विलोल वायु, यह निर्मल जाह्नवी की धारा साक्षी है । (वही, पृष्ठ-137)

2. इस कलुष-पंकित संसार-सागर की प्रफुल्ल पद्मिनी, इस धूलि-धूसर वन-भूमि की मालती-लता। (वही, पृष्ठ-154)

यहा विशेषण-विशेष्य पदबंध की समुच्चय शैली अर्थ के फलक को सूक्ष्म रूप मे बिम्बमयता देती सीमित-संकेन्द्रित कर रही है ।

(घ) विशेष्य-विशेषण पदबंध की समुच्चय शैली :

1. देवरात भाव-विह्वल, अचंचल।

देवरात ठगे-से, खोये-से, हारे-से, स्तब्ध।

+ × + +

देवरात निश्चल, अकम्प। (पुनर्नवा, पृष्ठ-24)

2. महीतल अश्वमय, दिक्‌चक्रवाल कुंजरमय, अन्तरिक्ष आतपत्रमय, अम्बरतल ध्वननमय, वायुमंडल मदगंधमय और त्रिभुवन जयशब्दमय हो उठे। (बाणभट्ट की आत्मकथा, पृष्ठ-151)

3. पिंड में जो आत्मा है वही ब्रह्मांड में ब्रह्म है—सदा विद्यमान अखंड चैतन्य-स्वरूप, अनाविल आनन्द-रूप। (अनामदास का पोथा, पृष्ठ-58)

4. *यह आत्मा ही तो द्रष्टव्य है, श्रोतव्य है, मंतव्य है, निदिध्यासितव्य है।* (पोथा, पृष्ठ-97)

परवर्ती विशेषण-प्रयोग की समुच्चय शैली भी द्विवेदी जी के कथा-गद्य की विशेषता है। कई-कई ढगों से एक-एक मुद्रा के वैशिष्ट्य, एक-एक विशेष्य के विशेषण का श्रृंखल बिम्बविधान और वाक्य का 'दनेत' प्रवचन उक्त प्रोक्तियों में स्पष्ट है।

(ङ) सार्वनामिक विशेषण और विशेष्य की समुच्चय शैली :

1. यह भूमि, यह जल, यह अग्नि, यह वायु, यह आकाश, यह सूर्य, ये दिशाएं, यह चन्द्रमा, ये लड़खड़ाते मेघ—सब प्राणियों को मधु-समान प्रिय हैं। (पोथा, पृष्ठ-136)

2. अपने भीतर ही ढूढ, तेरा गुरु, तेरा देवता, तेरा सब कुछ भीतर ही है। (वही, पृष्ठ-169)

3. वही रूप, वही रंग, वही कांति, वही हँसी। (पुनर्नवा, पृष्ठ-59)

इस प्रकार की समुच्चय शैली में दनेत संरचना की थोड़ी-थोड़ी दूरी पर पड़ने वाली यति क्षिप्र गद्य-लय की सृष्टि करती है तथा विशेषण और विशेष्य का बहुशः आवर्तन कथ्य के फलक को व्यापकता प्रदान करता कहीं निर्देशात्मकता को, तो कहीं सम्बन्धमूलकता को और कहीं निश्चयात्मक निर्देशात्मकता का प्रत्यक्ष करा जाता है।

(च) क्रियामूलक समुच्चय शैली :

1. न जाने कौन-सी जड़िमा मेरे सारे शरीर-अवयवों को निष्क्रिय बना गयी, इन्द्रिय व्यापार को रुद्ध कर गयी' नेत्र-पक्षों को अचंचलता दे गयी और मेरे मन को अपरिचित, अनुभूत, मधुर रस में डुबो गयी। (पृ० 205, वही)

2. नाना कौशल से निपुणिका ने जटिल वटु को अपने पैरों पर गिराया, पकड़कर नचाया, सिर के केशों को मंच पर रगड़वाया और इस प्रकार रगड़े हुए दृश्य को *मनोरम प्रहसन का रूप देकर जटिल को खीचती हुई रंगभूमि से निकल* गयी। (वही, पृ०-231)

3. यही कारण है कि जब-जब वे मुझे खोलकर देख लिया करते थे, सीधा कर लेते थे। आप जब उनको विश्वास हो जाता था तभी आगे बढ़ते थे। (चारुचन्द्रलेख, 42) इस प्रकार की समुच्चय शैली एक ओर कालिक अवबोध एवं दूसरी ओर क्रियामूलक बिम्ब के शृंखल नैरन्तर्य को उपस्थित करती है।

(छ) पूर्वकालिक क्रियामूलक समुच्चय शैली :

1. किसी को मीठी-मीठी बातें करके, किसी को ताम्बूल, वीटक देकर, किसी को पुरस्कार देकर और किसी को अपना कोई आभूषण देकर उन्होंने सबका आशीर्वाद पाया। (बाणभट्ट की आत्मकथा, पृ० 188)

2. मानो विधाता ने शंख से खोदकर, मुक्ता से खींचकर, मृणाल से संवारकर, चन्द्र-किरणों के कूर्चक से प्रक्षालित कर, सुधाचूर्ण से धोकर, रजत-रज से पोंछकर, कुटज, कुन्द और सिंधुवार पुष्पों की धवल कान्ति से सजाकर ही उसका निर्माण किया था। (वही, पृ० 34)

प्रस्तुत समुच्चय शैली में पूर्वकालिक क्रिया का वैविध्य एक ओर आशीर्वाद—प्रगति की पूर्व स्थिति पर प्रकाश डालता है, तो दूसरी ओर निर्माण के मूल में निहित प्रयत्न-वैविध्य को उजागर कर देता है।

(ज) क्रियाविशेषण मूल समुच्चय शैली :

1. धीरे-धीरे शिशिर-बिन्दु को वहन करता हुआ पद्मवन को प्रकम्पित करता हुआ, परिश्रांत नागर-रमणियों के श्रमबिन्दु को विलुप्त करता हुआ, वन्य महिषों के फेनबिन्दु से मिचा हुआ, कम्पमान पल्लवों और लता समूहों को नृत्य की शिक्षा देता हुआ, प्रस्फुटित पद्मों का मधु बरसा कर, पुष्प-सौरभ से भ्रमरों को संतुष्ट करके मंद-मंद संचारी प्रभात-वायु बहने लगा।'

(बाणभट्ट की आत्मकथा, पृष्ठ-40)

2. तब वह खाता हुआ, खेलता हुआ, रमता हुआ, सैर करता हुआ, इस प्रकार विचरता है, जैसे यह शरीर, ये बन्धु-बांधव, ये आस-पास के लोग उसे कुछ याद नहीं। (अनामदास का पोथा, पृ० 57)

इस प्रकार की समुच्चय शैली से उक्त दोनों अभिव्यक्तियों में प्रभात-वायु के बहने और विचारण करने की व्यापक क्रिया विशेषणात्मक स्थिति स्पष्ट होती है, जो अर्थपरक एवं बिम्बमूलक—दोनों ही है।

(इ) कारकपरसर्ग-मूलक समुच्चय शैली :

1. 'ने' परसर्ग पर आधारित समुच्चय शैली :

(क) आज नारायण की कल्याण-भावना ने, महादेव की तपोनिष्ठा ने, देवराज की ईश्वरता ने, सुरगुरु की निर्मल मनीषा ने, मदन देवता की जय-लालसा ने, पार्वती की दृढ़मानिता ने, और सरस्वती की सम्पूर्ण संचिता ने, रूप-नीग्रह किया है। (आत्मकथा, 252)

(ख) भैंस चराने वाले बालकों ने, अज्ञात कुलशील पत्थर तोड़ने वाले श्रमिकों ने, हल चलाने वाले खेतिहारों ने, भीख माँगने वाले निठल्लों ने, परान्न-पुष्ट रुंड-मुंड साधुओं ने, नाच-गान से जीवन-यापन करने वाली नर्तकियों ने, रस्सों पर खेल दिखाने वाले नटों और नटनियों ने अद्‌भुत देशभक्ति का परिचय दिया है। (चारुचन्द्रलेख, 95)

2. 'को' परसर्ग पर आधारित समुच्चय शैली :

(क) मेरा मन इस पवित्रता की मूर्ति को, भक्ति की स्रोतस्विनी को, श्रद्धा की निर्झरिणी को, अनुराग की खान को, सेवा की उत्सधारा को, चुपचाप प्रणाम किये बिना न रह सका।

(ख) लोक से लोकान्तर को, काल से कालान्तर को, दिशा से दिगंतर को तुम यह संदेश पहुँचा देना कि बाणभट्ट का जीवन व्यर्थ नहीं था।

(वही, 159)

(ग) सारे चिन्तन-मनन को, क्रिया-कर्म को, एक ओर ठेलकर यही रूप तुम्हारे मन में आ जाता है। (पोथा, 133)

(घ) उसने आग में जलते हुए गांवों को देखा, अधमरे निरीह शिशुओं को चिल्लाते देखा, फिर देखा कठोर आकृति वाले अतुल सैनिकों को।

(चारुचन्द्रलेख, 113)

3. 'से' परसर्ग पर आधारित समुच्चय शैली :

(क) वसंतकाल ने कोकिलों के संगीत से, भ्रमरों के गुंजार से, चम्पक कलिका के प्रसाद से और सहकार-मंजरी के मांगल्य से उनका अभिनन्दन किया होगा। (आत्मकथा, 212)

(ख) आत्मा के ही देखने से, सुनने से, समझने से, और जानने से सब गाँठें खुल जाती हैं। (पोथा, 97)

(ग) जो अन्न से, जल से, स्वास्थ्य से, वंचित हैं, उन्हें अपनी करुणा-राशि के कणों से सिंचित करो। (पोथा, 81)

(घ) हे प्रेमरूप वैश्वानर, जो अहंकार से, मोह से, लोभ से, जर्जर हैं, उन्हें स्नेह-सुधा समुद्र की वर्षा से उज्ज्वलित करो। (वही)

(ङ) हे उदग्र ज्योति बंधु, जो संकोच से, ग्लानि से, लज्जा से, दबे हुए हैं उन पर अपनी प्रकाश-राशि के कण बरसाकर तेजस्वी बनाओ··· (वही)

(च) राजा जानश्रुति के राज्य में एक नहीं अनेक स्त्री-पुरुष, वृद्ध-बालक भूख से, प्यास से, रोग से व्याकुल हैं। (वही, 71)

(छ) तप और स्वाध्याय से, मनन और निदिध्यासन से, ध्यान और समाधि से वह परम तत्त्व अनुभव का विषय बनता है। (वही, 59)

(ज) धुल जाने दो उनका सारा परिताप आंसू, स्वेद से, रक्त से।
(चारुचन्द्रलेख, 153)

4. 'में' परसर्ग पर आधारित समुच्चय शैली :

इस चिलचिलाती धूप में, झनझनाते हुए शरत्कान्तर में, वात्यालोल-तप्त वायु में भी भट्टिनी का स्मरण आते ही हृदय में एक प्रकार की शीतलता अनुभूत हुए बिना न रही··· (आत्मकथा, 217)

ऊपर 'ने', 'को', 'से', 'में' जैसे कारक परसर्गों पर आधारित समुच्चय शैली जहाँ एक ओर कर्तृत्व, कर्मत्व, करणत्व और अधिकरणत्व की बलात्मक, निश्चयात्मक और बिम्बात्मक आरम्बारिता प्रस्तुत करती है वहीं दूसरी ओर यह इनेत संरचना की लघुता-दीर्घता के द्वारा गद्य-लय की प्रभविष्णु प्रवाहात्मकता भी उपस्थित करती है।

व्याख्यात्मक वाक्य-संरचना की समुच्चय शैली :

1. इसी/उस प्रकार/जिस प्रकार की समुच्चय शैली :

अभ्रभेदी श्वेत शिखर यथास्थान इसी प्रकार अविचल खड़े होंगे, जिस प्रकार भद्रेश्वर की सौध अट्टालिकाएँ दिख रही है, कभी न बुझने वाली औषध-मणियाँ उस श्वेत धारा में इसी प्रकार जल रही होंगी, जिस प्रकार इस दुर्ग के प्रासाद-वातायनों में प्रदीप जल रहे हैं, मेखला को घेरकर संचरण करने वाले मेघखंड उसी प्रकार सिमट गये होंगे जिस प्रकार इस दुर्गहर्म्यों की तिरस्करिणियाँ सिमट गई हैं, और वहीं गुहाओं में शयन करने वाली सिद्धवधुएँ मदाकिनी के निर्झर-सीकरों से सिक्त वायु को उसी प्रकार आलस विलसित से उपयोग कर रही होंगी, जिस प्रकार इस दुर्ग की सुन्दरियाँ आज के मधुर, मदिर, शीतल वायु का उपयोग कर रही हैं। (बाणभट्ट की आत्मकथा, 156)

2. 'जिस प्रकार'···उस प्रकार की समुच्चय शैली :

महाराज, जिस प्रकार महान् अग्निराशि प्रज्वलित हुई थी, भगवान् भी उसी प्रकार दस सहस्र संसार के ऊपर बुद्धलक्ष्मी के द्वारा प्रज्वलित हुए थे। जिस प्रकार वह महान् अग्नि राशि प्रज्वलित होकर निर्वाण प्राप्त हुई थी, उसी

प्रकार महाराज, भगवान् भी दस सहस्र लोक से ऊपर बुद्धलक्ष्मी द्वारा प्रज्वलित होने के पश्चात् निःशेष निर्वाण द्वारा परिनिर्वाण प्राप्त हुए थे।

(वही, पृष्ठ-167)

3. 'जब-तो' की समुच्चय शैली :

माधवी लता को घेरकर जब मधुकर-श्रेणी गुंजार करती है, तो मैं स्पष्ट ही पुष्पों के भीतर सौरभ के रूप में स्तब्ध-उस महादेवता को देख पाता हूँ, नदी जब उन्मत्त वेग से अपने सर्वस्व को दोनों हाथों से लुटाते हुए समुद्र की ओर दौड़ती रहती है, तो उस महारागमय देवता का मुझे साक्षात्कार होता है, मेघ के श्यामल-मेदुर वक्षस्थल में क्षण-भर के लिए जब विभ्रमवती विद्युत् चमककर छिप जाती है, तो उस समय भी मैं उस व्याकुल वेदना के देवता को देखना नहीं भूलता।

(वही, पृष्ठ 158)

4. 'जो'''उसे' की समुच्चय शैली :

देख रे, तेरे शास्त्र तुझे धोखा देते हैं, जो तेरे भीतर सत्य है, उसे दबाने को कहते हैं, जो तेरे भीतर मोहन है उसे भुलाने को कहते हैं, जिसे तू पूजता है उसे छोड़ने को कहते हैं।

ऊपर निर्दिष्ट द्विवेदी जी की कारकात्मक वाक्य-संरचना की समुच्चय शैली में जहाँ 'इसी/उस प्रकार-जिस प्रकार' और 'जिस प्रकार-उस प्रकार' की सरचना में समतुल्यता; विस्तारमूलकता द्विरवदृश्यमयता एवं उपमेय-उपमानमूलकता की घनता उपस्थित होती है वही 'जब-तो' और 'जो उसे' की संरचना मे पारस्परिक निर्भरता तथा केन्द्राभिसारिता प्रत्यक्ष होती है।

5. विपर्यस्त वाक्य-संरचना की आन्तिक समुच्चय शैली :

इस प्रकार की शैली मे रचनाकार वाक्य के निश्चित स्थल पर आने वाले अंश को—चाहे वह आरम्भ का हो या मध्य का—चाहे वह संज्ञा पदबंध हो या विशेषण पदबंध—उसे विपर्यस्त कर सबसे अन्त मे प्रस्तुत करता है। इसके रचनाकार की शैली में परवर्तिता का आग्रह प्राप्त होता है। वह अपनी शैली मे वामोन्मुख नही रहकर दक्षिणोन्मुख हो जाता है, वाक्य की प्रकरणशीलता मे विपर्यस्त अंश को दायीं ओर ले आता है।

कथाकार हजारी प्रसाद द्विवेदी की कथा-भाषा मे इस प्रकार की समुच्चय शैली के उदाहरण भी द्रष्टव्य हैं :

1. सब गुलाम हैं—चित्त के दरिद्र, आचरण के अभद्र और चरित्र के अपावन।

(चारुचन्द्रलेख, 277)

2. प्रायश्चित करने दो महाराज, धुल जाने दो उनका सा
आँसू से, स्वेद से, रक्त से।

3. उसकी तलवार तेजी से चल रही है—काल-सर्प के फण की भांति अनवरत, विद्युल्लेखा की तरह वक्र, चचल, रामवाण के समान अमोघ।

(वही, 184)

4. विदुषी जाबाला को जैसा वर मिलना चाहिए था उनके मत से आश्वलायन ठीक वैसा ही वर था—विद्वान्, सुरूप और शीलवान। (पोथा, 154)

इस प्रकार की शैली मूलतः गुणात्मक साधर्म्य की बिम्बोद्भावन की दृष्टि से प्रस्तुत की जाती है। कहीं-कहीं पूर्ववर्ती पद को शीर्षांकित करने की दृष्टि से भी वहां पर पूर्वकाम्य अश को परवर्ती बना दिया जाता है और अभीष्ट अश को शीर्षांकित किया जाता है।

उपर्युक्त चारों उदाहरणों में विपर्यस्त वाक्य-संरचना की आन्तिक समुच्चय शैली गुणात्मक साधर्म्य का बिम्बोद्भावन कराने मे पूरी तरह समर्थ है।

3. प्रोक्तिमूलक समुच्चय शैली :

प्रोक्तिमूलक समुच्चय शैली द्विवेदी जी की कथाभाषा में आलोकधर्मिता का प्रभाव उपस्थित करती है। इस शैली का प्रयोग उनके यहाँ प्रोक्ति-संरचना के दोनों ही स्तरों पर प्राप्त होता है : (क) बाह्य संरचनात्मक समुच्चय शैली और (ख) गहन संरचनात्मक समुच्चय शैली।

(क) बाह्य संरचनात्मक समुच्चय शैली :

प्रोक्ति का निर्माण वाक्य और वाक्य के अन्तर्ग्रन्थन से होता है, जिसके मूल में योगात्मक (और, तथा, एवं) विकल्पात्मक (चाहे, या, अथवा, वा), कारणात्मक (क्योंकि, चूंकि), परिणामात्मक-निष्कर्षात्मक (इसलिए, अतः), विरोधात्मक (पर, लेकिन, मगर, परन्तु, किन्तु) आदि निपात अपनी सक्रिय भूमिका अदा करते हैं।

द्विवेदी जी की कथा-भाषा मे वाक्यांशों और वाक्यों के पारस्परिक संयोजन में जिस निपात का सर्वाधिक प्रयोग प्राप्त होता है वह निपात विरोधात्मक निपात है। इसे उनकी विशिष्ट शैली के चिह्नक के रूप मे स्वीकार किया जाएगा।

1. मैं हंसी वाली रुलाई और रुलाई वाली हंसी पहचानने में अपने को सिद्धहस्त समझता था, पर यह हँसी एक विचित्र प्रकार की थी। उसमें आकर्षण था, पर आसक्ति नहीं थी, ममता थी, पर मोह नहीं था। (आत्मकथा, 17,)

2. उनकी शिराओं से रक्त की धारा छूट रही है, मांस खण्ड लटककर टूट रहे हैं, परन्तु वे चट्टान की भाँति अपने स्थान पर दृढ़ हैं।

(वही, पृ० 113)

3. उसका गला रुंधा है, मस्तिष्क बेचैन है, हाथ शत्रुओं से उलझे हुए हैं और वाणी कातर है, पर उसमें भट्टिनी को बचा लेने की अदमनीय आशा है।

(वही, 113)

4. हाय, विधाता की बनायी शर्मिष्ठा तो कब की समाप्त हो गयी, पर उन्होंने अपने हृदय में जो कमनीय मूर्ति गढ़ी है, वह तो अब भी ज्यों-की-त्यों है। (पुनर्नवा, 137)

5. उज्जयिनी-नरेश पालक घबरा गया है। मगर धन्य है भटार्क, राज्य-पर-राज्य जीतता आ रहा है, पर गोपाल आर्यक के नाम से ही लड़ता आ रहा है। (वही, 137)

(ख) गहन संरचनात्मक समुच्चय शैली :

प्रोक्ति की गहन संरचनात्मक समुच्चय शैली द्विवेदी जी की कथा-भाषा में 'प्रतिज्ञप्ति' और 'वृत्तिकता'—दोनों ही संदर्भों में उपस्थित होती है तथा दोनों ही रूपों में यह शैली उनकी कथा-भाषा के आलोकधर्मी पक्ष को उजागर करती है।

1. प्रतिज्ञप्ति-विशेष की समुच्चय शैली :

(क) 'दिखाना' की समुच्चय शैली—संसार में जहां कहीं सुचारुता दिखती है, प्रेम दिखता है, वात्सल्य दिखता है, अनुराग दिखता है, वहीं यह अंगुलि-निर्देश भी प्रत्यक्ष हो जाता है। (पोथा, 152)

(ख) 'पाना' की समुच्चय शैली—आर्यक आज पार्वती का स्नेह पा रहा है, गंगा का पावन स्पर्श पा रहा है, अरुंधती का वरदान पा रहा है— (पुनर्नवा, 268)

(ग) 'सोचने लगना' की समुच्चय शैली—क्या सोचने लगे थे? कल भी सोचने लगे थे, आज भी सोचने लगे। —(वही, 268)

(घ) 'याद आना' की समुच्चय शैली—उसे माँ जी की बात याद आयी। बुढ़ऊ भाभियों का भोंडा परिहास याद आया, मांजी का विवश चेहरा याद आया, अपनी शिराओं की झनझनाहट याद आयी और फिर रात भर उठती रहने वाली हूक याद आयी। (वही, पृ० 87)

2. निषेधात्मक-विधेयात्मक प्रोक्ति की समुच्चय शैली :

पति की कामना के लिए पति प्रिय नहीं होता, अपने आत्मा की कामना के लिए पति प्रिय होता है; पत्नी की कामना के लिए पत्नी प्रिय नहीं होती अपने आत्मा की कामना के लिए पत्नी प्रिय होती है। पुत्रों की कामना के लिए पुत्र प्रिय नहीं होते, अपने आत्मा की कामना के लिए पुत्र प्रिय होते हैं, वित्त की कामना के लिए वित्त प्रिय नहीं होता, अपने आत्मा की कामना के लिए वित्त प्रिय होता है, ब्रह्म शक्ति की कामना के लिए ब्रह्म प्रिय नहीं होता, अपने आत्मा की कामना के लिए ब्रह्म प्रिय होता है;…लोकों की कामना के लिए लोक प्रिय नहीं

होते, अपने आत्मा की कामना के लिए लोक प्रिय होते हैं, देवों की कामना के लिए देव प्रिय नहीं होते, अपने आत्मा की कामना के लिए देव प्रिय होते हैं, भूतों की कामना के लिए भूत प्रिय नहीं होते अपने आत्मा की कामना के लिए भूत प्रिय होते हैं, इस सब कुछ की कामना के लिए सब कुछ प्रिय नहीं होता, अपने आत्मा की कामना के लिए सब कुछ प्रिय होता है। (पोथा, 96-97)

3. क्रियामूलक प्रतिज्ञप्ति-वैभिन्न्य की समुच्चय शैली :

(क) उसी को देख, उसी को सुन, उसी को जान, उसी का ध्यान धर। (पोथा, 97)

(ख) प्रौढ़ व्यक्ति गुस्से में डांट रहा है, धमका रहा है, मारने को दूट रहा है, बच्चे और भी जोर से हंसते हैं और भी तेज आक्रमण करते हैं। (पोथा, 83)

(ग) ऐसा जान पड़ा कि सब जल रहे हैं, उछल रहे हैं। तड़प रहे हैं, मँडरा रहे हैं। (पुनर्नवा, 193)

(घ) कहीं कोई झकझोर रहा है, मसल रहा है, चिंघाड़ रहा है। (वही, 157)

(ङ) न हिले, न बोले, न आगे बढ़े—न ययौ न तस्थौ। —(वही, 126)

(ख) वृत्तिकता की समुच्चय शैली :

1. निषेधात्मक वृत्तिकता की समुच्चय शैली :

(क) वह न हिला, न बोला, न विचलित हुआ। (आत्मकथा, 279)

(ख) खेद यह है कि न यह बंधन छूटता ही है, न छुड़ाने की इच्छा होती है। (वही, 262)

(ग) न कहीं विरोधी पक्ष की संभावना से आशंका है, न किसी पर भले-बुरे प्रभाव से प्रयोजन। (वही, 265)

(घ) उसे न रोग होता है, न जान आती है, न मृत्यु का आक्रमण होता है। (वही, 106)

(ङ) मां नहीं, बाप नहीं, भाई नहीं, बहिन नहीं, घर नहीं, द्वार नहीं। यही तो बड़े-बड़े महात्मा कठोर तपस्या के बाद सिद्धि रूप में प्राप्त करते हैं। (पोथा, 168)

(च) ये रेखाएं बताती हैं, इस प्रकार के हाथ वालों को न माता का सुख मिलता है, न पिता का, न भाई का, न बहन का। (पोथा, 168)

(छ) न वह उपेक्षणीय है, न लक्ष्य है। (वही, 137)

(ज) जिसके पास घर नहीं, भूमि नहीं, माता नहीं, पिता नहीं, उसे क्यों कोई लड़की देगा ? (वही, 106)

(झ) मेरे जनपद में कोई चोर नहीं है, कोई कृपण नहीं है, कोई मद्यप नहीं है। कोई व्यभिचारी नहीं है—फिर व्यभिचारिणी छो हो ही कैसे सकती है ? (वही, 76)

(ञ) यह तो वही कह सकता है, जिसमें मोह न हो, कुंठा न हो, झिझक न हो। (चारुचन्द्रलेख, 232)

(ट) केवल एक शब्द कानों में गूंजता रहा—नहीं। क्या नहीं ? नहीं, अर्थात् बाहर नहीं जा सकते, आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकते, सफाई देने का प्रयत्न नहीं कर सकते। सब नहीं।—कुछ नहीं, केवल मैं बंदी हूँ, मैना को अधिकार है, वह मेरी सारी इच्छाओं को 'नहीं' के चाबुक से मारकर जिधर चाहे उधर मोड़े। 'नहीं' का और दूसरा अर्थ क्या हो सकता है ? 'नहीं', कितना मनोहर बंधन है। (चारुचन्द्रलेख, 225)

(ठ) कहीं नूपुर की झंकार नहीं, किंकणी का क्वणन नहीं, कंकण का रणन नहीं, किन्तु सारा वातावरण एक विचित्र झणकार से विद्ध हो गया था। (वही, 223)

(ड) विद्याधर भट्ट ने घोड़े नहीं सजाये, जयदुन्दुभी नहीं बजायी, विकट बन्ध काव्य नहीं पढ़े, घटाटोप वाले स्तोत्र नहीं गाये। (वही, 94)

(ढ) अब कोई स्त्री विधवा न होगी, कोई माता निपूती न होगी, कोई बालिका अनाथ न होगी। (वही, 83)

(ण) किसी से न डरना, गुरु से भी नहीं, पंथ से भी नहीं, लोक से भी नहीं, वेद से भी नहीं ! (आत्मकथा, 81)

(त) न तो प्रवृत्तियों को छिपाना उचित है, न उनसे डरना कर्तव्य है और न लज्जित होना युक्तियुक्त है। (वही, 80)

2. प्रश्नात्मक वृत्तिकता की समुच्चय शैली :

(क) कौन है जो इस दुर्गम म्लेच्छ वाहिनी को इस पवित्र भूमि में आने से रोक सके ? कौन है, जिसकी विशाल भुजाएं इस समय गिरि संकट के कपाट का कार्य करेंगी ? कौन है, जिससे प्रताप-वाहन को शिखा में दुर्दान्त म्लेच्छ शलभायमान होंगे ? (आत्मकथा, 226)

ऐसा निरुद्देश्य, निर्लक्ष्य वेग से भी किस काम का ? मनुष्य केवल जन्म मरण के दुरंत वात्याचक्र में पच-पचकर मरने के लिए बना है ? अनंत वेग के लिए छोटे-छोटे सहस्रों आदि और अन्त निरर्थक परिहास-मात्र हैं ? कालचक्र के सिंहासन पर आसीन महादेव क्यों बनाया था, तुमने माया-ममता के द्वारा जकड़े हुए सुकुमार मानव-हृदय को ? इस हृदय में जो दारुण झंझा बह रही है, वह

क्या तुम्हारे प्रचंड वेग के इंगित पर ही बह रही है ? इसका भी कोई अन्त नही है, इसमें भी कही ममता का स्पर्श नही है। यह भी अपनी सत्ता के लिए आप ही प्रमाण है ? (पुनर्नवा, 127)

(ग) क्यों इतना बड़ा आयोजन हुआ, किसके लिए ? किस अनुराग की अरुणिमा ने पूर्व दिग्वधू के मुख को लज्जा की आभा से इस प्रकार दीप्त कर दिया ? निखिल भुवन के उनरले स्तर के परिदृश्यमान कोलाहल के अन्तराल में क्या कही चोरी-चोरी में प्रीति-सरल अनुराग-लीला चल रही है ? अचानक इतना राग, इतनी आभा, इतनी दीप्ति, क्या यों ही ढरकी पड़ती है ? जिस समय सारा विश्व गाढ़ निद्रा में निमग्न है, उसी समय इतना विपुल आयोजन, इतनी विराट साज-सज्जा क्या सिर्फ़ बात-की-बात है ? (चारुचन्द्रलेख, 201)

(घ) क्या कहा ? चला गया ? मैंन सिंह अकेला चला गया है ? भुक्खड़ गिद्धों की भीड़ में अकेला सिंह किशोर धंस गया ? मेरी धमनियों में जीवनी शक्ति संचारित करने वाला दुधमुंहा बालक अकेला चला गया ?

(वही, 179)

यद्यपि द्विवेदी जी की कथाभाषा में निषेधात्मक और प्रश्नात्मक—दोनों प्रकार की वृत्तिकता की समुच्चय शैली प्राप्त होती है, पर कुल मिलाकर उनके यहां प्रश्नात्मक वृत्तिकता की समुच्चय शैली का अनुपात निषेधात्मक वृत्तिकता से कही अधिक है। यूं वृत्तिकता के रूप में प्रश्नात्मक और निषेधात्मक—दोनों ही वृत्तिकता को उनका शैलीचिह्नक माना जाएगा।

इस प्रकार द्विवेदी जी की कथा-भाषा मे प्राप्त होने वाली इस विविध रूपा समुच्चय शैली की अनेक विशेषताएं हैं। इसका प्रयोग-फलक उनके यहा अत्यन्त व्यापक है। जहां उनके यहा अलंकार-मूलक समुच्चय शैली आवरण, अवगुंठन और अन्धकार की सृष्टि करती है, वही व्याकरण मूलक और प्रोक्तिमूलक समुच्चय शैली कुहेलिका को मिटाती आलोक और स्पष्टता का प्रसार करती है।

अपनी समुच्चय शैली में संख्या-प्रयोग की दृष्टि से उन्होंने एक प्रकार की संरचना के दस बार तक घनत्व और नैरन्तर्यमूलक आवर्तित प्रयोग किये हैं। इसके बाद क्रमशः नौ, आठ, सात, छह, पांच, चार, और तीन की संख्या आती है। पर इन सभी संख्याओ मे द्विवेदी जी की अपनी समुच्चय शैली के लिए तीन की संख्या सर्वाधिक प्रिय है। इसीलिए वे अपनी समुच्चय शैली में किसी भी प्रकार की संरचना का प्रायः तीन बार आवर्तन करते दीखते हैं। यह आवर्तन उनके यहां सर्वाधिक देखने को मिलता है। चाहे संज्ञा, विशेषण और क्रिया की आवर्तक संरचना हो, चाहे नामिक, बलात्मक निपात और. निषेधात्मक निपात की, चाहे संज्ञा और कारक परसर्ग की आवर्तक संरचना हो, चाहे विशेष्य-विशेषण की, चाहे विशेषण-विशेष्य की आवर्तक

संरचना हो, चाहे विशेषण क्रिया की — इन सब का अधिकाधिक आवर्तन उनकी कथा-भाषा में तीन बार ही उपस्थित होता है। उनके यहां क्या नामिक, क्या कर्मरता, क्या क्रियात्मकता और क्या उपमानमूलकता—हर कहीं इस तीन संख्या की ही प्रमुखता-विशिष्टता है। उनकी कथाभाषा में मध्यसंरोधी शैली का संदर्भ हो या इस शैली में नामिक के विशिष्ट प्रयोग का या निपात से जुड़े संज्ञा-युग्म के प्रयोग का —पर आवर्तन की समुच्चयता अधिकांश स्थल पर तीन की ही दीख पड़ती है। यह स्थिति उनकी प्रत्येक उपन्यास-कृति में विद्यमान है, चाहे उसका सांचा बड़ा हो या छोटा। यहां तक कि द्विवेदी जी इस कौशल को केवल शब्द स्तर तक पर भी अपनाते दीखते हैं। पुनर्नवा में द्विवेदी जी ने लिखा है कि पांच की संख्या मथुरावासियों को बहुत प्रिय है। उसी तरह कहा जा सकता है कि स्वयं द्विवेदी जी को तीन की संख्या से ऐसा ही लगाव है। उनकी सारी कृतियों में 'चारुचन्द्रलेख' वह विशिष्ट कृति है, जिसमें इस त्रिक् समुच्चय शैली के शताधिक प्रयोग प्राप्त होते हैं। वास्तव में उनकी समुच्चय शैली का यह वैशिष्ट्य उनका व्यामोही भाषा-प्रयोग है। फलतः उनकी समुच्चय शैली के अन्तर्गत इसे उनका निजी शैली-चिह्नक (Style Marker) माना जाएगा।

द्विवेदी जी की इस समुच्चय शैली का सांचा उनकी आरम्भिक कथाकृति की भाषा में बहुत प्रसरणशील और व्यापक है। वहां इसका दीर्घतम संपट्ट तक प्राप्त होता है। वास्तव में उन्होंने 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में अपनी समुच्चय शैली का ठाठ बांधा है। पर धीरे-धीरे उनकी परवर्ती कथा-कृतियों—'चारुचन्द्रलेख', 'पुनर्नवा' और 'अनामदास का पोथा'—में यह सांचा लघुतर होता जाता है। एक-आध अपवाद को छोड़ दें, तो 'पोथा' में आकर यह सांचा लघुतम हो जाता है।

कहना न होगा कि द्विवेदी जी की कथा-भाषा की समुच्चय शैली घनत्व-मूलक, शृंखल, स्थानिक, समानरता पर आधारित अग्रप्रस्तुति (Foregrounding) की विशेषता को उजागर करने वाली है, जिसमें भाषा का सौन्दर्यात्मक प्रकार्य (Aesthetic function) अत्यन्त क्रियाशील रहता है। पर इसके साथ ही उनकी समुच्चय शैली में भाषा के अभिव्यंजनात्मक प्रकार्य (Expressive Function) को भी महत्त्व प्राप्त हुआ है। उनकी यह समुच्चय शैली भाषा के अनेकविध रूपांतरण-कौशल (Devices of Transformation) को भी प्रस्तुत करती है, जिनमें अधिवर्धक (Additive), विपर्यस्त (Disordered) और विचलित (Deviated) कोटि के कौशल प्रमुख हैं।

2. समंजन शैली (Coherence Style) :

समंजन शैली संसक्तता (Coherence) पर आधारित होती है। संसक्तता सूचना-इकाइयों की तार्किक संगति के प्रति संकेतित है, जबकि संगति (Cohe-

sion) शाब्दिक और व्याकरणिक इकाइयों से सरोकार रखती है।[1] समंजसता के दो प्रकार होते हैं—1. स्थानिक समंजसता (Local Coherence) और 2. व्यापक समंजसता (Global Coherence)।[2] स्थानिक समजसता जहां पाठात्मक अनुक्रम के वाक्यों के बीच सूचना-इकाइयों के सम्बन्धों की तार्किक संगति को ध्यान में रखती है वहां व्यापक समंजसता वाक्यों के सारे कुलक—पूरी प्रोक्ति के बीच की तार्किक संगति को ध्यान में रखती है। स्थानिक समंजसता भाषा की लघु संरचना (Micro Structure) के स्तर पर क्रियाशील होती है, पर व्यापक समंजसता भाषा की बृहत संरचना (Macro Structure) के स्तर पर अपनी सक्रियता दिखाती है।[3]

द्विवेदी जी समंजस शैली के भी विशेष प्रयोक्ता हैं। वे अपनी कथा-भाषा में पाठ के पूरेपन में प्रोक्ति की समांतरता या आवृत्ति का ऐसा व्यवहार करते हैं, जिससे अन्तराल के बाद भी यह बार-बार उपस्थित होती है और सूचना-इकाइयों की तार्किक संगति के प्रति संकेन्द्रित रहकर पाठ की पूरी अर्थवत्ता या कथ्यबिन्दुगत साभिप्रायता पर प्रकाश डालती, विशिष्ट समंजस शैली को जन्म देती है। द्विवेदी जी अपनी कथा-भाषा में जहाँ पाठ की स्थानिकता में समांतरता का, समुच्चय शैली का प्रयोग करते हैं, वहां पाठ की व्यापकता-पूर्णता में प्रोक्ति-समांतरता का प्रयोग करते हुए समंजस शैली का निदर्शन प्रस्तुत करते है।

द्विवेदी जी की कथाभाषा में आलोक, स्पष्टता और जागरण के पक्ष को प्रस्तुत करने वाली विभेदक शैली, निर्वचनात्मक शैली, मोचक शैली जैसी अनेकानेक शैलियों के बीच समंजस शैली का विशिष्ट एवं महत्त्वपूर्ण स्थान है। कहना न होगा कि यह उनकी भाषिक संरचना की प्रिय शैली है। नीचे उनकी समंजस शैली के कुछ महत्त्वपूर्ण उदाहरण द्रष्टव्य हैं :

(क) 'जलौघमग्ना सचराचराधरा' की स्तुति-प्रोक्ति की समंजस शैली :

1. और इसी राग-राग गान की पृष्ठभूमि में हमारी 'अशोकवन की सीता' ने भक्ति-कातर वाणी में महावराह की स्तुति की :

---

1. चित्रा फर्नांडो, 'कोहरेंस इन लिटरेरी टेक्स्ट', स्टाइल, स्ट्रक्चर ऐंड क्रिटिसिज्म, सम्पादक डेविड बर्ड (दिल्ली : बाहरी पब्लिकेशंज प्राइवेट लि० 1985), पृ० 158
2. टी० ए० वान० डिज्क, 'सिमेंटिक रिलेशंज इन डिस्कोर्स', स्टडीज इन द प्रैग्मेटिक्स ऑव डिस्कोर्स (द हेग : मूतन पब्लिशर्ज, 1981), पृ० 268
3. हनीस राइसर, 'ऑन द डेवलेपमेंट ऑव टेक्स्ट ग्रामर' करेंट ट्रेंड्ज इन टेक्स्ट लिंग्विस्टिक्स, सम्पा० वूल्फगैंग ड्रेस्लर (न्यूयार्क : वाल्टर डी ग्रूटर, 1978), पृ० 7

जलौघमग्ना सचराचराधरा विषाण कोट्याखिलविश्वमूर्तिना ।
समुद्धृता येन वराह रूपिणा स मे स्वयं भूर्भगवान् प्रसीदतु ।।
(बा० की आ० पृ० 35)

2. वह बहुत मीठे सुर में बोल रही थी—'स मे स्वयं भूर्भगवान् प्रसीदतु।'

3. सारिका एक क्षण चुप रहकर फिर सुरीली आवाज़ में गाने लगी—
'स मे स्वयं भूर्भगवान् प्रसीदतु।' (94)

4. नौका के नीचे से आनंद-गदगद् स्वर सुनायी दिया—
जलौघमग्ना सचराचराधरा विषाण कोट्याखिलमूर्तिधारिणा ।
समुद्धृता येन वराहरूपिणा स मे स्वयं भूर्भगवान् प्रसीदतु ।'
(पृ० 122)

5. 'जलौघमग्ना सचराचरा' का मोहन स्तव कभी नहीं रुका है।
(पृ० 153)

6. ऐसे ही समय मधुर-कोमल कंठ से समस्त शून्यता को भरती हुई भट्टिनी ने महावराह की स्तुति पढ़ी—
जलौघमग्ना सचराचराधरा, विषाण कोट्याखिल विश्वमूर्तिना ।
समुद्धृता येन वराहरूपिणा स मे स्वयं भूर्भगवान् प्रसीदतु ।
(पृ० 269)

7. हे जलौघमग्ना सचराचराधरा के समुद्धर्ता, यह कैसा परिहास है तुम्हारा? दीनानाथ, इसमें कौन-सी कल्याण-कामना छिपी है तुम्हारी? निउनिका चली गयी, भट्टिनी परकटी कोकिला की भाँति अवसन्न है। तुम्हारी स्तुति कौन गाये? जैसे-तैसे मंत्र पढ़ा—
जलौघमग्ना सचराचराधरा, विषाण कोट्याखिलविश्वमूर्तिना ।
समुद्धृता येन वराहरूपिणा स मे स्वयं भूर्भगवान् प्रसीदतु ।
(पृ० 289)

(ढ) किसी से भी नहीं डरने की प्रोक्ति की सामंजस्य शैली :

1. डरना किसी से भी नहीं, गुरु से भी न- [illegible] से भी नहीं, भी नहीं, वेद से भी नहीं। ([illegible]

2. सिर्फ दूर से बादलों को चीरकर [illegible] नों में प्रवेश र(ी : किसी से न डरना, गुरु से भ [illegible] नहीं, लोक नहीं, वेद से भी नहीं। ([illegible]

3. [illegible] के [illegible] साधना-गृह में [illegible] ी देर आने का अ [illegible] े-चलते गुरु से भी [illegible]]।

(ग) नरलोक से किन्नर लोक तक एक ही रागात्मक हृदय के व्याप्त रहने की प्रोक्ति की समंजस शैली :

1. भट्ट ! तुम्हीं ऐसे हो जो नर-लोक से लेकर किन्नर लोक तक व्याप्त एक ही रागात्मक हृदय, एक ही करुणायित चित्त को हृदयंगम करा सकते हो। (बाणभट्ट की आत्मकथा, पृष्ठ 259)
2. इस नर-लोक से लेकर किन्नर-लोक तक एक ही रागात्मक हृदय व्याप्त है। (वही, 260)
3. किन्नर-लोक तक फैले हुए एक ही रागात्मक हृदय का परिचय पा सके। (वही, 260)
4. यह क्या सम्भव है कि मनुष्य इतना निर्दयी हो, इतना वीभत्स हो, इतना क्रूर हो ! पर भट्टिनी कह रही हैं कि उनमें भी एक रागात्मक हृदय है। (पृष्ठ 268)
5. भट्टिनी कह रही थी कि नर-लोक से किन्नर-लोक तक एक ही रागात्मक हृदय के संधान का काम बीच में ही रुक गया। क्यों रुकेगा आर्य ? निपुणिका के जीवन का बलिदान तभी सार्थक होगा जब यह संधान सफल हो। (वही, 288)
6. नरलोक से किन्नर-लोक तक व्याप्त एक ही रागात्मक हृदय का संधान पाना बाकी है। अपने सेवक को उचित मार्ग-प्रदर्शन करो। (वही, 290)
7. नीचे से ऊपर तक एक ही रागात्मक हृदय व्याप्त है। निपुणिका ने उसे स्पष्ट कर दिया है। (वही, 290)
8. बोले, 'बाणभट्ट' केवल भारत में ही नहीं होते, इस नर-लोक से किन्नर लोक तक, एक ही रागात्मक हृदय व्याप्त है। (वही, 293)

(घ) प्रत्यन्त दस्यु के फिर आने की ओर अमृत के पुत्रों को पुकारने की उद्बोधनात्मक प्रोक्ति की समंजस शैली :

1. भाइयो, फिर प्रत्यन्त दस्यु आ रहे हैं। (पृष्ठ 150)
2. भाइयो, प्रत्यंत-दस्यु आ रहे हैं। (पृष्ठ 151)
3. भाइयो, प्रत्यन्त-दस्यु आ रहे हैं। (पृष्ठ 151)
4. भाइयो, प्रत्यन्त दस्यु फिर आ रहे हैं। (पृष्ठ 152)
5. भाइयो, प्रत्यन्त-दस्यु फिर आ रहे हैं। (पृष्ठ 152)
6. अमृत के पुत्रो, शांत होओ। (पृष्ठ 194)
7. अमृत के पुत्रो, संयम से काम लो। (पृष्ठ 195)
8. अमृत के पुत्रो, न्याय जहाँ से भी मिले, खींच लाओ। (पृष्ठ 195)

जलौघमग्ना सचराचराधरा विषाण कोट्याखिलविश्वमूर्तिना ।
समुद्धृता येन वराहरूपिणा स मे स्वयं भूर्भगवान् प्रसीदतु ।।
(बा० की आ० पृ० 35)

2. वह बहुत मीठे सुर मे बोल रही थी —'स मे स्वय भूर्भगवान् प्रसीदतु ।'
3. सारिका एक क्षण चुप रहकर फिर सुरीली आवाज में गाने लगी— 'स मे स्वयं भूर्भगवान् प्रसीदतु ।' (94)
4. नौका के नीचे से आनंद-गदगद् स्वर सुनायी दिया—

जलौघमग्ना सचराचराधरा विषाण कोट्याखिलमूर्तिधारिणा ।
समुद्धृता येन वराहरूपिणा स मे स्वयं भूर्भगवान् प्रसीदतु ।'
(पृ० 122)

5. 'जलौघमग्ना सचराचरा' का मोहन स्तव कभी नहीं रुका है ।
(पृ० 153)
6. ऐसे ही समय मधुर-कोमल कठ से समस्त शून्यता को भरती हुई भट्टिनी ने महावराह की स्तुति पढ़ी—

जलौघमग्ना सचराचराधरा, विषाण कोट्याखिल विश्वमूर्तिना ।
समुद्धृता येन वराहरूपिणा स मे स्वयं भूर्भगवान् प्रसीदतु ।
(पृ० 269)

7. हे जलौघमग्ना सचराचराधरा के समुद्धर्ता, यह कैसा परिहास है तुम्हारा ? दीनानाथ, इसमें कौन-सी कल्याण-कामना छिपी है तुम्हारी ? निपुणिका चली गयी, भट्टिनी परकटी कोकिला की भाँति अवसन्न है । तुम्हारी स्तुति कौन गाये ? जैसे-तैसे मंत्र पढ़ा—

जलौघमग्ना सचराचराधरा, विषाण कोट्याखिलविश्वमूर्तिना ।
समुद्धृता येन वराहरूपिणा स मे स्वयं भूर्भगवान् प्रसीदतु ।
(पृ० 289)

(घ) किसी से भी नहीं डरने को प्रोथित की समंजस शैली :

1. डरना किसी से भी नहीं, गुरु से भी नहीं, मन्त्र से भी नहीं, लोक से भी नहीं, वेद से भी नहीं । (130)
2. सिर्फ दूर से बादलों को चीरकर एक आवाज़ कानों में प्रवेश करती रही : किसी से न डरना, गुरु से भी नहीं, मंत्र से भी नहीं, लोक से भी नहीं, वेद से भी नहीं । (129)
3. विरातक के साथ वे साधना-गृह मे चले गये और मुझे थोड़ी देर बाद आने का आदेश दिया । चलते-चलते कहते गए—'किसी से न डरना, गुरु से भी नहीं, मंत्र से भी नहीं ।

(ग) नरलोक से किन्नर लोक तक एक ही रागात्मक हृदय के व्याप्त रहने की प्रोक्ति की समंजस शैली :

1. भट्ट ! तुम्हीं ऐसे हो जो नर-लोक से लेकर किन्नर लोक तक व्याप्त एक ही रागात्मक हृदय, एक ही करुणायित चित्त को हृदयगम करा सकते हो । (बाणभट्ट की आत्मकथा, पृष्ठ 259)
2. इस नर-लोक से लेकर किन्नर-लोक तक एक ही रागात्मक हृदय व्याप्त है । (वही, 260)
3. किन्नर-लोक तक फैले हुए एक ही रागात्मक हृदय का परिचय पा सके । (वही, 260)
4. यह क्या सम्भव है कि मनुष्य इतना निर्दयी हो, इतना बीभत्स हो, इतना क्रूर हो ! पर भट्टिनी कह रही हैं कि उनमें भी एक रागात्मक हृदय है । (पृष्ठ 268)
5. भट्टिनी कह रही थी कि नर-लोक से किन्नर-लोक तक एक ही रागात्मक हृदय के संधान का काम बीच में ही रुक गया । क्यों रुकेगा आर्य ? निपुणिका के जीवन का बलिदान तभी सार्थक होगा जब यह संधान सफल हो । (वही, 288)
6. नरलोक से किन्नर-लोक तक व्याप्त एक ही रागात्मक हृदय का संधान पाना बाकी है । अपने सेवक को उचित मार्ग-प्रदर्शन करो । (वही, 290)
7. नीचे से ऊपर तक एक ही रागात्मक हृदय व्याप्त है । निपुणिका ने उसे स्पष्ट कर दिया है । (वही, 290)
8. भोले, 'बाणभट्ट' केवल भारत में ही नहीं होते, इस नर-लोक से किन्नर लोक तक, एक ही रागात्मक हृदय व्याप्त है । (वही, 293)

(घ) प्रत्यन्त दस्यु के फिर आने की और अमृत के पुत्रों को पुकारने की उद्बोधनात्मक प्रोक्ति की समंजस शैली :

1. भाइयो, फिर प्रत्यन्त दस्यु आ रहे हैं । (पृष्ठ 150)
2. भाइयो, प्रत्यंत-दस्यु आ रहे हैं । (पृष्ठ 151)
3. भाइयो, प्रत्यन्त-दस्यु आ रहे हैं । (पृष्ठ 151)
4. भाइयो, प्रत्यन्त दस्यु फिर आ रहे हैं । (पृष्ठ 152)
5. भाइयो, प्रत्यन्त-दस्यु फिर आ रहे हैं । (पृष्ठ 152)
6. अमृत के पुत्रो, शांत होओ । (पृष्ठ 194)
7. अमृत के पुत्रो, संयम से काम लो । (पृष्ठ 195)
8. अमृत के पुत्रो, न्याय जहाँ से भी मिले, खींच लाओ । (पृष्ठ 195)

9. जवानो, प्रत्यन्त दस्यु आ रहे हैं। (पृष्ठ 254)

10. अमृत के पुत्रो, प्रत्यन्त-दस्यु आ रहे हैं। (पृष्ठ 254)

11. जवानो, प्रत्यन्त दस्यु आ रहे हैं। (11 बार आवर्तित, पृष्ठ 255)

12. अमृत के पुत्रो, प्रत्यन्त-दस्यु आ रहे हैं। (पृष्ठ 256)

13. जवानो, प्रत्यन्त दस्यु आ रहे हैं। (2 बार आवर्तित, पृष्ठ 256)

(ङ) सारे अनर्थों की जड़ में स्त्री के होने की प्रोक्ति की समंजस शैली :

1. तुम्हारे साथ दीर्घकाल तक रहने का सौभाग्य मुझे मिला है, मेरी ही शपथ करके तुम सत्य-सत्य कहो, मेरा कौन-सा ऐसा पाप-चरित्र है जिसके कारण मैं निदारुण दुःख की भट्ठी मे आजीवन जलती रही ? क्या स्त्री होना ही मेरे सारे अनर्थों की जड़ नहीं है ? (पृ॰ 233)

2. निपुणिका ने कल कहा था कि मेरी ही शपथ करके तुम माथ-साथ रहो, आर्य मेरा कौन-सा ऐसा पाप-चरित्र है, जिसके कारण मैं आजीवन दु.ख की निदारुण भट्ठी में जलती रही, क्या स्त्री होना ही मेरे अनर्थों की जड़ नहीं है ? (पृ॰ 243)

(च) चिड़िया ओर पिंजड़ा की प्रोक्ति की समंजस शैली :

1. मैंने कहा घुड़सवार दया करो, 'मैं भी तुम्हारी, पिंजड़ा भी तुम्हारा।' घुड़सवार ने ताली बजाकर कहा, बेकार बात है। मैं तुम्हारा/और पिंजड़े का भी। (पृ॰ 29)

2. भूल गये महाराज ! पिंजड़ा भी तुम्हारा, चिड़िया भी तुम्हारी। मैंने आवेश में रानी के कोमल करतलों को चूम लिया और बोला, 'मैं पिंजड़े का भी, चिड़िया का भी।' (चारु चन्द्रलेख, पृ॰ 68)

3. क्या कहा था देवि, 'पिंजड़ा भी तुम्हारा, चिड़िया भी तुम्हारी !' आज यह क्या देख रहा हूँ, पिंजड़ा भी गया, चिड़िया भी गयी। (पृ॰ 248-49)

(छ) आँधी, बिजली, मेघ, वज्र, सुधाधारा और शक्ति की प्रोक्ति की समंजस शैली :

1. बिजली की तरह कड़को, सुधा-धारा की भाँति बरसो और असहाय प्रजा में साहस और शक्ति का संचार करो।

2. बिजली की तरह कडको, सुधाधारा की भांति बरसो और असहाय प्रजा मे साहस और शक्ति का सचार करो। (पृ॰ 166)

3. उठो महाराज, प्रचड आंधी की भांति बहो। (पृ॰ 170)

4. महाराज, मेरा धैर्य समाप्त हो गया है। उठो, आँधी की तरह बहो, बिजली की तरह कड़को, मेघ की तरह बरसो।

5. उन्होने कहा था, राजन् आँधी की तरह बहो, बिजली की तरह कड़को, मेघ की तरह बरसो। (पृ॰209)

6. महाराज, आँधी की तरह बहो, वज्र की भाँति टूटो, दावानल की भाँति जलो। (पृ० 248)

(ज) बासी होने और बासी को ताजा करने की, पुनर्नवा करने की प्रोक्ति की समंजस शैली :

1. मंजुला ने कृत्रिम गर्व का भाव धारण किया। विव्वोक-चटुल मुद्रा में 'नासा मोरि नचाई दृग' बोली, 'बासी है !' (पुनर्नवा, पृ० 16)

2. देवरात ने हँसते हुए कहा, 'अवश्य सुनाओ देवि, मगर सौन्दर्य तो वही है, जो बासी नहीं होता।' (पृ० 16)

3. राजा की ओर देखते हुए, किन्तु वस्तुतः देवरात को लक्ष्य कर उसने कहा, 'मैं बासी को भी ताजा बना सकती हूँ, महाराज !' (वही, पृ० 16)

4. इसीलिए हाथ जोड़कर उसने राजा से कहा, 'महाराज, पहले प्रत्यग्र-मनोहर सुनाने की अनुमति दें और बाद मे बासी को ताजा करने की।' (वही, पृ० 16)

5. फिर उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना बोलते गये, 'बासी घाव हरा हो गया था....' (वही, पृ० 21)

6. आँखें न जाने कैसी-कैसी हो गयी थीं। बोले, 'देवि, बासी को ताजा करने के लिए इस दिन का साधुवाद ग्रहण करो।' (वही, पृ० 24)

7. आर्य देवरात योग्य। प्रणाम-पुरस्सर अधमा दासी मंजुला की विनम्र अभ्यर्थना। चरण-कमलों मे सप्रश्रय विनिवेदन। अपराध क्षमा हो। प्रत्यग्र मनोहर अंगीकार हो। (वही, पृ० 55)

8. अन्यच्च ! बड़ी साध यह भी थी आर्य, कि कभी प्रत्यक्ष पूछती कि आपने जो कहा था कि आपका बासी घाव मेरी कविता से ताजा हो गया था, वह क्या था ? (वही, पृ० 57)

9. वे व्याकुल थे, व्यथित थे। हाँ, देवि, बासी घाव ताजा हो गया था। इसके लिए प्राण देकर भी तुम्हारे ऋण से उद्धार नहीं होगा। (वही, पृ० 59)

10. तुम इस घाव का क्या उपचार कर सकती थी, शुभे ! घाव का बार-बार ताजा हो जाना क्या साधारण उपचार था ? (वही, पृ० 59-60)

11. हाय देवि, बासी को ताजा 'करने का रहस्य जानना चाहती हो ? 'जानती तो तुम्हे कैसा लगता ? विधाता ने बाह्य रूप का इतना साम्य देकर न जाने क्या करना चाहा था ? अब देखता हूँ, आंतर रूप भी वही है, वैसा ही कमनीय, वैसा ही कल्पनाशील। (पृ० 60)

12. दुनिया बदल रही है, देवरात बदल रहे हैं, पर शर्मिष्ठा स्थिर है, शाश्वत है, मोहन है। मंजुला ने कहा था, मैं बासी को ताजा कर सकती हूँ। देवरात ने भी मान लिया था कि बासी ताजा हो रहा है। शायद यह उनके मन

का विकार था। कवि ने आज बता दिया है कि मनुष्य द्वारा सीमा में रचित रचना बासी होती नही। (पृ० 140)

13. फिर वे एकाएक ससंभ्रम उठकर खड़े हो गये—'तुम हो देवि, तुम हो—छन्दों की रानी, तालों की नर्मसखी, बासी को ताजा करने वाली पुनर्नवा ! (पृ० 245)

14. सहना ही पड़ेगा ! देवरात अशक्त है, पंगु है, कर्त्तव्य-मूढ़ है। पुनर्नवे देवि, तुम नित्य-नवीन होकर मानस-पटल पर उदित होती हो। जानती नही, किस मर्म वेदना को जगा जाती हो, किस बासी घाव को नया कर जाती हो। (पृ० 245)

15. अभाजन को क्षमा करना, वह धर्म जो सहज न हो, कष्टदायक होता है।। तुम्हें कष्ट हो रहा है। इस अभाजन के लिए यह कष्ट स्वीकार करो देवि ! पुनर्नवा बनकर नित्य आती रहो। तुम्हारा थोड़ा कष्ट किसी को हरा कर जाये तो क्या हर्ज है देवि ! नही, तुम नित्य-नवीन होकर हृदय मे उतरा करो। नित्य नवीन होकर, पुनः-पुनः नवीन होकर मेरी पुनर्नवा रानी ! तुम आती हो दिव्य वेश मे, तुम्हारे प्रत्येक पद-संचार से प्राणों का उद्-बोधन होता है, मुरझाये अंकुर खिल उठते हैं, कलियाँ चटकने लगती हैं, सारे विश्व-ब्रह्माण्ड मे जीवन-रस उमड पड़ता है। (पृ० 246)

(ख) पीठ में सनसनाहट होने और उसे खुजलाने की प्रोक्ति की समंजस शैली :

1. उन्हें आशा थी कि वह उनकी पीठ पर आ जाएगी। पीठ में एक अजीब-सी सनसनाहट हो रही थी। वह शांत नही हुई। (अनामदास का पोथा, पृ० 32)

2. पीठ की सनसनाहट ज्यों-की-त्यों बनी रही। (वही, पृ० 32)

3. उन्होंने रथ को खींचकर उस स्थान पर रखा जहाँ राजकुमारी बैठी थी। उसी की छाया मे बैठकर चिंतन करने लगे। पर पीठ की सनसनाहट बनी रही। वे प्रायः उसे खुजला लेते। (वही, पृ० 34)

4. खोया-खोया-सा ही रहता है। किसी ओर ताकता भी नही। पीठ अवश्य खुजलाता रहता है। कभी-कभी तो समाधि की अवस्था में भी खुजला लेता है। (वही, पृ० 41)

5. वे स्नान कर फिर समाधि पर बैठ गये। बात करते-करते कई बार उन्होंने पीठ खुजलायी। (वही, पृ० 44)

6. मैंने समाधि और निद्रा का भेद स्पष्ट देखा। निद्रा की स्थिति में भी वे पीठ खुजला लेते थे। (वही, पृ० 44)

7. पहले दिन जो फक्कड़ाना लापरवाही थी वह एकदम लुप्त हो गयी। वे जोर-जोर से अपनी पीठ खुजलाने लगे। (वही, पृ० 45)

8. उस रात को ऐसा हुआ कि शुभा को चोट आ गयी थी। मैंने कहा कि वे मेरी पीठ पर बैठ जाएँ। यह तो धर्म ही था। लेकिन शुभा ने कहा कि नहीं, यह ठीक नहीं होगा। ऐसा किसी युवक का सोचना भी पाप है। मैं नहीं माना, मैंने अपनी पीठ उनके सामने कर दी। वे हट गयीं। मेरी पीठ में सनसनाहट अनुभव हुई। थोड़ी देर वैसे ही बैठा रहा। पर शुभा हट गयी।'''मेरी पीठ की सनसनाहट वैसी ही बनी रह गयी। (वही, पृ० 45)

9. मैं दूर तक उन्हें जाते देखता रहा। रह-रह कर वे अपनी पीठ पर हाथ फेर लेते थे। (वही, पृ० 47)

10. पीठ की जो सनसनाहट भूल गयी थी, वह अवसर पाते ही फिर अनुभूत हुई। उन्होंने पीठ पर हाथ फेरा। (वही, पृ० 48)

11. प्रातः कालीन हवा ने उनमें ताजगी भरी। उन्हें लगा की पीठ की सनसनाहट कुछ कम हुई है। (वही, पृ० 49)

12. पर यह जो सनसनाहट है वह पाप के कारण नहीं है, मन के कोने में छिपी हुई किसी दुर्दम अभिलाष-भावना की देन है।'''तू समझ नहीं रहा है कि तेरे मन मे कहीं बहुत गहराई में शुभा को पाने की अभिलाषा है। वही सन-सनाहट के रूप में अनुभूत हो रही है। (वही, पृ० 52)

13. जब तक वह जानती थी कि तरुण तापस आस-पास ही कहीं है, वह उस टूटी गाड़ी की छाया में बैठा पीठ खुजलाया करता है और समाधि लगाये बैठा रहता है तब तक उसे आशा थी कि एक बार उससे मिलेगी।

(वही, पृ० 67)

14. उसकी बात न मानने से ही तो मेरी पीठ में खुजली हो गयी। उस समय रैक्व की पीठ की सनसनाहट बढ़ गयी। बार-बार हाथ पीठ पर जाने लगा।

(वही, पृ० 102)

15. वेधा है। वह बाण तुम्हारी पीठ में लगा है। जितनी बार तुम शुभा का नाम लेते हो उतनी बार तुम्हारा हाथ पीठ के उस आघात को सहलाता है।

(वही, पृ० 141)

16. तुमने कहा था न कि किशोर को अपनी पीठ पर किसी किशोरी को बैठाने की बात सोचना भी पाप है? मैं उस समय नहीं माना। पाप लग गया। सब समय पीठ में खुजली होती है और तुम्हारी याद आने पर तो छाती तक छेद डालती है। माता जी तो कहती थी कि यह पाप नहीं, केवल अभिलाष-भाव है, मैंने तुम्हें किसी-न-किसी प्रकार पाने की अभिलाषा की है इसलिए पीठ में खुजली होती है, पर आश्वलायन कहता है कि यह अभिलाष-भाव भी पाप ही है,.....

क्योंकि तुमने शुभा की स्वीकृति पाये बिना अभिलाषा की है। शुभा ही इसे ठीक कर सकती है। ठीक कर दो न शुभे, बड़ा कष्ट हो रहा है। (वही, पृ० 160)

17. रैक्व कुछ विचलित हुए। कई दिनों से पीठ की खुजली कम हो रही थी, आज कुछ बढ़ गयी है। (वही, पृ० 181-82)

3. संरोधी बनाम मोचक शैली (Arrest V/S Release Style)

हिन्दी भाषा की वाक्य-संरचना में संरोधी (Arrest) और मोचक (Release) दोनों *प्रकार की शैली-संभावना उजागर होती है। दोनों ही* शैलियों में वाक्य-संरचना का आवर्तन होता है, पर संरोधी शैली में जहाँ वाक्य के अन्तर्गत ऐसा वाक्य या वाक्यांश विन्यस्त होता है जो प्रकर्ता (Agent) को क्रियात्मक (Virbal) से जुड़ने की सहज शीघ्र आकांक्षा को बाधित कर देता है वहाँ मोचक शैली में वाक्य से वाक्य लगातार सग्रथित होकर विस्तारित होते चले जाते हैं।

कथाकार द्विवेदी जी की भाषा में संरोधी शैली का जितना अभाव प्राप्त होता है, उतना ही मोचक शैली का आधिक्य देखने को मिलता है। उनके यहाँ बहुत कम प्राप्त होने वाली संरोधी शैली की कथाभाषा का एक उदाहरण द्रष्टव्य है :

कादम्बरी में प्रेम के जिन शारीरिक विकारों का—अनुभावों का, हावों का, अयत्नज अलंकारों का—प्राचुर्य है उनके स्थान में कथा में मानस-विकारों का—लज्जा का, अवहित्था का, जड़िमा का—अधिक प्राचुर्य है।

(बाणभट्ट की आत्मकथा, पृ० 292)

मोचक शैली द्विवेदी जी का वाक्यस्तरीय शैली-चिह्नक है। इसकी प्रभूतता के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं :

1. जब आर्य विरतिवज्र गुरु की वाणी सुन फड़फड़ा कर उठे होंगे, तो वृक्षों ने कुसुम-रेणु छिड़क कर मनोभव देवता के वशीकरण चूर्ण का प्रभाव-विस्तार किया होगा, अशोक-पल्लवों ने मृदु स्पर्श से अपना राग संचरित कर दिया होगा, वन लक्ष्मी ने नवीन राज्य में प्रवेश करने वाले युवराज की भांति उस अपूर्व, मनोहर *किशोर तापस के भालपट्ट पर मधु-बिन्दुओं का अभिषेक किया* होगा और वसंतकाल ने कोकिलों के संगीत से, भ्रमरों के गुंजार से, चम्पक-कलिका के प्रसाद से और सहकार-मंजरी के मांगल्य से उनका अभिनन्दन किया होगा। (वही, पृष्ठ 212)

2. माधवी लता को घेरकर जब मधुकर-श्रेणी गुंजार करती है, तो मैं स्पष्ट ही पुष्पों के भीतर सौरभ के रूप में स्तब्ध उस महादेवता को देख पाता हूँ, नदी जब उन्मत्त वेग से अपने सर्वस्व को दोनों हाथों से लुटाते हुए समुद्र की

ओर दौड़ती रहती है, तो उस महारागमद देवता का मुझे साक्षात्कार होता है, मेघ के श्यामल मेदुर वक्षस्थलों में क्षण-भर के लिए जब विलासवती विद्युत चमक कर छिप जाती है, तो उस समय भी मैं उस व्याकुल वेदना के देवता को देखना नहीं भूलता। (वही, पृ० 158)

3. कहीं ऐसे अनेकानेक लता-मंडप विराज रहे हैं, जिनके तलदेश शुक-पक्षियों के कुतरे हुए दाड़िम फल के रस से आर्द्र हो गये हैं, जिनके भीतर चपल वानरों द्वारा कम्पिल्ल (नारंगी) वृक्ष के फल और पल्लव गिराये गये होते हैं, जो निरंतर पुष्प-रेणु के झड़ते रहने से रेणुमय हो गये होते हैं, और जिनके भीतर पथिक लोग लवंग-पल्लवों की शय्या बिछाकर विश्राम कर लेते हैं। (वही, पृ० 124)

4. मेरा रोष और भी उग्र हो जाता है, जब मैं यह सोचता हूँ कि यह उन देवपुत्र तुवर मिलिन्द की कन्या है, जिनके दोर्दण्ड के प्रताप से रोमकपत्तन के उत्तर के देश काँपते हैं, जिनकी खरतर असि-धारा स्रोतस्विनी में शाक-पार्थिव जैसे नरेश फेन बुदबुद की भांति बह गये, जिनकी प्रतापाग्नि ने उद्दण्ड बाह्लीकों को इस प्रकार तोड़ डाला, जैसे क्रीड़ा-परायण शिशु छत्रक-दंड को तोड़ देते हैं और जिनकी स्फूर्जित-दीप्ति कीर्ति-वह्नि में प्रत्यंत दस्यु स्वयं पतंगायमान हो रहे हैं। (बाणभट्ट की आत्मकथा, पृ० 67)

द्विवेदी जी की कथा-भाषा में प्राप्त इस बोधक शैली की वाह्य संरचना में रूपान्तरण के स्तर पर प्रायः दक्षिण प्रशाखन (Right Hand Branching) प्राप्त होता है।

4. विभेदक प्रोक्ति की शैली :

कथाकार हजारी प्रसाद द्विवेदी की कथाभाषा की एक बड़ी विशेषता कथ्य को विभेदकता के द्वारा स्पष्ट करने वाली उनकी प्रोक्ति-शैली है। यह भाषा अपनी संवेदन-क्षमता में पूरी तरह स्पष्ट है। इसीलिए इसकी अभिव्यक्ति भी पूरी तरह स्वच्छ और सम्प्रेषणीय है। उनके कथा-साहित्य से इसके कुछ उदाहरण नीचे द्रष्टव्य हैं :

1. अवतार—उतरना = मैनसिंह का अवतार हो गया।
   उद्धार—ऊपर की ओर ले जाना = मेरा उद्धार भी हो गया।
   (चारुचन्द्रलेख, पृ० 190)
2. इतिहास कितनी बड़ी शक्ति है। धर्म कितना बड़ा मूढ़ग्राह है।
   (चारुचन्द्रलेख, पृ० 219)
3. धर्म मुक्तिदाता है, धार्मिक संधान बन्धन है। धर्म प्रेरणा है, धार्मिक संघटन गतिरोध है। (वही, पृ० 219)

4. तेरे भीतर जो अभय है वही देवी है।
तेरे भीतर जो भय है वही पिशाची है। (वही, पृष्ठ 45)

5. जानना वस्तुस्थिति के प्रत्यक्षीकरण का नाम है, समझना वस्तुस्थिति की कारण-परम्परा की अवगति का नाम है। (वही, पृ॰ 107)

6. भगवान् जब भक्तों का उद्धार करना चाहते हैं, तो धरती पर उतर आते हैं और मनुष्य के स्तर पर आकर ही भक्त का उद्धार करते हैं, इसी स्थिति को लोग अवतार कहते हैं। उनका मत है कि बिना 'अवतार' (उतर आने की प्रक्रिया) के 'उद्धार' नही होता—'उद्धार' अर्थात् ऊपर उठने की प्रक्रिया।
(पोथा, पृ॰ 170)

7. विवाह धर्म-सम्मत होता है और शास्त्र के नियमों के अनुसार मान्य भी। उद्वाह भी ऐसा ही होता है, परन्तु उद्वाह में पति पत्नी को और पत्नी पति को ऊपर की ओर वहन करती है, अर्थात् परस्पर की आध्यात्मिक चेतना को परिष्कृत करती है।···शास्त्रकारों ने विवाह के लिए पाणिग्रहण का विधान किया है, जबकि उद्वाह में पाणिग्रहण नही, उपोद्ग्रहण होता है।
—(वही, पृ॰ 74-175)

8. किसी तरुणी की ओर आकृष्ट होना 'काम' है। परन्तु उसके लिए अपने-आपको निछावर कर देने की भावना 'प्रेम' कही जाती है। (वही, पृ॰ 174)

ऊपर उद्धरण एक मे 'अवतार' और 'उद्धार' का, उद्धरण दो मे 'इतिहास' और 'धर्म' का, उद्धरण तीन में 'धर्म' और 'धार्मिक संधान'/'धार्मिक संघटन' का, उद्धरण चार में 'देवी' और 'पिशाची' का, उद्धरण पाँच मे 'जानने' और 'समझने' का, उद्धरण छह में 'अवतार' और 'उद्धार' का, उद्धरण सात मे 'विवाह' और 'उद्वाह' का तथा उद्धरण आठ में 'काम' और 'प्रेम' का अन्तर विभेदक प्रोक्ति की शैली में स्पष्ट किया गया है।

5. अन्तर-पाठीय (Inter-Textual) शैली :

कथाकार हजारी प्रसाद द्विवेदी की कथाभाषा प्रोक्ति की अन्तरपाठीय शैली की विशेषता से भी युक्त है। अन्तरपाठीयता किसी सर्जनात्मक कृति में उससे पहले के रचे गये साहित्यिक पाठांशो के चुनींदे तौर पर किये जाने वाले संदर्भित प्रयोग से उद्भूत होती है। इसके मूल में यह धारणा विद्यमान है कि किसी कृति की सफलता-सम्पूर्णता के बीच उसके पूर्ववर्ती लेखन की कतरनों का भी उपयोग होता है। रूपकात्मक भाषा मे कहा जा सकता है कि यह एक चर्मफलक की तरह है। एक पुनः व्यवहृत हो रहे चर्मपत्र (पार्चमेंट) की तरह जिस पर पहले से लिखी सामग्री में से आधी सामग्री मिटा दी गयी होती है और उस जगह पर फिर से नयी सामग्री लिख दी गयी होती है। साहित्यिक कृतियों में

अन्तर-पाठीयता की सात कोटियों तक का उल्लेख प्राप्त होता है : 1. भाव-हरण (प्लेगिअरिजम), 2. अनुकूलन, (एडेप्टेशन), 3. पुनर्कथन (रिटेलिंग्ज) 4. विदूपिका (पैरोडीज), 5. प्रत्यालोचन (इसमें मूल का अर्थायन होता है और परिप्र पूर्व रचना या पूर्व संदर्भ को व्याख्यायित करता है), 6. संशोधन (इसमें तथता-वितथता की या कला-मूल्यों की दृष्टि क्रियाशील होती है), और 7. विस्तारण 1. इनमें पहले तीन प्रकारों का उपयोग किसी भी रचना में उसके पूरेपन में होता है, किन्तु बाद के चारों प्रकार किसी रचना में आंशिक और पूर्ण दोनों ही रूपों में प्रयुक्त हो सकते हैं।

कथाकार हजारी प्रसाद द्विवेदी की कथाभाषा में अन्तर-पाठीयता के तीन प्रकार—भावहरण, अनूकूलन और पुनर्कथन प्राप्त होते हैं।

क. भावहरण :

पुनर्नवा में चन्द्रमौलि देवरात से कहता है—

मैंने भी कई बार रम्य वस्तुओं को देखकर, मधुर शब्दों को सुनकर, अकारण उत्सुकता अनुभव की है। जाने क्यों हृदय मसोस उठता है, जैसे कोई पुराना सम्बन्ध हो, पर याद न आ रहा हो।' (पुनर्नवा, 131)

यहाँ चन्द्रमौलि के द्वारा देवरात को कहे जाने वाले इस पाठ की शैली कालिदास के 'रम्याणि वीक्ष्य'—वाली प्रसिद्ध श्लोक-प्रोक्ति की भावहरणमूलक अन्तरपाठीय शैली के रूप में विन्यस्त होकर अपने अभीष्ट संदर्भ को सार्थकता प्रदान कर रही है।

ख. अनुकूलन :

'मंद-मंद भाव से आस्फाल्यमान आलिंग्यक नाम वाद्य से, मधुर शिंजनकारी वेणु-निनाद से, झनझनाती हुई झल्लरों की ध्वनि, कलकास्य और कोशी के मनोरम-क्वणन से, साथ-साथ दिये जाने वाले उत्ताल ताल से, निरन्तर ताड़न पाते हुए तंत्री पटह की गुंजार से और मृदु-मनोहर झंकार से झंकृत अलाबुवीणा की मनोरम ध्वनि से वे नृत्य जितने ही आकर्षक थे, उतने ही अश्लील रसिक पदों के उग्र शृंगार के कारण, विकर्षक जान पड़ते थे।—नृत्य के नाना कारणों में जब वे अपनी बाहु-लता का आकाश मे उत्क्षेप करती थी, तो ऐसा लगता था कि उनके समुत्सुक वलय उछलकर सूर्यमंडल को बंदी बना लेंगे। उनकी कनक-मेखला की किंकिणियों से उछली हुई कुरंटक-माला उनके मध्यदेश को घेरती हुई ऐसी शोभित हो रही थी, मानो रागाग्नि ही प्रदीप्त होकर उन्हें वलयित किये है।—वे मद को भी मदमत्त बना रही थी, राग को भी रंग रही थी, आनन्द को भी आनन्दित कर रही थी, नृत्य को भी नचा रही थी और उत्सव को भी उत्सुक कर रही थी। (बाणभट्ट की आत्मकथा, पृ० 92-93)

'बाणभट्ट की आत्मकथा' की उपर्युक्त कथाभाषा अनुकूलन कोटि की अन्तर-पाठीय शैली प्रस्तुत करती है। यह सारा अंश मूलतः बाण के 'हर्षचरित' के चतुर्थ उच्छ्वास के प्रोक्ति-विशेष का अनुकूलित रूपान्तरण ही है, जो द्विवेदी जी द्वारा सृजित नये पाठ में साभिप्राय रूप में नियोजित होकर सार्थकता प्राप्त कर गया है।

(ग) पुनर्कथन

मैना ही है लावण्य की प्रतलिका, शोभा की विश्रामभूमि, कांति की मूर्ति, आलोक की आकल्पित शिखा। अहा 'किमिव हि मधुराणां मंडनं नाकृतीनाम्'

(चारु चन्द्रलेख,)

यहाँ मैना का सौन्दर्य-बिम्ब उपस्थित करते हुए कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुन्तल' के प्रसिद्ध श्लोक की अंतिम पंक्ति को पुनर्कथन मूलक अन्तर-पाठीय शैली के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जिससे अभिव्यक्ति को सशक्त समर्थन प्राप्त हो गया है।

6. उद्घाटक-निर्वचनात्मक शैली :

कथाकार द्विवेदी की भाषा की एक शैलीगत विशेषता शब्दों में छिपे मर्म को निर्वचनात्मक व्याख्या के द्वारा उद्घाटित करने की है। वे कठिन-से-कठिन शब्दों का भी जब अपनी कथाभाषा के संदर्भ में औचित्यपूर्ण प्रयोग करते हैं, तब विविध संभाव्य प्रकारों से उसकी ऐसी सुस्पष्ट व्याख्या कर देते हैं; जिससे उसकी सम्प्रेषणीयता निखर उठती है और पाठक के मन में उसका प्रत्यय स्पष्ट तौर पर प्रत्यक्ष हो उठता है। उनकी कथा-भाषा में प्राप्त ऐसी शैली के निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य हैं :

(क) जो बात मेरी समझ में नहीं आयी, वह यह है कि 'छलित' नृत्य में नर्तक या नर्तकी को उन भावों का स्वयं अनुभव-सा करना चाहिए जो अभिनीत हो रहे हैं। इसी को भावानुप्रवेश कहते हैं। (पुनर्नवा, पृष्ठ 13)

(ख) राजा ने मंजुला से कहा, 'हाँ सुन्दरी, कुछ प्रत्यग्र-मनोहर सुनाओ।' 'प्रत्यग्र-मनोहर' अर्थात् जो अपनी ताजगी से मन हर लेता हो।

(पुनर्नवा, पृष्ठ 16)

(ग) कल्पवल्ली, जिसका अर्थ नहीं होता, भाव नहीं होता, मतलब नहीं होता, होना है केवल छन्द, केवल लय, केवल गति – विशुद्ध इच्छा !···नृत्य में जो ताडव है, वही चित्र में कल्पवल्ली और आचार में मांगल्य आशीर्वाद है।

(पुनर्नवा, पृष्ठ 65)

(घ) बलराम को बुल्ला और कहा जाता है। बुल्ला अर्थात् विपुल, बड़ा और लहुरा का अर्थ है छोटा। (वही, पृष्ठ 65)

(ङ) राजस्तुति का मतलब तुम नहीं जानते। वह केवल शब्द होता है, अर्थ नहीं। अर्थ मन में होता है और शब्द जबान पर। लेकिन राजस्तुति एक ऐसा विषय है जिसका अर्थ कहीं नहीं रहता। वह मूर्खों द्वारा मूर्खों का किया हुआ, मूर्खतापूर्ण कथन-मात्र है। (वही, पृष्ठ 100)

(च) महाराज समुद्रगुप्त 'उत्खात-प्रतिरोपण' की नीति में विश्वास करते थे। जिसे उखाड़ा उसी को फिर से रोप दिया। (वही, पृष्ठ 108)

(छ) मेरे हृदय के साथ जिसका हृदय एकतान हो गया रहेगा, वही मेरी बात पूरी तरह समझ पाएगा। ऐसे समान हृदय वाले कम ही होते हैं, बहुत कम। मैं ऐसे लोगों को ही सहृदय कहता हूँ। (वही, पृष्ठ 114)

(ज) महाकाल केवल गति मात्र है, निरन्तर धावमान् गति, एक क्षण के लिए भी न रुकने वाला प्रचंड वेग। (वही, पृष्ठ 126)

(झ) 'क्रोश' चिल्लाकर आवाज देने को कहते थे; जितनी दूर तक आवाज स्पष्ट रूप से पहुँच जाती थी उतनी दूरी को भी 'क्रोश' ही कहा जाता था। प्राकृत जन में यह शब्द घिस-घिस कर 'कोस' बन गया। (वही, पृष्ठ 155)

क्रोश-स्थान पर प्रहरी नियुक्त रहते थे, जो साधारणतः नागरिकों को समय बताने के लिए घंटा बजाया करते थे। घंटे पर प्रहार करने के कारण ही ये लोग 'प्रहरी' कहे जाते थे। (वही, पृष्ठ 155)

(ट) गणराज्य जब थे, उन दिनों गणिका सारे गण की चुनी हुई रानी होती थी, परन्तु तब भी वह गण की साझे की सम्पत्ति मानी जाती थी, अब तो वह क्रय-योग्य दासी बन गई है। (वही, पृष्ठ 200)

(ठ) 'होत्र' ही प्राकृत में 'घोठ' बन गया और आगे चलकर 'घोड़ा' कहलाया। (वही, पृष्ठ 236)

(ड) इसीलिए मैंने उसे अविमृश्यकारी—बिना सोचे-विचारे काम करने वाला कहा है। (वही, पृष्ठ 278)

(ढ) चन्द्रमौलि महादेव ने तपोनिरता पार्वती को सम्बोधित करके कहा था, 'हे अवनतांगि, आज से मैं तुम्हारी तपस्या से खरीदा हुआ दास बना 'अवनतांगिदासः।' (वही, पृष्ठ 308)

(ण) आप बिना परीक्षा किये ही कोई बात मान लेते हैं? विचित्र हैं। यह तो भेषता हुई, यही शूद्रधर्म है। (पोथा, पृष्ठ 47)

(त) जो जमीन जोती जाती है उसे कृष्ट भूमि कहते हैं। पर तपस्वी लोग बिना जोती जमीन में जो पौधे अपने-आप उगते हैं और फिर स्वयं पककर झड़ जाते हैं, ऐसे दानों से ही काम चलाते हैं। इसी को अकृष्टपच्यअन्न कहते हैं। (वही, पृष्ठ 51)

(थ) प्रजा शब्द का अर्थ ही संतान है। राजा के लिए प्रजा की सारी बेटियाँ उसकी अपनी बेटी हैं। (वही, पृष्ठ 70)

(द) भरत मुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में भारती वृत्ति का प्रवर्तन किया था, जिसमें शब्दों के द्वारा ही भाव प्रकट करने पर जोर दिया जाता है। (वही, पृष्ठ 104)

(ध) कोहलीय लोग मानते हैं कि समाज की रक्षा के लिए यह आवश्यक है कि स्त्रियों की भूमिका मे स्त्रियाँ न उत्तारी जाएँ, बालकों से ही काम चला लिया जाए। इन बालको को वे लोग बहुत शिक्षा देते हैं। उन्हें "भ्रं कुश' कहा जाता है। ...इन लोगों को भ्रुओं का अभिनय बड़े परिश्रम से सीखना पड़ता है। इसीलिए उनको 'भ्रकुश' कहते है। (वही, पृष्ठ 105)

(न) विवाह मे जो आपसी बातचीत होती है वही हिंकार है; सबको सूचित करना प्रस्ताव है, पति-पत्नी के साथ शयन उद्गीय है, अलग-अलग शयन प्रतिहार है, प्रेमपूर्वक जीवन बिताना निधन है (निधन अर्थात् व्रत-समाप्ति) इस प्रकार स्त्री और पुरुष के प्रेमी-युगल के रूप में वामदेव्य साम पिरोया हुआ है। यही पंचविध वामदेव्य साम है। (पोथा, पृष्ठ 142)

(प) 'बख्शी' असल मे बौद्धों के 'भिक्षु' शब्द का मंगोल रूपान्तर है। 'उड्गुर' भी सम्भवतः भारतीय 'गुरु' का रूपान्तर है। ये लोग गृहस्थ होते हैं, पढे-लिखे और अच्छे विचारक होते हैं, पर डरपोक होते हैं। (चारुचन्द्रलेख, पृष्ठ 36)

(फ) संस्कृत का 'कार्तवीर्य' मालवी अपभ्रंश में कोमलीकरण की प्रवृत्ति के कारण प्राकृत में 'गर्दभिज्ज' से आगे बढता हुआ 'गर्दभिल्ल' बन गया। फिर यह शब्द संस्कृत में आ गया और हिंदू पुराणो तक में 'कार्तवीर्य' वंश 'गर्दभिल्ल' वंश के नाम से ख्यात हुआ। एक बार भाषा की रहस्यमयी देवी ने इसको यह रूप दिया नहीं कि इसका सम्बन्ध गधे से जुड़ते देर न लगी। गधैया-ताल और कुछ नही, 'गर्दभिल्लो' का बनाया हुआ ताल है और गधैया सिक्के 'गर्दभिल्लों' की चलाई हुई मुद्राएँ हैं। (वही, पृष्ठ 76)

(ब) 'महालक्ष्मी' तेरह वर्ष की कुमारी की तांत्रिक संज्ञा है। (वही, पृष्ठ 104)

(भ) समुद्र-मंथन से जब विष निकला तो एकमात्र केवल शिव ही अक्षोभ्य बने रहे। इसीलिए महादेव का नाम अक्षोभ्य है।

इस प्रकार उनकी उद्घाटक-निर्वचनात्मकशैली में भावानुप्रवेश, प्रत्यप्र-मनोहर, कल्पवल्ली, बुल्लावीर, राजस्तुति, उत्खात-प्रतिरोपण, महाकाल, क्रोश, प्रहरी, गणिका, होत्र, अविमृश्यकारी अवनतांगिदास, नेयता, शूद्रधर्म, अकृष्टपच्य अन्न, प्रजा, भारती, वृत्ति, भ्रं कुश, हिंकार, प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार, निधन,

वामदेव्य साम, वल्शी, उड्गुर, गर्भया ताल, गर्भया सिक्के, महालक्ष्मी, अक्षोभ्य जैसे अनेक शब्दों की व्युत्पत्ति और व्याख्या प्रकाशित हो उठती है, जिससे पाठक इन्हें सहज रूप में ग्रहण करता चलता है। एक ओर यह शैली ऐसे शब्दों की प्रयोग-पृष्ठभूमि के साथ न्याय करती संदर्भ को अच्छी तरह सम्प्रेष्य बना देती है, दूसरी ओर पाठकों का ज्ञान-विस्तार कर देती है। इस दृष्टि से यह द्विवेदी जी की कथा-भाषा की महत्त्वपूर्ण विशेषता के रूप में उपस्थित हो पाती है।

7. भाषिक सजगता की शैली :

कथाकार द्विवेदी अपनी कथा-भाषा मे प्रायः विभिन्न स्तरों पर विभिन्न रूपों में भाषिक सजगता की चेतना से अनुप्राणित दीखते हैं। भाषा-प्रयोग और भाषा-पर्यवेक्षण-विषयक यह सजगता उनके कई पात्रों की व्यक्तित्व-विशेषता के रूप में सामने आती है। कहना न होगा कि उनकी यह शैली कथा-भाषा के क्षेत्र में इस दृष्टि से भाषिक सजगता का एक और आयाम उद्घाटित कर देती है।

नीचे इस शैली के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं :

(क) विद्याधर भट्ट की भाषिक सजगता :

आवश्यकता से अधिक वे एक शब्द भी नहीं बोलते थे। एक-एक शब्द का उच्चारण वे इस प्रकार करते थे मानो तौल-तौलकर देख रहे हों। धीर शर्मा की भाँति श्लोकों की झड़ी लगा देना वे बिलकुल पसन्द नहीं करते थे। यदि आवश्यकता न हो, वे मौन रहना ही पसन्द करते थे। उनके मुख से एक शब्द भी तभी निकलता था जब उसके बिना काम नहीं चल सकता था।

(चारुचन्द्रलेख, पृष्ठ 31)

(ख) तपस्वी की भाषिक सजगता :

1. भाषा, बड़ी रहस्यमयी देवी है। यह नयी सृष्टि करती रहती है। इतिहास-विधाता के किये-कराये पर वह ऐसा पर्दा डाल देती है कि कभी-कभी दुनिया ही बदल जाती है। महामाया का सबसे परिष्कृत रूप भाषा है, सत्त्वोन्मुखी होकर वह प्रकाश देती है, किन्तु तमोगुण की ओर उन्मुख होने पर वह केवल मोह की सृष्टि करती है। केवल आवरण उत्पन्न करती है, केवल कुहेलिका का जाल ताना करती है। (वही, पृष्ठ 76)

2. कालिदास के श्लोक में नील लोहित का एक अन्य अर्थ भी है। किन्तु शब्द तो परावाक् का मूर्त रूप है महाराज, यह अपनी सृष्टि तो करता ही रहता है। (वही, पृष्ठ 78)

(ग) रानी की भाषिक सजगता :

सबसे विचित्र बात यह थी कि वे अपने को अन्य पुरुष में संबोधित करने लगी। उनके मुँह से 'मैं' शब्द का प्रयोग विरल हो गया। (वही, पृष्ठ 80)

(घ) वाचक-उत्तारक की भाषिक सजगता :

अपने को प्रथम पुरुष में कहना कोई सिद्धि है या आवेश ? हाय, मैंने क्या अपने ही पैर पर कुल्हाड़ी मार दी है ? (वही, पृष्ठ 84)

(ङ) चंद्रलेखा के लिए भाषिक सजगता :

वह वाणी जितनी ही स्पष्ट थी उतनी ही तीव्र भी । वह हृदय को चीरकर सीधे प्रवेश करना चाहती थी । उसमें कहीं भी स्खलन नहीं था, जड़िमा नहीं थी, दुविधा नहीं थी । (वही, पृष्ठ 114)

(च) नाटी माता-विषयक उत्तारक की भाषिक सजगता :

उनका सारा शरीर छन्दों से बना जान पड़ता था । मानो अनुप्रास से कसकर संगीत से ढालकर, यमकों से सँवाकर, उपमानों से निखारकर, तालों से बाँधकर, यतियों से शासित कर इस मनोरम, आकर्षक शरीर को स्वयं छंद देवता ने बनाया हो । (वही, पृष्ठ 129)

(छ) नाटी माता की भाषिक सजगता :

उनके शब्द नाप-तोलकर उच्चरित हुए थे । प्रत्येक स्वर, प्रत्येक व्यंजन उचित मात्रा में, उचित स्वराघात के साथ ऐसा सधा हुआ निकल रहा था कि मैं अवाक् भाव से केवल सुनता जा रहा था । क्या शिक्षा ने ही रूप धारण किया है, वाग्देवी ने ही प्रत्यक्ष विग्रह धारण किया है, व्याकरण विद्या ही अवतरित हुई है ? (वही, पृष्ठ 129)

(ज) भर्तृहरि की सजगता :

1. जो कुछ देख रही हो शुभे ! वह वाक् मात्र है । संसार में जो कुछ दिखाई दे रहा है वह पदार्थ है, कुछ निश्चित पदों का अर्थ-मात्र है । मनुष्य पदार्थ के जाल में फँसकर भी वास्तविक सच्चाई को नहीं जान पाता । 'वाक्यपदीय' में मैंने वाक्‌देवी के तीन उपरले रूपों को ही माना था । मैंने कहा था कि वृत्तियाँ तीन ही हैं —पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी, क्योंकि पदार्थ जगत इन्हीं से बंधा है ।

2. यह जो परिदृश्यमान, अनुभूयमान, उपकल्प्यमान जगत है यह भाषा का खेल है । गणित में, ज्योतिष में, चिकित्सा में, तर्कशास्त्र में, मंत्रशास्त्र में, तंत्र में जो-कुछ दीख रहा है वह माया है । तुम जितना भाषा के द्वारा सोच सकती हो वह सब माया है, इन्द्रजाल है, मृग-मरीचिका है ।

(वही, पृष्ठ 147)

(झ) उत्तारक की भाषिक सजगता :

1. लौटना कठिन है । लौट नहीं सकते । 'लौटना' क्रिया ही गलत है । कोई

नही लौटता, कभी नहीं लौटा जाता।'लौटना' निरर्थक पद है। कौन लौटता है ? कहां लौटता है ? (वही, पृष्ठ 184-85)

2. केवल एक ही शब्द कानों में गूंजता रहा—'नही'। क्या नही ? नही अर्थात् बाहर नही जा सकते। आज्ञा का उल्लघन नही कर सकते, सफाई देने का प्रयत्न नही कर सकते। सब नही। अर्थात् मैं बन्दी हूँ। बन्दी हूँ ? किस बंधन मे हूँ ? कुछ नही, केवल मैं बन्दी हूँ, मैना को अधिकार है यह मेरी सारी इच्छाओ को 'नही' के चाबुक से मारकर जिधर चाहे उधर मोड़े,। 'नही' का और दूसरा अर्थ क्या हो सकता है ? 'नही' कितना मनोहर बंधन है। -(वही, पृष्ठ 225)

(ञ) अमोघवज्र की भाषिक सजगता :

1. अमोघवज्र की वाणी बड़ी ही मधुर थी। उनके वाक्य का प्रत्येक शब्द इस प्रकार उच्चरित होता था मानो पहले से ही उसकी अर्थ-व्यंजकता तौल-तौलकर संभाल ली गयी है। कोई भी दो शब्द टकराकर या छिटककर नही निकलते थे। प्रत्येक शब्द अपनी मर्यादा के भीतर ही रहता था। (वही, पृष्ठ 238-39)

2. वे प्रत्येक शब्द को तौल-तौलकर, अर्थ-सीमा की जाँच करके बोल रहे थे। (वही, पृष्ठ 240)

3. अमोघवज्र यथार्थवादी की भांति बोलते हैं, पर भाषा में रहस्य का पुट बना हुआ है। बराबर उनकी बतायी बातें सोचता आया हूँ। हतबुद्धि होकर देखता हूँ कि वे जो कहते हैं उसके साथ जैसा कहते हैं का कोई सामंजस्य नही है। वे झकझोर देते हैं, आन्दोलित करते हैं, विचलित करते हैं, पर आगे बढ़ने नही देते। (वही, पृष्ठ 243)

(ट) बोधा की भाषिक सजगता :

बोधा से कुछ जान लेना कठिन है। दिन भर साथ रहे, पर बोले एकदम नही। कुछ बोलते हैं तो तौलकर बोलते है। (वही, पृष्ठ 254)

(ठ) किशोर कवि की भाषिक सजगता :

कवि भूल गया था कि वह किसी प्राकृत पुरुष की स्तुति कर रहा है और मैं भूल गया था कि कविता मेरी प्रशस्ति के लिए सुनाई जा रही है। यमक, अनुप्रास और पद-संघटना का महत्त्व जैसा मैंने आज अनुभव किया, वैसा इसके पहले कभी अनुभव नही कर सका था। उसके छन्द भाषा के पंख जान पड़ते, जिनके बल पर वह अर्थ के बन्धन से बहुत ऊपर उड़ान ले रही थी। समान उच्चारण वाले शब्द एक के बाद एक इस प्रकार उतरते जा रहे थे जैसे शिक्षित मल्लों की सेना वेग से पदताल मिलाती हुई किसी निश्चित लक्ष्य की ओर बढ़ती जा रही

हो। रह-रह कर उसके स्वर में कंपन आता था और ध्वनियों की लकीर वल खा उठती थी। (वही, पृष्ठ 270)

(ड) वाचक की भाषा-सजगता .

1. भाषा सीखते-सीखते सीखी जाती है। जिस भाषा का अर्थ समझ में नही आया उसका अर्थ है ही नहीं, यह कैसे कहा जा सकता है !
(वही, पृष्ठ-278)

2. सत्य वाणी के अर्थ का नाम नही है, उसके पीछे रहने वाले प्राण-वेग और आन्तरिक सच्चाई का नाम है। किसी भी वाणी के किसी भी अर्थ को ये दो बातें सत्य बना देती हैं। (वही, पृष्ठ-295)

3. सब इच्छाएं क्रिया में रूपान्तरित नहीं होना चाहतीं। मुझे उस दिन यह विचित्र रहस्य ज्ञात हुआ कि इच्छा के भी इच्छा और अनिच्छा होती है।
(वही, पृष्ठ-295)

(ढ) जल्हण की भाषा-सजगता :

कोई भी भाषा निरर्थक नही होती महाराज ! जो समझ में न आये, उसे निरर्थक नहीं मानना चाहिए। जो लोग जान चुके हैं उन पर विश्वास करके ही तो हम भाषा का अर्थ जानते हैं। (वही, पृष्ठ-279)

(ण) अघोरनाथ की भाषा-सजगता :

कथा में ऐसे विचार मिलते हैं, जो आधुनिक युग की देन है, पर सर्वत्र उन पर पुराने ढग की भाषा का आवरण हो। (वही, पृष्ठ-313)

(त) देवरात की भाषा-सजगता :

1. मंजुला को सन्देह नहीं रहा कि इन बच्चों को गुरु ने ही ऐसी शिष्ट भाषा बोलना सिखाया है। (पुनर्नवा, पृष्ठ-21)

2. शब्द की एक ही शक्ति होती है, वक्ता का तात्पर्य। शब्द का अन्तिम और निश्चित अर्थ वही होता है जो कहने वाले के मन में होता है। और किसी शक्ति को मानना आवश्यक नहीं है। पर आचार्य देवरात ने समझाना चाहा था कि ऐसी बात नही है। शब्द का अर्थ केवल वक्ता की इच्छा का विषय नही है, श्रोता और संदर्भ भी उसमें कुछ-न-कुछ जोड़ते-घटाते रहते हैं। (पुनर्नवा, पृष्ठ-115)

(थ) मैना की भाषा-सजगता :

आर्यक को हंसी आ गयी। बोला, अभी तो तूने कहा मैना, छोड़ दो। अब कहती हो, मत छोड़ना।

मैना को भी चुहल सूझ गयी। उसने कहा, 'व्याकरण भी भूल गये। 'छोड़ दो' वर्तमान काल है और 'मत छोड़ना' भविष्यत् काल।' (वही, पृष्ठ-51)

(द) शार्विलक की भाषा-सजगता :

'सुन तो रहा हूँ। लेकिन तुझे यह गाँठ बाँध लेनी चाहिए कि कुल वधुओं के बारे में कभी ऐसी हलकी भाषा का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

(वही, पृष्ठ-83)

(ध) चन्द्रमौलि की भाषा-सजगता :

चन्द्रमौलि ने अनुनय के साथ कहा, 'बुरा मान गये आर्य? मैं अपौरुषेय माने जाने वाले वाक्यों की अवमानना करने के उद्देश्य से ऐसा नहीं कर रहा हूँ। मुझे ऐसा लगता है कि वाक्य-मात्र सीमा मे बंधे हैं; उनका आदि भी होता है और अन्त भी होता है पर सीमा को मैं मामूली गौरव नहीं देता।

(न) चन्द्रा और मृणाल की भाषा-सजगता :

'''मैंने कभी भी आर्यक को आदरार्थक सर्वनाम 'आप' से सम्बोधित नहीं किया। मृणाल जब आदरार्थक सर्वनामों से उसकी चर्चा करती है तो बड़ा मीठा लगता है। वह आर्यक का नाम कभी नहीं लेती। सभी स्त्रियों की यही परम्परा है। जब वह कहती है 'वे' और 'उनका' तो उसके मुह से निकले ये शब्द छोटे बच्चों की तोतली बोली के समान बड़े प्यारे लगते हैं। छोटे बच्चे व्याकरण और वाक्य-रचना की बारीकियां नहीं जानते हैं, केवल अनुकरण करने का प्रयत्न करते हैं, परन्तु कितने मीठे लगते हैं। वे अनबुझे शब्द! (वही, पृष्ठ-312)

(प) बाबा की भाषा-सजगता :

चरणों मे देने का मतलब है अपने को, अपने अहकार को, नीचे की ओर झुकाना। सिर पर पटक देने से तो अहकार ऊर्ध्वगामी होगा। माँ भावार्थ को समझने का प्रयत्न कर, अक्षरार्थ में मत उलझ।

(फ) आचार्य सुगतभद्र की भाषा-सजगता :

वस्तुस्थिति यह है कि आयुष्मान्, कि शून्यता या निरालम्ब या निर्वाण एक अनुभवगम्य वस्तु है। भाषा की कमजोरी है कि वह उस पदार्थ को कह नहीं सकती। यह तो केवल प्रज्ञप्ति के लिए एक कामचलाऊ शब्द-व्यवहार किया गया है। तू उसके शब्दार्थ पर मत जा। मनन कर।

(बाणभट्ट की आत्मकथा, पृष्ठ-21)

(ब) भट्टिनी की भाषा-सजगता :

1. इतना कह लेने के बाद भट्टिनी ने अचानक अपने को रोक लिया, मानो

जितना कहना चाहिए, उससे अधिक कह गयी हैं, मानो जहाँ रुक जाना उचित था उससे बहुत दूर आगे बढ़ गयी हो । (वही, पृष्ठ-110)

2. मैं अज्ञ हूं माता ! किस शब्द का कैसा प्रयोग होना चाहिए, यह मुझे नहीं मालूम ! (वही, पृष्ठ-137)

(भ) महाराजाधिराज की भाषा-सजगता :

साधु, महाराज ! तुमने प्रश्न को द्विधाहीन भाषा में उपस्थित किया है । (वही, पृष्ठ-166-167)

(म) कृष्णवर्धन की भाषा-सजगता :

सारा पत्र कूटनीति का विचित्र जाल है । किसी को भी छोड़ा नहीं गया है, प्रत्येक को फँसाने का प्रयत्न है और फिर भी नपी-तुली भाषा मे । (वही, पृष्ठ,-251)

(य) बाण की भाषा-सजगता :

मैंने कहा भट्टिनी ने बहुत सी बातें कही हैं, कुछ अर्थ मैंने समझा है, कुछ का अर्थ नहीं समझा है, कुछ का समझने का प्रयत्न कर रहा हूँ । (वही, पृष्ठ-268)

(र) जुआड़ी की प्रतिभाषा (Anti-Language) की सजगता :

'ऐसा लगता था कि उसे किसी ने बुरी तरह पीटा है । उसके मुह से मद्य की गंध भी आ रही थी। मैंने डांट कर पूछा, 'कौन है ?' उसने कराहते हुए कहा, त्रेता ने मार डाला, पावर ने चूस लिया, हाय ! मेरी समझ मे नही आया कि वह कह क्या रहा है । डपटकर पूछा, अरे क्या बक रहा है ? उसी प्रकार आधी जड़ता, आधी चेतना में लड़खड़ाता हुआ वह कहने लगा, 'नर्दित ने चूस लिया, कट्टा ने मूस लिया, हाय ! अब मेरी समझ में आया । निश्चय ही जुआड़ी है । त्रेता (तीया), पावर (दूआ) नर्दित (नक्का) और कट्टा (पूरा)—इन दाँवों का नाम ले रहा है ।' (पुनर्नवा, पृष्ठ-91-92)

(ल) जाबाला और रैक्व के प्रथम संवाद की भाषिक सजगता :

'मैं राजा की कन्या हूँ, कुछ समझ रहे हो ?'

ऋषिकुमार भौंचक्के खड़े थे । असमंजस मे पड़े हुए बोले, 'कन्या' शब्द से मैं परिचित हूँ, लेकिन वह होता क्या है, यह मैं नहीं जानता ।' अब राजकुमारी को कुतूहल हुआ, 'अच्छा ऋषिकुमार, तुमने व्याकरण पढा है ?' ऋषिकुमार ने गर्व से कहा, 'अवश्य पढा है ।' 'तो फिर जानते हो, व्याकरण मे पुल्लिंग और स्त्रीलिंग होता है ?'

'जानता हूँ।'

'तुम पुल्लिग हो, मैं स्त्रीलिंग हूँ। आगे मुझे सम्बोधित करना तो वह व्याकरण सम्मत स्त्रीलिंग के अनुसार होना चाहिए। मुझे क्या सम्बोधन करोगे, बोलो तो।'

ऋषिकुमार अभिभूत हतप्रभ की भाँति उसे देखते रहे। बोले, 'मैं नही जानता। इतना अवश्य जानता हूँ कि स्त्रीलिंग शब्द भाषा में व्यवहार किये जाते हैं। पद का मुझे ज्ञान है, पदार्थ का मुझे ठीक ज्ञान नही है। मैं जानता हूँ कि 'कन्या' शब्द स्त्रीलिंग है, इसलिए मैं 'कन्या' शब्द से आपको सम्बोधित कर सकता हूँ। मुझे यह भी मालूम है कि 'आर्ये', 'भवति' 'शुभे', इत्यादि शब्द स्त्रीलिंग के सम्बोधन हैं। परन्तु मुझे ठीक नहीं मालूम कि इन पदो के अर्थ-पदार्थ क्या हैं।' (अनामदास का पोथा, पृष्ठ-31)

(ब) जाबाला की भाषिक सजगता :

1. पर तुम जिसे वायु कहते हो वह क्या सचमुच वायु है? वह वस्तुत: एक प्रत्यय है, प्रतीति है। जानते हो ऋषिकुमार' प्रत्यय आत्मा का धर्म है। पद और पदार्थ को यह प्रत्यय ही जोड़ता है। (वही, पृष्ठ-33)
2. आज फिर मेघ उमड़-घुमड़ कर बरस रहे हैं। जाबाला को ऋग्वेद की वर्षा-स्तुति याद आयी। एक अज्ञात ऋषि ने पर्जन्य की स्तुति की थी। आज वह प्रत्यक्ष है। जाबाला उस स्तुति के एक-एक पद मे नया अर्थ पा पा रही है बिल्कुल नया अर्थ। ऋषि ने कभी गाया था :—

'पर्जन्य देवता गर्जनकारी वृषभ के समान आकाश में उमड़ रहे हैं। पृथ्वी सचमुच नत है, उसके अंग-अंग मे रस भीन रहा है। वनराजि रोमांच की भांति उद्गत है। वे सीच रहे हैं। पृथ्वी कृतार्थ है।' अचानक पर्जन्य देवता जाबाला की दृष्टि से ओझल हो जाते हैं, उपस्थित होते हैं ऋषिकुमार रैक्व। पृथ्वी विलुप्त हो जाती है, आविर्भूत होती है स्वयं जाबाल की अपनी मूर्ति। मेघ बरस रहे हैं। धरती भीग रही है। उसकी नस-नस मे प्राणों का उत्साह मुखरित हो रहा है। (वही, पृष्ठ-130)

(श) रैक्व की भाषिक सजगता :

1. अब तक मुझे ज्ञान नही था कि पद और पदार्थ को जोड़ने वाला एक पदार्थ है, प्रत्यय। वह आत्मा का धर्म है।...देखिए मेरे गुरु का नाम 'शुभा' है। यह पदमात्र है। शुभा पदार्थ बिल्कुल भिन्न है। उस पदार्थ जैसी सुन्दर चीज मैंने आज तक नही देखी। इस समय वह पदार्थ मेरे सामने नही है, पर पद आज भी मेरे साथ है। जब मैं कहता हूँ 'शुभा', तो वह पदार्थ अनायास मेरे मन मे आ जाता है। आपके मन मे नही आएगा, क्योकि आप उसे नही जानते हैं, वह पदार्थ मेरे मन में क्यो आ जाता है? प्रत्यय के बल से। अगर

जितना कहना चाहिए, उससे अधिक कह गयी हैं, उचित या उससे बहुत दूर आगे बढ़ गयी हो।

2. मैं अज्ञ हूं माता! किस शब्द का कैसा प्रयोग होना मालूम!

(भ) महाराजाधिराज की भाषा-सजगता :

साधु, महाराज! तुमने प्रश्न को क्रियाहीन भाषा मे

(म) कृष्णवर्धन की भाषा-सजगता :

सारा पत्र कूटनीति का विचित्र जाल है। सिर्फ है, प्रत्येक को फँसाने का प्रयत्न है और फिर भी नपी

(य) बाण की भाषा-सजगता :

मैंने कहा भट्टिनी ने बहुत सी बातें कही हैं, का अर्थ नहीं समझा है, कुछ का समझने का प्रयत्न

(र) जुआड़ी की प्रतिभाषा (Anti-Language)

'ऐसा लगता था कि उसे किसी ने बुरी तरह की गंध भी आ रही थी। मैंने डांट कर पूछा, ' कहा, त्रेता ने मार डाला, पावर ने चूस लिया, हा कि वह कह क्या रहा है। झपटकर पूछा, अरे क्या आधी जड़ता, आधी चेतना मे लड़खड़ाता हुआ वह लिया, कट्टा ने मूस लिया, हाय! अब मेरी स जुआड़ी है। त्रेता (तीया), पावर (दूआ) नदित (नक इन दांवों का नाम ले रहा है।'

(ल) जाबाला और रैक्व के प्रथम संवाद की भाषिक स

'मैं राजा की कन्या हूँ, कुछ समझ रहे हो?'

ऋषिकुमार भौंचक्के खड़े थे। असमंजस मे पड़े हु से मैं परिचित हूँ, लेकिन वह होता क्या है, यह मैं नहीं ज कुमारी को कुतूहल हुआ, 'अच्छा ऋषिकुमार, तुमने व्याकर कुमार ने गर्व से कहा, 'अवश्य पढ़ा है।' 'तो फिर जान पुल्लिंग और स्त्रीलिंग होता है?'

सजगता अन्य किसी कथाकार की भाषा में देखने को नहीं मिलती है। अज्ञेय के यहाँ यह ज्यादा पचित और सूक्ष्म है। वहाँ अर्थ की व्यंजना पर बल अधिक है। पर द्विवेदी जी के यहाँ एक ओर यह सजगता भाषा की प्रकाशमयता एवं मोहमिहिकामयता की, उसकी मायापरकता एवं ऐन्द्रजालिकता की उसकी स्पष्टता तीव्रता की, उसकी द्विधाहीनता और प्रशस्तिपरकता की और वाणी की मधुरता तथा भाषिक यथार्थवादिता की है, तो दूसरी ओर यह सजगता मितभाषिता और मौनपरकता की, उच्चारण की सचेष्टता-सजगता की—उच्चारण में स्वर, व्यंजन और स्वराघात की संतुलनपरक सावधानता की और उच्चारण में स्वर की असहज आदरमयता की है; एक ओर यह सजगता पद और पदार्थ को जोड़ने वाले प्रत्यय की सजगता की है, व्याकरण की नानाविध सचेष्टता की और वाक्य की सीमा परकता की है, तो दूसरी ओर अर्थ की बहुविध सजगता की छन्दोमयता और, अर्थवत्ता की पारस्परिक संलग्नता की 'नहीं' की अनेकविध सांकेतिकता की, 'लौटना' क्रिया की निरर्थकता की, अर्थ की श्रोतृपरकता और संदर्भापेक्षिता की, अक्षरार्थ की जगह भावार्थ की ग्रहणशीलता की तथा प्राचीन पद में नवीन अर्थोन्मेष की संवेदनशीलता की भी है।

द्विवेदी जी की कथाकृतियों में 'बाणभट्ट' की आत्मकथा' में आचार्य सुगतभद्र, महाराजाधिराज, भट्टिनी और स्वयं बाणभट्ट भाषा-प्रयोग के प्रति जागरूक और सचेष्ट हैं। यहाँ यह सजगता भाषा-प्रयोग के पर्यवेक्षण-क्रम में भी द्रष्टव्य है। इसी प्रकार 'चारुचन्द्रलेख' में विद्याधरभट्ट, तपस्वी, रानी, चन्द्रलेखा, नाटीमाता, भर्तृहरि, अमोघवज्र, बोधा, किशोरकवि, जल्हण, अघोरनाथ, वाचक और उत्तारक सभी भाषिक सजगता से अभिप्रेरित हैं। उनकी तीसरी कथाकृति 'पुनर्नवा' में देवरात, मैना, शार्विलक, चन्द्रमौलि, बाबा मृणाल—सब भाषा की बारीकी के प्रति सजग सचेष्ट हैं। स्वयं कथाकार जुआड़ी की प्रतिभाषा (Anti Language) के प्रति अपनी सजग यथार्थता का सुन्दर परिचय प्रस्तुत करता है। उनकी अन्तिम कथाकृति अनामदास का पोथा में जाबाला, रैक्व और भगवती भाषा की ज्ञानपरक एवं प्रायोगिक—दोनों ही प्रकार की सजगता के साक्षात् प्रमाण हैं।

कहना न होगा कि द्विवेदी जी की कथा-भाषा की इस बहुविध भाषिक सजगता के मूल में उनका वैदुष्यपूर्ण, मनीषी व्यक्तित्व क्रियाशील है। आज जहाँ कथाभाषा में प्रायः भाषा का ह्रासोन्मुख पक्ष अधिकाधिक देखने को मिलता है वहाँ भाषा की ऐसी जागरूक प्रयोग-कुशलता के लिए द्विवेदी जी को श्रेय दिया जाएगा। बड़ी बात यह है कि उनकी ऐसी भाषिक सजगता कहीं भी कथारस की धारा से विच्छिन्न नहीं हुई है और न ही सहज सम्प्रेषणीयता के प्रवाह को बाधित करने वाली बनी है, बल्कि यह सर्वत्र अपनी लचीली प्रकृति के साथ कथा-संवेदन से एक होकर उपस्थित हुई है, जहाँ पाठकों के रुचि-परिष्कार

किसी दिन मैं उसे फिर देखूं तो पहचान लूंगा कि यह शुभा है। आप नहीं पहचानेंगे, क्योंकि पद और पदार्थ को जोड़ने वाला पदार्थ प्रत्यय है। मेरे पास है, आपके पास नहीं है। (वही, पृष्ठ-43)

2. रैक्व वाद के लिए प्रस्तुत हो गये। बोले, 'जिस शब्द की निरुक्ति चाहो, बता सकता हूं। पूछो।'

'अच्छी बात है। यह बताओ कि वाचक्नु कपिशों और गांधारों के उच्चारण के बारे में क्या बताते हैं ?'

पहले यह बताओ कि तुम निरुक्त के बारे में प्रश्न करना चाहते हो या शिक्षा के बारे में ? यह प्रश्न शिक्षा का है।'

'अच्छा, शिक्षा की दृष्टि से ही उत्तर दो।'

वाचक्नु का मत है कि कपिश-गंधार के लोग कोमल वर्णों के स्थान पर परुष वर्णों का प्रयोग करते हैं। वे 'गगनम्' को 'ककनम्' कहते हैं।'

'साधु मित्र, तुमने ठीक उत्तर दिया। अब बताओ कि वे लोग 'गंधर्व' शब्द का कैसा उच्चारण करेंगे ?'

'गंधर्व' को वे लोग 'कंदर्प' कहेंगे।'

'साधु बंधु ! पर वाचक्नु लोग कुछ अपवाद भी बताते हैं।' 'बताते हैं, क्वचित्-कदाचित् मध्यवर्ती कोमल महाप्राण वर्ण को कोमल अल्पप्राण ही रहने देते हैं। जैसे 'गंध' को वे लोग कंद कहते हैं।' (वही, पृष्ठ—140—141)

3. शुभा कहती है, कम बोला करो। मैं कुछ वाचाल हो गया हूं। मुझे अपनी वाणी पर संयम रखना चाहिए। गाड़ी मिल जाये तो मैं फिर अपने तप और समाधि के मार्ग पर लौट सकूं। शुभा की यही इच्छा है। शुभा बिना विचारे कोई बात नहीं कहती। कुछ सोच के ही कहा होगा। अब शुभा के बारे में तो बिल्कुल कुछ नहीं बोलना चाहिए। मैं शायद निरर्थक या अनर्थपरक बातें कह जाता हूँ। (वही, पृष्ठ 162-163)

ख. भगवती की भाषिक सजकता :

नहीं बेटी, माँ से बड़ी कोई नहीं होती। तू मुझे ही माँ समझ। मुझे भगवती कहकर अनुचित और असत्य संभाषण न कर। मुझे माँ कहकर बोल, मुझे माँ कहकर पुकार। कह तो भला।

आदर और भक्ति से विजड़ित कण्ठ से जाठवाला ने कहा, 'माँ'! भगवती ने हँसते हुए कहा, नहीं हुआ, तेरा स्वर सहज नहीं है। इसमें आदर और श्रद्धा अधिक है, ममता कम है। तू मुझे ब्रह्मवादिनी समझकर आदर दे रही है।

(वही, पृ० 94)

उपर्युक्त उदाहरणों से द्विवेदी जी की कथा भाषा-विषयक सजगता के अनेक आयाम उद्घाटित होते हैं। हिन्दी में प्रत्यक्षत: उद्घाटित- उपस्थित यह

सजगता अन्य किसी कथाकार की भाषा में देखने को नहीं मिलती है। अज्ञेय के यहाँ यह ज्यादा परिचित और सूक्ष्म है। वहाँ अर्थ की व्यंजना पर बल अधिक है। पर द्विवेदी जी के यहाँ एक ओर यह सजगता भाषा की प्रकाशमयता एवं मोहमिहिकामयता की, उसकी मायापरकता एवं ऐन्द्रजालिकता की उसकी स्पष्टता तीव्रता की, उसकी द्विधाहीनता और प्रज्ञप्तिपरकता की और वाणी की मधुरता तथा भाषिक यथार्थवादिता की है, तो दूसरी ओर यह सजगता मितभाषिता और मौनपरकता की, उच्चारण की सचेष्टता-सजगता की—उच्चारण में स्वर, व्यंजन और स्वराघात की संतुलनपरक सावधानता की और उच्चारण में स्वर की असहज आदरमयता की है; एक ओर यह सजगता पद और पदार्थ को जोड़ने वाले प्रत्यय की सजगता की है, व्याकरण की नानाविध सचेष्टता की और वाक्य की सीमा परकता की है, तो दूसरी ओर अर्थ की बहुविध सजगता की छन्दोमयता और, अर्थवत्ता की पारस्परिक संलग्नता की 'नहीं' की अनेकविध सांकेतिकता की, 'लौटना' क्रिया की निरर्थकता की, अर्थ की श्रोतृपरकता और संदर्भापेक्षिता की, अक्षरार्थ की जगह भावार्थ की ग्रहणशीलता की तथा प्राचीन पद में नवीन अर्थोन्मेष की संवेदनशीलता की भी है।

द्विवेदी जी की कथाकृतियों में 'बाणभट्ट' की आत्मकथा' में आचार्य सुगत-भद्र, महाराजाधिराज, भट्टिनी और स्वयं बाणभट्ट भाषा-प्रयोग के प्रति जागरूक और सचेष्ट हैं। यहाँ यह सजगता भाषा-प्रयोग के पर्यवेक्षण-क्रम में भी द्रष्टव्य है। इसी प्रकार 'चारुचन्द्रलेख' में विद्याधरभट्ट, तपस्वी, रानी, चन्द्रलेखा, नाटीमाता, भर्तृहरि, अमोघवज्र, बोधा, किशोरकवि, अल्हण, अघोरनाथ, वाचक और उत्तारक सभी भाषिक सजगता से अभिप्रेरित हैं। उनकी तीसरी कथाकृति 'पुनर्नवा' में देवरात, मैना, शार्विलक, चन्द्रमौलि, बाबा मृणाल—सब भाषा की बारीकी के प्रति सजग सचेष्ट हैं। स्वयं कथाकार जुआड़ी की प्रतिभाषा (Anti Language) के प्रति अपनी सजग यथार्थता का सुन्दर परिचय प्रस्तुत करता है। उनकी अन्तिम कथाकृति अनामदास का पोथा में जाबाला, रैक्व और भगवती भाषा की ज्ञानपरक एवं प्रायोगिक—दोनों ही प्रकार की सजगता के साक्षात् प्रमाण हैं।

कहना न होगा कि द्विवेदी जी की कथा-भाषा की इस बहुविध भाषिक सजगता के मूल में उनका वैदुष्यपूर्ण, मनीषी व्यक्तित्व क्रियाशील है। आज जहाँ कथाभाषा में प्रायः भाषा का ह्रासोन्मुख पक्ष अधिकाधिक देखने को मिलता है वहाँ भाषा की ऐसी जागरूक प्रयोग-कुशलता के लिए द्विवेदी जी को श्रेय दिया जाएगा। बड़ी बात यह है कि उनकी ऐसी भाषिक सजगता कहीं भी कथारस की धारा से विच्छिन्न नहीं हुई है और न ही सहज सम्प्रेषणीयता के प्रवाह को बाधित करने वाली बनी है, बल्कि यह सर्वत्र अपनी लचीली प्रकृति के साथ कथा-संवेदन से एक होकर उपस्थित हुई है, जहाँ पाठकों के रुचि-परिष्कार

का सहज समावेश संभव हो सका है।

8. भाषिकेतर संकेत शैली :

कथाकार द्विवेदी जी की भाषा में भाषिकेतर संकेत शैली भी प्राप्त होती है। उनके यहाँ इस संकेत शैली के कई रूप हैं। उनमे अगुली संकेत की भाषा, हँसी की भाषा वास्तु, नृत्य कला की भाषा, ज्योतिष और शकुन की भाषा, पक्षियों की भाषा, आदि के उदाहरण प्राप्त होते हैं। उनकी मान्यता है कि; 'जिस भाषा का अर्थ समझ में नही आता, उसका अर्थ है ही नह, यह कैसे कहा जा सकता है। यह आकाश भरा-तारक मंडल, चंचल पवन, उद्धूम अग्निशिखा की समता करने वाला संध्याकालीन गिरि-कुहर—सबका अर्थ होना चाहिए।' द्विवेदी जी की इस मान्यता मे और अस्तित्ववादी चिंतक ज्यां-पाल सात्र की मान्यता मे बुनियादी अन्तर है। सात्र के लिए 'ससार का प्रत्येक संकेतार्थ निरर्थक है। उसके अनुसार जगत् में सब कुछ अर्थहीन है यदि कोई मानवीय उद्देश्यों का सिलसिला नही जो वस्तु को अर्थ और क्रियाशीलता देता है, तो कोई प्राकृतिक या स्वर्गिक योजना भी नही, जिसमे आरम्भ होकर वस्तुएँ एक अर्थ पाती हों या जगत में अपना स्थान पाती हों।' पर कथाकार द्विवेदी जी के लिए इस संसार के सारे संकेत सार्थक हैं।

(क) दृष्टि-भाषा

द्विवेदी जी के यहाँ आँखो की भाषा की अनेक मुद्राएँ हैं। इन मुद्राओ के निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य है :

1. 'निपुणिका ने अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से डाटा, हल्ला क्यों करते हो धीरे-धीरे बोलो। (बाणभट्ट की आत्मकथा, पृ० 17)
2. 'निपुणिका ने एक बार कनखियों से डाटा, बोली—पान खाओ।' (वही, पृ० 20)
3. 'राजकन्या ने बंकिम नेत्रपात से मेरी ओर देखा और फिर एक बार महाव-राह की ओर ताका। उसकी आँखों से धारा बह चली। स्पष्ट ही उस कातर दृष्टि का अभिप्राय यह था कि हे इष्टदेव अभी और क्या-क्या दिखाओगे।' (वही, पृ० 35)
4. 'उस दृष्टि में कोई जिज्ञासा नहीं, न उसमें कोई भाव था, न विभाव था, न राग था, न विराग—केवल एक शून्य दृष्टि।' (वही, पृ० 31)
5. 'मैंने स्पष्ट ही लक्ष्य किया मेरी आँखों के खोलते ही भट्टिनी का रोम-रोम उल्लसित हो गया, जैसे शोभा के समुद्र मे अचानक ज्वार आ गया है।' (वही, पृ० 44)
6. 'मेरी आंखें बंद नहीं रही, मैं क्षण भर के लिए मोहाविष्ट हो रहा।' (वही, पृ० 45)

7. 'वर्षा-वारि से भीगे हुए खंजरीट शावक की भाँति वे आँखें ऊपर नही उठ सकी, शीघ्र ही वे फिर नीचे आ गईं।' (वही, पृ० 163)
8. 'भट्टिनी ने देर तक अर्थहीन दृष्टि से मुझे देखा, मानो उनका मन कही खो गया हो, मानो हृदय मे ग्राहिका संवेदना अवशिष्ट ही न रही हो, मानो स्नेह का स्रोत सूख गया हो, मानो अन्तःस्पन्द एकदम रुक गया हो। (वही, पृ० 222)
9. 'भट्टिनी उठी, उनकी खिन्न आँखें कोने-कोने में घूम गईं, मानो जो खो गई है उसके खोने से कितनी रिक्तता आ गई है इसका हिसाब कर रही हों।' (वही, पृ० 289)
10. 'इस दृष्टि का अर्थ स्पष्ट था—तू क्या जाने नटुए का लौंडा, मैंन सिंह विवश था, वह चुप था पर उसकी आँखों की भाषा स्पष्ट थी। (चारुचन्द्रलेख, पृ० 124)
11. मन में बार-बार नाटी माता की उस मुद्रा में खड़ी हो जाती थी, जब उन्होंने पीछे मुड़कर मेरी ओर देखा था। उस दृष्टि का अर्थ समझने का प्रयत्न करता रहा।...परन्तु माता जी ने घूरकर मेरी ओर एक विचित्र दृष्टि से देखा। उस दृष्टि का अर्थ नही समझ पा रहा हूँ। (वही, पृ० 232)
12. 'मंजुला के मन पर चोट लगी। वह नही चाहती थी कि देवरात उसे गलत समझें। अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से, उसने कातर-अपांग से देवरात की ओर देखा, भाव था, इन भोंड़े रसिकों की हँसी की उपेक्षा करें, मैं परवश हूँ। देवरात ने आँखों की भाषा मे ही उत्तर दिया, कुछ परवाह न करो, यह नासमझ हैं। फिर एक दो-बार आँखों ही-आँखों बातें हुईं। राजसभा में किसी ने इस दृष्टि-विनिमय को समझने का प्रयत्न नही किया।
13. 'भाभी की हँसी अधरों पर अधिक चंचल हो उठी। जरा रुक-रुककर बोली, बाप-रे-बाप, बहू बेचारी तो खिला भी नही पाती होती। भाभी को देखकर ही यह दशा है तो उस बेचारी को तो आँखों-ही-आँखों मे पी जाते होगे। (पुनर्नवा, पृ० 212)
14 उसने चिल्लाकर कहा मुझे मालूम है। मैं उस गुपचुप चल रही प्रेम वार्ता को पहचान गया हूँ। सुनो संसार के स्त्री-पुरुषों, तथा आंखों की भाषा जानता हूँ। मे भुजाओं की भाषा जानता हूँ, मैं लुक्का-चोरी की भाषा जानता हूँ। मैं सब पहचान गया हूँ। (अनामदास का पोथा, पृ० 130)
15. रैक्व ने देखा, शुभा इतनी स्तब्ध! एकदम रुद्धचेष्टा। दोनों हैरान...। 'भये दृगंचल, चारु अचंचल'। (वही, पृ० 159)
16. वे कुछ कहें, इसके पहले ही जाबाला की आँखों से उनकी आँखें मिलीं। उस दृष्टि मे कातर अभ्यर्थना थी, तुम कुछ कम नहीं बोल सकते। (वही, पृ० 183)

17. रैक्व की कातर दृष्टि शुभा के चेहरे पर टिकी रही। बिना शब्द के ही वह दृष्टि कह रही थी, 'क्षमा करना देवि, फिर गलती हो गयी।
(वही, पृ० 183)

(ख) अंगुली-संकेत की भाषा :

आँखों के अतिरिक्त अंगुली-निर्देश की संकेत-शैली भी द्विवेदी जी की कथा-भाषा की विशेषता है :—

1. 'निपुणिका ने इशारे से मुझे चुप किया और आँगन के कोने की ओर निर्देश दिया।' (वही, पृष्ठ-54)

2. निपुणिका ने इशारा किया कि जोर से न बोलो।' (वही, पृष्ठ-57)

(ग) वास्तुकला की भाषा :

कथाकार हजारी प्रसाद द्विवेदी जी की कथा-भाषा वास्तुकला की भाषा को भी उजागर करती है।—'शक नरपतियों ने अपनी बुद्धभक्ति के आवेश में इस देश मे भारतीय और यावनी शिल्प की जो गंगा-यमुनी मूर्तियाँ तैयार करायी हैं उन्हें मैं बिल्कुल नही पसंद करता। वे न तो मूर्ति के अर्थ-'पुरुष की गहराई में जाती है न प्रमेय-पाटव मे। एक तरफ उनमें यावनी प्रतिमाओं की भांति अंग-प्रमाण की ओर बहुत ध्यान दिया गया होता है, दूसरी तरफ हाथ और पैर की मुद्राओं में 'व्याख्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ को प्रधानता दे दी गई होती है।' (वही, पृष्ठ-101)

(घ) नृत्य की भाषा :

निपुणिका ठिठक कर खड़ी हो गई। उसका बांया हाथ कटिदेश पर न्यस्त था, कंकण कलाई पर सरक आया था, दाहिना हाथ शिथिल श्यामलता के समान झूल पड़ा था, उसकी कमनीय देहलता नृत्य-भंग से जरा झुक गई थी, मुख-मंडल श्रमबिन्दुओं से परिपूर्ण था। (बाणभट्ट की आत्मकथा, पृ०-19)

(ङ) हँसी की भाषा :

द्विवेदी जी की कथा-भाषा में हंसी का भी अर्थ है, 'उनके मुख पर तब भी गीली-गीली हंसी सटी हुई थी। उस हसी का अर्थ मैंने समझा, 'उसमें कृतज्ञता थी, पर भरोसा नही था, मानो वह हंसी ही उच्च स्वर से भट्टिनी के निगूढ़ मनोभावों को प्रकट कर रही थी। आश्वासन दे रहे हो। इसके लिए कृतज्ञ हूँ, पर तुम्हारी प्रतिज्ञा की रक्षा दुःशक्य है।' (वही, पृष्ठ-107)

(च) मौन की भाषा :

'द्विवेदी जी के यहाँ मौन की संकेत भाषा भी है, एक ऐसी भाषा जो शब्दों के अन्तराल में मौन से गूंज उठती है...'शुचरिता का प्रदीप्तमुख और भी उज्ज्-

वल हो गया। उसे कहने में आनंद मिल रहा था, परन्तु उसका प्रत्येक शब्द मेरे लिए दुर्बोध था। मुझे ऐसा लग रहा था कि उसके शब्दों के अन्तराल में कुछ और है जो उसे गद्गद् बनाए हुए है। (वही, पृष्ठ-183)

(छ) ज्योतिष की संकेत-भाषा :

द्विवेदी जी की कथा भाषा की भाषेतर संकेत-शैली में ज्योतिष की सांकेतिकता का भी प्रयोग दर्शनीय है'''। तपस्वी उल्लास के साथ चिल्ला उठा—स्वस्तिक और मत्स्य का यह युगपत् सम्मिलन अपूर्व योग है। शंख, कमल और व्यंजन के चिह्न केवल भगवती विमला के हाथ मे प्रकट हुए थे। आश्चर्य है देवी यदि तुम राज्ञी पद पर आसीन नहीं होती हो तो शास्त्र मिथ्या सिद्ध होंगे।

(चारुचन्द्रलेख, पृष्ठ-18)

(ज) शकुन संकेत की भाषा :

इस कथा-भाषा में शकुन-संकेत के फलाफल को निर्दिष्ट करने वाली भाषा की आकांक्षा भी विद्यमान है,—एक जगह मैंने देखा कि गोबर के ढेर पर एक विशाल सर्प फण निकालकर बैठा है और उसके फण पर एक खंजन पक्षी नाच रहा है। मैं जानना चाहती हूं कि इस असाधारण शकुन के देखने का कोई फल होता है या नहीं।

(झ) पक्षियों की संकेत-भाषा :

1. कथाकार द्विवेदी जी ने एक भाषेतर शैली मे उस भाषा की संकेत पद्धति का भी उल्लेख किया है, जिसे आजकल जीव संकेत-विज्ञान (zoo scsmitics) कहा जाता है।' अंग्रेजी समझदार लोगों की भाषा है और जो लोग इसे जानते हैं, वे अगर समझदार मान लिये जाते हैं तो इसमें बुराई कुछ नही है। जनश्रुति अंग्रेजी तो नही जानते होंगे, परन्तु हंसों की बोली वे समझते थे। आदमियो मे जैसा अंग्रेज, चिड़ियों में वैसा हंस। हंसो की भाषा उन दिनों अवश्य समझदार मानी जाती होगी। राजा जानश्रुति जानते थे '', उन्होने हंसो का शिकार नही किया, चुपचाप खड़े होकर बातचीत सुनते रहे। भाषा तो वे जानते ही थे, समझ गये कि वे क्या बातें कर रहे हैं, वे आपस में बात कर रहे थे कि जिस प्रकार पाने के सबनिचले दांव ऊंचे दावों के अन्तर्गत आ जाते हैं, उसी प्रकार मनुष्य जितने भी पुण्य कर्म करते हैं, वे सब सर्वरधी तत्त्व-ज्ञानी रैक्व मुनि के पास जाते हैं। (अनामदास का पोथा, पृष्ठ 20-21)

2. इधर से एक दल चिल्लाता था—रैक्व। उधर से दूसरा दल उतने ही जोर से चिल्लाता—रैक्व। 'रयि' सम्पत्ति को कहते हैं, तुझे बताया तो था, याद नही है। वेदों की ऋचाओं में भी यह शब्द आता है। मुझे लगा कि एक दल पूछ रहा है कि सम्पत्ति कहां जाती है? दूसरा दल जवाब दे रहा है, रैक्व के पास। (वही, पृष्ठ 39)

निष्कर्ष :

इस प्रकार हजारी प्रसाद द्विवेदी की कथा-भाषा समुच्चय शैली, समंजस शैली, संरोधी बनाम मोचक शैली, विभेदक प्रोक्ति की शैली, अन्तरपाठीय शैली उद्घाटक-निर्वचनात्मक शैली, भाषिक सजगता की शैली, और भाषिकेतर संकेत शैली की अनेकानेक विशेषताओं से भरी-पूरी है। उनकी कथाभाषा परम्परित सर्जनात्मक भाषा की विशेषताओं से युक्त होकर भी नई जमीन तोड़ने वाली है तथा शैली के व्यक्तिपरक वैशिष्ट्य को भी उजागर करने वाली है, जिसके मूल मे उनकी सम्पूर्ण सांस्कृतिक चेतना, और ज्ञान-संज्ञान की समृद्धि रसी-बसी है। उनकी कथा-भाषा मे अनेक विच्छित्तियां हैं, गहराई और फैलाव की गुणवत्ता है और है पाठक-निर्माण की अद्भुत क्षमता। सबसे बड़ी बात उनकी कथाभाषा मे कथारस की सुरक्षा है। किन्तु जैसा कथाकार द्विवेदी जी 'अनामदास का पोथा' के आरंभ में अनामदास की रचना के विषय में स्वयं कहते हैं कि 'शायद यह और कुछ नही, इसका मात्रा-ज्ञान है कि कहां रुक जाना चाहिए, कहां मुड़ जाना चाहिए, कहां तेज चलना चाहिए, यह अनाम को मालूम है, पर कितना नहीं लिखना है यह नही मालूम'—उनका यह कथन स्वयं उनकी अपनी कथा-भाषा पर भी पूरी तरह लागू होता है। उन्हें रुकना, मुड़ना, तेज चलना—उपराम, यति, गति—पर तो निश्चय ही अधिकार प्राप्त है, पर कितना कम लिखकर कितना अधिक व्यंजित करना चाहिए अर्थात् सर्जनात्मक भाषा के इस मौन पर उन्हें पूरा अधिकार प्राप्त नही हो पाया है।

कथा-भाषा : विधा का सन्दर्भ

1. (नयी) कहानी

नयी कहानी की भाषा

प्रयोग और उपलब्धि की भाषा :

'नयी कहानी' की भाषा प्रयोग और उपलब्धि की भाषा है। सन् 1950 के बाद कथाकारों ने अपनी-अपनी भाषा मे प्रयोग किये हैं, जिनसे भाषा की उपलब्धि बढ़ी है। यह उपलब्धि दो दिशाओं में हुई है। एक तो कहानी की भाषा समृद्ध हुई है दूसरे, समग्र हिन्दी भाषा को पहले की अपेक्षा अधिक सम्पन्नता मिली है।

कथाकारों के गद्य मे उनकी भाषा की शक्ति और समृद्धि के दो अभिप्राय हैं। पहला अभिप्राय यह कि नयी कहानी की भाषा अपनी तलाश मे कही अधिक श्री-सम्पन्न, सूक्ष्म, सांकेतिक और शैली की विच्छित्ति से पूर्ण हुई है। इसमें भाषा का फीलपाँवी रूप नष्ट हुआ है और उसकी लदावट का ह्रास। यह भाषा परिवेश की सूक्ष्मता से वैचारिक कथ्य तक की सूक्ष्मता को व्यक्त कर देने मे समर्थ है। यह प्रेम, सौन्दर्य, प्रकृति-चित्रण, व्यंग्य, आक्रोश तथा जीवन की व्यावहारिकता के विविध स्तरों पर कालरनिकता और रूढ़ चित्रात्मकता की भाषा नहीं है। साथ ही यह साहित्यिक कुंठाओं से भी परे है, जहाँ परम्परित भावुकता का आग्रह एक-ब-एक कम हुआ है। इस प्रकार यह भाषा वाचिक से सांकेतिक विवृतियों तक की विभिन्न भंगियों के कारण विविध-स्तरीय हो गयी है। फलतः यह न तो एकरस गद्यीय भाषा है, और न दार्शनिक गहराई की पेचीदी अथवा मनोवैज्ञानिक उलझाव की अस्पष्ट भाषा। बडी बात यह है कि 'नयी कहानी' की भाषा अर्थ के सामान्य स्तर से गहन स्तर में पैठ कराने वाली भाषा है, जो बीज के अंकुर की तरह प्रस्फुट होती है।

दूसरे, अपने समकालीन गद्य की अन्यान्य विधाओं की अपेक्षा इसमे अधिक सर्जनात्मकता, व्यापकता, यथार्थता, गति, भाव-भाषा का सफल बिम्ब-प्रतिबिम्ब-भाव, फलतः स्पष्टता, प्राणवत्ता और समर्थता आयी है। यह भाषा अन्याय विधाओं की तुलना में उपन्यास से अधिक प्रगाढ, मार्मिक और ग्रथित भाषा है, निबन्ध की चिन्तनमयता और विशिष्ट पदावली से ज्यादा स्वच्छंद तथा यथातथ्यात्मक है, जिसमें साफगोई का अद्‌भुत गुण है तथा नाटक की तीव्र-मंद

व्यापारी भाषा से व्यापारहीन हो कर भी कहीं अधिक गतिशील, स्थिर और प्रभविष्णु है। इतना ही नहीं, यह कविता की अमूर्त्तता से ज्यादा मूर्त्त और उसकी प्रायोगिक कृत्रिमता से ज्यादा अकृत्रिम है।

'नयी कहानी' की भाषा हिन्दी के विस्तार और प्रसार की परिचायिका है, जहाँ हिन्दी का शब्दकोश बढ़ा है तथा व्याकरण के नियमों के रहते हुए भी भाषा मे बहुत सारी सहूलियतें निकाली गयी हैं। प्रेमचन्द की कथा-भाषा मे उर्दू और हिन्दी के मिश्रित प्रयोग हुए थे। सामान्य ढंग से ग्राम्य शब्दों का भी सहज प्रयोग उनकी भाषा में होने लगा था। पर 'नयी कहानी' की भाषा में अंचल-विशेष के शब्द, अंग्रेजी शब्द, हिन्दी की निजता मे बदल गए अंग्रेजी शब्द तथा प्रान्तीय भाषाओं के शब्द आदि का प्रभूत व्यवहार हुआ है। इससे भारतीय एकता का व्यापक फलक प्रस्तुत करने में हिन्दी समर्थ हुई है। इस नजरिए से 'नयी कहानी' की भाषा यह बताती है कि हिन्दी अब हिन्दी और हिन्दुस्तानी के झमेले से बहुत आगे निकल चुकी है।

गीत-नवगीत की भाषा से अधिक व्यापक भाषा :

डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी ने 'नयी कहानी' की भाषा पर विचारते हुए एक स्थल पर आक्षेप किया है कि 'नये कहानीकार और गीतकारों की कई मौलिक वृत्तियाँ एक जैसी हैं "अन्ततः यह कि दोनों की ही भाषा-प्रयोग-विधि एक जैसी है।' (भाषा और संवेदना पृष्ठ 75) फिर उन्होंने 'नयी कहानी' की भाषा में सृजनात्मक रूप का अभाव बताते हुए लिखा है कि शिष्ट साहित्य भाषा के सृजनात्मक रूप का प्रयोग करता है। इस सृजनात्मक रूप में लेखक प्रतीक और बिम्ब-विधान के माध्यम से अपनी बात कहता है…' (वही 75, 76) पर सच्ची बात यह है कि 'नयी कहानी' की भाषा की तुलना गीत या नवगीत की भाषा से की ही नहीं जा सकती। दोनों मे स्पष्ट विधागत और समृद्धिगत अन्तर हैं। गीत या नवगीत मे जो भाषा प्रयुक्त होती है, उसमें ग्राम्य वातावरण के शब्द तो होते हैं, पर वे विस्तृत ग्राम्य वातावरण से विविधतः नहीं उठाए जाते। उनका क्षेत्र बड़ा संकुचित होता है। प्रायः वे शब्द रूमानी वातावरण के होते हैं। 'नयी कहानी' में भाषा का यह केन्द्रण नहीं है। वह तो इसके विरोध की भाषा है। दूसरे, गीत में सामान्यतः ग्राम्य शब्द पात्रों के मुँह से नहीं उच्चरित कराये जा सकते। यह उसकी एक बड़ी विवशता और असमर्थता है। 'नयी कहानी' की भाषा में ग्राम्य शब्दों का प्रयोग पात्र करते हैं। यह भाषा पात्रों का स्वरूप और कथा की पृष्ठभूमि तो प्रस्तुत करती ही है, साथ ही ठीक-ठीक भाव के सम्प्रेषण के लिए, ठीक-ठीक अर्थ-बोध के लिए ठीक-ठीक शब्द का इस्तेमाल भी करती है; ऐसे शब्दों का इस्तेमाल जो मार्जित हिन्दी के कोश मे निश्चयतः नहीं हैं। गीत में इसका भी अभाव है। तीसरे, 'नयी कहानी' की भाषा मे न केवल ग्राम्य परिवेश

के शब्द आये हैं, बल्कि नागर-परिवेश के शब्द भी। अतः एक ओर यदि ग्राम्य प्रयोग की ताजगी-सादगी है तो दूसरी ओर नागर प्रयोग की चलित-स्वाभाविकता भी, और तीसरी ओर मांजित हिन्दी की परिनिष्ठता भी। चौथे, गीत भले ही केवल सादगी को लक्ष्य बना कर रचा जाता हो, पर 'नयी कहानी' की भाषा का भी वही लक्ष्य हो, ऐसा नहीं है। पांचवें, चतुर्वेदी जी का आग्रह जिस प्रतीक और बिम्ब-विधान पर है, वह प्रतीक और बिम्ब-नियोजन नयी कहानी की भाषा में हुआ है, यद्यपि सृजनात्मक गद्य की यह महत्वपूर्ण विशेषता होते हुए भी अनिवार्य विशेषता नहीं है।

नयी कहानी के भाषा-अध्ययन की दिशाएं :

'नयी कहानी' के भाषा-अध्ययन की दिशाएं उसके ध्वनिगत प्रयोग, शब्दगत प्रयोग, वाक्यगत प्रयोग और अर्थगत प्रयोग की दिशाएं हैं। इसकी उपलब्धि और सीमा को रेखांकित करना ही इस भाषा का वास्तविक मूल्यांकन है।

ध्वनिगत प्रयोग :

'नयी कहानी' की भाषा में ध्वनिगत प्रयोग दो रूपों में प्राप्त होते हैं—1. भाषा-वैज्ञानिक रूप में 2. विशुद्ध साहित्यिक रूप में। भाषा-वैज्ञानिक रूप मे ध्वनिगत प्रयोग स्वर-व्यंजन-परिवर्तन सम्बन्धी हैं, जिनके आधार स्वर-लोप और स्वरागम तथा व्यंजन-लोप और व्यंजनागम हैं। 'नयी कहानी' की भाषा मे पूर्वी, और पश्चिमी हिन्दी—दोनों ही के शब्द-रूपो का इस्तेमाल हुआ है। पंजाबी, बंगला आदि भाषा के शब्द-प्रयोग मे ऐसे ध्वनि-परिवर्तन स्पष्ट हैं। स्वर-लोप के उदाहरण में—'घिर' की जगह 'घर' (तथापि, 20), 'बिखरे' की जगह 'बखरे' (14), 'हिसाब' की जगह 'हसाब' (55) आदि प्रयोग हैं, जिन पर पंजाबी की छाप है। स्वर-लोप और परिवर्तन के उदाहरण-स्वरूप 'फिर' की जगह 'फेर' (17) जैसे प्रयोग देखे जा सकते हैं। व्यंजन-लोप तथा स्वरागम के उदाहरण 'पहले' की जगह 'पैले' (17) जैसे शब्द हैं। व्यंजनागम का उदाहरण 'जेल' की जगह 'जेहल' (जिन्दगी और जोंक, 135) का प्रयोग है। व्यंजन-परिवर्तन का दृष्टान्त 'अनुखन' (तथापि, 5) है जो 'अनुक्षण' के लिए प्रयुक्त है। 'नयी कहानी' में ऐसे ध्वनि-प्रयोग लेखक और पात्र दोनों ही की भाषा में हुए हैं।

शुद्ध साहित्यिक रूप में विविध ध्वनियों का सूक्ष्म, सटीक तथा सार्थक चित्रण किया गया है। रेणु ने मृदंग की ध्वनि—'धा-तिंग धा-तिंग' (ठुमरी, 10), नगाडे की ध्वनि—'घन-घन घन-घड़ाम' (146), पदार्थों की ध्वनि में भाथी की विकृत ध्वनि—'सोंय-सोंय' (10), फाल पीटने की ध्वनि—'ठां-ठां-ठां हुन्न ! ठां ठुन्ना' (11), कठौत के पानी में डाले गए फाल की ध्वनि—छुं-छुं-छुं-

ऊँ गुडई-ई (91), निहाई पर रखे फाल की ध्वनि—'ठनांग-ठनांग-ठनांग' (98), मशीन वाली धोंकनी की ध्वनि—फूं-ऊ-ऊ ! घर्र-र-र' (106), हथौड़े की ध्वनि—'ए-ठांय ! ए-ठांय ! ए-ठांय' (106), हथौड़े के चूक जाने की ध्वनि—'ए ठर्रक !' (106), घंटी की ध्वनि—'टुनुर-टुनुर' (165), गाड़ी के हिलने की ध्वनि—'छि-ई-ई-छक्का' (149), पक्षी में चील की टिहकारी की ध्वनि—'टि · ई···टि-हि-क' (12), पशुओं में बैलों की—'हुंक-हुंक' (125), कुत्ते की 'कूं-कूं' (52) बकरे की—'बो-बो-बो' (एक आदमी रात्रि की महक, 179), गाय की—'ऊँ-याँ-ऊँ-याँ' (ठुमरी, 66), साँप की—'फों-फों' (56) तथा आदमी के उत्साह की—'ले-ले-ए-हे-य' (131) के द्योत बिम्बीय प्रयोग किए हैं। रेणु की भाषा में आदमी के नाचने की 'किड़ किड़-किर्रि' (ठुमरी, 144) तथा भालू के नाचने की 'धब्बड़-धब्बड़' (55) गति का उल्लेख और बच्चे के बोल की—'डा-आ-डी-ई' तथा 'धी-धी-ए-ए' जैसी ध्वनि (30) का अंकन हुआ है। अमरकान्त ने खाने की—'चापुड़-चापुड़' (जिन्दगी और जोंक, 125), पीने की—'गटर-गटर' (87) तथा आटे की चक्की की—'पुक्-पुक्-पुक्' (58) ध्वनियां निरूपित की हैं। ये सब-की-सब ध्वनियां हिन्दी में पहले-पहल प्रयुक्त हुई हैं। हिन्दी कहानी में इन विविध ध्वनियों को भाषा में उतार देने की क्षमता पहले नहीं थी, न ही हिन्दी की किसी अन्य साहित्यिक विधा में ये ध्वनियां पहले प्रयुक्त हुई थीं। सचमुच नये कहानीकारों ने सूक्ष्म-से-सूक्ष्म को भी अपनी भाषा में अत्यन्त समर्थता से ढाला है।

शब्दगत प्रयोग :

'नयी कहानी' की भाषा के शब्दगत प्रयोगों पर बारह उपशीर्षकों में विचार किया जा सकता है—1. संज्ञा-प्रयोग, 2. विशेषण-प्रयोग, 3 विशेषण का संज्ञा-मूलक प्रयोग 4. क्रिया-प्रयोग 5. क्रिया-विशेषण-प्रयोग 6. कारक प्रयोग 7. मूर्त्त-अमूर्त शब्द-प्रयोग 8. हलवाई, बढ़ई, लुहार आदि की प्रयुक्तियों (विशिष्ट शब्दावली) का प्रयोग 9. पदरूपों और सन्धि के स्वच्छन्द प्रयोग 10. अपशब्द-प्रयोग 11. वैयक्तिक शब्द-प्रयोग—क.—तकिया-कलाम का प्रयोग, ख.—वैयक्तिक शब्द और कथन-भंगी का प्रयोग 12. लेखकीय-पात्रीय शब्दों का प्रयोग।

संज्ञा-प्रयोग :

इस भाषा के संज्ञा-रूपों में एक ओर अंग्रेजी शब्दों के, दूसरी ओर विकृत, भदेस शब्दों के और तीसरी ओर आंचलिक शब्दों के प्रयोग हुए हैं। अंग्रेजी के शब्दों में 'कारीडोर' ('एक दुनिया समानान्तर' में प्रकाशित 'परिन्दे' कहानी, पृ० 165) क्लोज-अप, नम्बर, जोकर, ब्लाक, नाइट-रजिस्टर (166), मैडम, हिल-स्टेशन, स्नो-फाल, रेलिंग, लान; टैरेस (167); परकोलेटर (168) पिकनिक,

बार, बाल-रूम; हेड-लाइट (169) आर्म-चेयर; क्रास (170); कनटोनमेंट (172) शेड; प्रेयर-हाल (174), कैंडलब्रियम, प्रेयर-बुक, हिल-बुक, स्टूल; लंच (177), किचिन; सिमिट्री (179) आदि शब्द; विकृत-भदेस शब्दों में सबुर (ठुमरी, 97), परतीत (118), जिल्ला (119) नामलगर (131), फाहरम (139), इसटीसन (148) टेटर बैसकोप (153) आदि शब्द और आंचलिक शब्दों में झांपी ('ठुमरी', 12) नटुआ (13), जलढारी (42), बतकुट्टी (18) हुत्था (64), सभाचट्टी (84), विदागी (180), पटपटांग (122), टप्पर (126), खप्पची (158), बोलहट्टा (158), बिखदीठ (159), घरमार (162) आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं। सामान्य पाठक की दृष्टि से अप्रचलित अंग्रेजी शब्द के प्रयोक्ताओं में निर्मल वर्मा, राजेन्द्र यादव, नरेश मेहता, उषा प्रियंवदा आदि तथा प्रचलित अंग्रेजी शब्द के प्रयोक्ताओं में हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, मोहन राकेश, कमलेश्वर आदि आते हैं। भदेस और आंचलिक शब्द के प्रयोक्ताओं में रेणु, शिवप्रसाद सिंह, लक्ष्मीनारायण लाल, मार्कण्डेय, शैलेश मटियानी आदि हैं। नरेश मेहता जैसे कुछ कथाकारों ने कहीं-कहीं सस्कृतनिष्ठ संज्ञा शब्दों का भी अभिजात रूप में व्यवहार किया है। 'निश्चयतः कुछ अतिशयता-मूलक उदाहरणों को छोड़कर नए कथाकारों को ऐसे संज्ञा-शब्दों के प्रयोग से भाव के विविध स्तरों पर भाषा का प्रवाह निकालने में सुविधा हुई है।

विशेषण प्रयोग :

'नयी कहानी' के विशेषण-प्रयोग में अभिनवता, मौलिकता तथा विविधता की शक्ति द्रष्टव्य है। रेणु द्वारा प्रयुक्त मुस्कुराती हुई रोशनी (ठुमरी 34), गमकौआ जर्दा (59), अजगुत बात (74), दुधाहन गन्ध (81), बगलोल अदमी (105) कचराही बोली (118), दंतार हाथी (122), बटगमनी जवाब (123), फेनूगिलासी आवाज (140) एकटकिया फाटक (145), गिटपिटायी बोली (181), सगड़ गाडी (114), कनकन ठंडा पानी (108), कुटकुट काटने वाला कीचड़ (108) जैसे विशेषण नवई हैं, दैनिक बोलचाल के हैं और हिन्दी के लिए नितान्त अभिनव है।

इस भाषा में तथाकथित छायावादीपन लिए हुए विशेषणों का भी व्यवहार हुआ है, जिसकी ओर शिवप्रसाद सिंह ने निर्मल वर्मा की कहानियों पर विचार करते हुए 'विवेचना' (इलाहाबाद) की गोष्ठी में पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया था। पर सही माने में ऐसे विशेषण छायावाद से प्रभावित नहीं हैं, प्रत्युत 'छायावादी विशेषणों से साम्य रखते हुए अंगरेजीपन का उदाहरण प्रस्तुत करने वाले हैं। रूमानी प्रवृत्ति की देन होते हुए भी ये विशेषण पूर्णतः परिवेश-क्षम हैं।' निर्मल वर्मा द्वारा प्रयुक्त—मुलायम धूप (एक दुनिया समानान्तर, 175), लम्बे चौकोर शीशों (175), महीन चमकीली रेखा (175), परिचित मर्मर (175), फीका-सा अंधेरा (175), धूमिल आलोक (175), उद्भ्रान्त भावना

(175), चमकती हुई बारिश (175), उबलती हुई रोशनी (178), चिरन्तन खामोशी (161), कांपती छायाओं (178), मुर्दैला स्वर (188), उद्भ्रान्त पाखी (जलती झाड़ी, (102), धूमिल आकाश (104), पीले करारे पत्तों (107), हरा आलोक (6), भुरभुराए पत्ते (67), भूरी रेती (62), गूंगा प्रश्न (58), मुर्दैली हँसी (92), टूटती मरमराती-सी चीख (53) आदि ऐसे ही विशेषण हैं। उक्त दोनों ही प्रकार के प्रयोगों में कहीं-कहीं विशेषण का घनत्व-पूर्ण विधान हुआ है।

'विशेषणों के द्वारा 'नयी कहानी' की भाषा में सफल बिम्ब-नियोजन भी किया गया है। इसके सहारे चाक्षुष और श्रौत दोनों ही बिम्ब उजागर किए गए हैं —"*ऊबड़-खाबड़ धरती पर उनकी खामोश छायाएँ ढलती हुई धूप में सिमटने* लगी।'''लाल-भुरभुरे पत्तों की ओट में भूला हुआ सपना झांकता है, गुनगुनी-सी सफेद हवा, मार्च की पीली धूप, बहुत दिन पहले सुने हुए रिकार्ड की जानी-पहचानी ट्यून, जो चारों ओर फैली घास के तिनकों पर बिछल गयी है''' ' (जलती झाड़ी, 101) इस वाक्य में दस बार विशेषण के प्रयोग हुए हैं जहाँ अर्थोद्रेक पूर्णतः बिम्बस्तरीय है।

'नयी कहानी' में 'अँगरेजी के संज्ञा-शब्दों में भी हिन्दी प्रत्यय लगाकर विशेषण बनाए गए हैं। नरेश मेहता ने 'फ्रेम' से' फ्रेमित' (तथापि, 26), 'कान्वेंट' से 'कानवेंटीय' (एक समर्पित महिला, 98) आदि विशेषण बनाए हैं और उनका इस्तेमाल किया है। बंगला प्रभाव के 'सोनाली धूप' (11) जैसे विशेषण भी चलाए गए हैं। ऐसे विचलित प्रयोगों से हिन्दी भाषा की शक्ति बढ़ी है। अपने व्याकरण में दूसरी भाषाओं के शब्दों को ढाल लेना भाषा की उपलब्धि मानी जानी चाहिए। तत्सम-शब्द-बहुल लम्बे विशेषण—प्रलम्बित चौड़पन (तथापि, 8), प्रतीक्षित घाटियाँ (8) तथा आवृत्तिपरक विशेषण—पतली-पतली उंगलियां (10) आदि का व्यवहार भी इस भाषा में हुआ है।

विशेषण का संज्ञामूलक प्रयोग :

नये कहानीकार ने '*विशेषण के संज्ञा-मूलक प्रयोग* भी किए हैं। मार्के की पहली बात उनके द्वारा विशेषण से संज्ञा नहीं बनाकर विशेषण का ही संज्ञा-मूलक प्रयोग किया जाना है। जैसे—'कैसे दोनों में प्रगाढ़ आया?' (तथापि, 111) यहां '*प्रगाढ़*' की जगह '*प्रगाढ़ता*' का इस्तेमाल होना चाहिए था। पर ऐसा न कर 'प्रगाढ़ता' का भाव-सम्प्रेषण 'प्रगाढ़' से ही कर लिया गया। शायद प्रगाढ़ का वजनी उच्चार अर्थ-बोध में भी अपेक्षया वजनी सिद्ध हुआ हो! मार्के की दूसरी बात, कहीं विशेष्य अथवा संज्ञा को छोड़कर सिर्फ विशेषण का प्रयोग किया जाना और उसी से संज्ञा का अर्थ भी उजागर कर देना है। जैसे—''' 'कल्याणी उसके बारे में विषम सोच चुकी थी।' (एक समर्पित महिला, 32) यहां विषम के बाद वांछित-अपेक्षित शब्द को निगरित कर लिया गया है।

क्रिया-प्रयोग :

क्रिया के प्रयोग 'नयी कहानी' की भाषा को चार रूपों में उत्कृष्ट बनाते हैं पहले, अनुकरणात्मक क्रिया के प्रयोग से; दूसरे, विशेषण से क्रिया बना कर; तीसरे, संज्ञा से क्रिया बना कर और चौथे, सहायक क्रिया का लोप करते हुए प्रधान क्रिया को ही पूर्णता दे कर।

अनुकरणात्मक क्रिया के उदाहरण— धुधुआती रही (ठुमरी, 27), कचपचा उठा (32), कलकला उठी (43), टनटना रहा है (56), छनछना उठा (90) पटपटा उठी थी (115), सिरसिरा रही है (118), थसथसा जाते हैं (121) आदि हैं। ऐसे क्रिया-रूपों का कोई पर्याय नही होता। अर्थ-विवृति की दिशा मे इनकी सटीकता अद्‌भुत है।

विशेषणों से क्रिया बनाने का उदाहरण भाषा की एक नयी प्रवृत्ति का सूचक है। जैसे—बुढ़ा रहा था (तथापि, 54), कुण्णा रहा था (17), एकदम ही रिता गया (82) चतुरा न करो (15), उजलाने लगे (13) आदि। ऐसे क्रिया-प्रयोग से भाषा की समास-शक्ति बढी है तथा शब्दों का अपव्यय कम हुआ है।

संज्ञा से बनी हुई क्रिया के उदाहरण भी द्रष्टव्य हैं—प्रवाहेगी (तथापि,' 75 नही विश्वासने (82), अध्यापती है (113), तँबिया रहा था (114) आदि। प्रचलित नामधातु के परे ये प्रयोग अभी भले कर्ण-प्रिय नही लगते हों पर इससे भाषा जड़ियाने की अपेक्षा विकास-पथ पर बढ़ रही है, इसमें कही कोई सन्देह नहीं है।

सहायक क्रिया का लोप करते हुए प्रधान क्रिया को पूर्णता देने के दृष्टान्त — प्रवेशा ('तथापि,' 36), उराग्नी (48), सहनता (48), सम्पन्नती (48), निषेधती (50) आदि हैं। सहायक क्रिया के बिना प्रधान क्रिया के ऐसे पूर्ण प्रयोग हिन्दी के प्राचीन गद्य मे भी मिलते हैं। काव्य-ग्रन्थों की टीकाओं के गद्य में ऐसे प्रयोग हुए हैं। हिन्दी के नये कहानीकारों ने इस प्रकार प्रयोग की छिन्न परम्परा को नये सिरे से प्रारम्भ कर न केवल विधागत रूप मे, बल्कि भाषागत रूप में भी हिन्दी का आगार भरा है।

आचार्य शिवपूजन सहाय ने 'परिषद्-पत्रिका' मे अपने 'तुलसी-प्रयुक्त क्रियाएँ' शीर्षक लेख में ऐसे अनेकानेक उदाहरण देते हुए लिखा था कि 'तुलसी-प्रयुक्तक्रियाओं के निम्नांकित उदाहरणों से प्रेरणा लेकर हिन्दी के कथाकार, निबन्धकार, कवि तथा नाटककार आगे बढ़ने का यदि उपक्रम करें तो हिन्दी का कोई अपकार न होगा।[1] नये कहानीकारों मे नरेश मेहता ने 'तथापि' में आचार्य जी के इस

1. शिवपूजन सहाय, तुलसी प्रयुक्त क्रियाएँ, परिषद् पत्रिका (पटना : बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, वर्ष 1, अंक-1, अप्रैल 1961), पृष्ठ 13-14

दिशा-निर्देश से पहले ही ऐसे प्रयोग किए थे। ओंकारनाथ श्रीवास्तव ने 'काल सुन्दरी' में भी ऐसे प्रयोग किए हैं। साठोत्तरी पीढ़ी के कथाकारों मे सुरेश सिन्हा ने भी 'कई आवाजों के बीच' की कहानियों में ऐसे प्रयोग किए हैं। बड़ी बात यह है कि हिन्दी की अन्य किसी भी विधा में ऐसे प्रयोग नही हुए। स्वयं तुलसी ने जिस काव्य-विधा मे 'सन्मानी', 'निमंई', 'प्रबोधा,' 'दृढाई' आदि शब्दों के प्रयोग किये थे यह काव्य-विधा भी ऐसे समृद्ध प्रयोग करने से चूक गयी।

क्रिया-विशेषण प्रयोग :

नयी कहानी की भाषा मे अनुकरण मूलक क्रिया-विशेषण के प्रयोग अवरेखित करने योग्य हैं। 'वेशी भचर-भचर मत करो' (ठुमरी,' 114), 'अभी चुच-चुच कर उठे हैं' (143), 'पटापट पीटता जा रहा है' (144), 'गाड़ियां एक साथ कचकचा कर रुक गयीं' (113), 'सन्न-सन्न बोलता था पॅचलैट (86) 'फुच्च-फुच्च कर हँसते क्यो हैं, (31) 'छुर-छुर गिरता रहता है पानी' (एक आदिम रात्रि की महक, 42), 'थसथसा कर थक गये' (124) जैसे वाक्यों में प्रयुक्त अनुकरणमूलक क्रिया-विशेषणों के अर्थ को किसी अन्य पर्याय से व्यक्त नही किया जा सकता।

कारक-प्रयोग :

यहाँ कारक प्रयोग में भी नवीनता है। यह नवीनता दो प्रकार से आई है। कहीं तो कारक-परसर्गों का लोप कर नवीनता लायी गयी है और कहीं कारक-परसर्ग का अनावश्यक प्रयोग करके। लोप के उदाहरण प्रायः कर्म, संबन्ध और अधिकरण परसर्गों के हैं :

1. कर्म परसर्ग का लोप—'प्रसन्न जल-भरी आँखों से विपिन ने पारस देखी थी और संतोष की झाई वाले नयनों से पारस ने विपिन निहारा था।' (तथापि, 120)

2. संबन्ध परसर्ग का लोप—'पारस नयन रँगे हुए सहसा क्षण भर कहीं खो गये।' (वहीं, 115)

3. अधिकरण परसर्ग का लोप —'इसलिए अवकाश वेला पड़ता हूँ।' (96)

इन प्रयोगों मे उपलब्धि केवल अधिकरण परसर्ग के लोप में मिल सकी है। सजीव कर्म के बाद परसर्ग का लोप उचित नहीं है। संबंध परसर्ग का लोप भी भ्रम में डालने वाला है, जहां कर्ता की स्पष्ट पहचान नहीं हो सकती है। कारक-परसर्ग के अनावश्यक प्रयोग के उदाहरण सामान्यतः कर्ता के 'ने' चिह्न के पाये जाते हैं। इन पर पंजाबी 'ने' प्रयोग की स्पष्ट छाप है। जैसे 'तभी किसी ने भीड़ मे चिल्लाया।' (तथापि,' 27)

मूर्त-अमूर्त शब्द-प्रयोग :

'नयी कहानी' की भाषा में अमूर्त और मूर्त दोनों ही प्रकार के शब्द-प्रयोग हुए हैं। इनमें मूर्त शब्द-प्रयोग की संख्या अधिक है; जो अमूर्त शब्द-प्रयोग हैं भी, उनको कहीं तो विशेषण और कहीं क्रिया के सहारे मूर्त धरातल पर ही उतार दिया गया है। उदाहरण-स्वरूप, 'स्मृति' का प्रयोग करते हुए उस पर 'उद्भ्रांत पाखी' का आरोपण (जलती झाड़ी, 102) और 'सन्नाटा' के पहले 'कांपता-सहमा सा' (58)विशेषण लगाकर उसका किया गया मूर्तन द्रष्टव्य है। मूर्त शब्दों के प्रयोग दो रूपों में हुए हैं। एक तो सामान्य वर्णन-प्रणाली के लिए, दूसरे बिम्ब-प्रतीकात्मक प्रणाली के लिए। सीधी वर्णनात्मकता निरीक्षण का व्यापार मानी जाती है, पर बिम्बीय प्रतीकात्मकता प्रातिभ उन्मेष का। शिवप्रसाद सिंह द्वारा प्रयुक्त गोला गहर (इन्हें भी इन्तजार है, 89) घोंचा मैना (89), लोटन कबूतर (89) जैसे विशेषण-मूलक शब्द; फेंक-फेंक कर (89) घो-घों कर (92) उठा-उठा कर (92) जैसे पूर्वकालिक क्रिया-मूलक शब्द; धब्ब (101), पिच से (98), हुरं से (96), ठांय से (91) जैसे क्रिया-विशेषण-मूलक शब्द; चरनी (95), दौरी (92), सोंटा (93), टिकठी (93), थूथन (95), बीया (99) जैसे संज्ञा-मूलक शब्द वर्णनात्मक मूर्त गद्य के उदाहरण हैं। बिम्बीय प्रतीकात्मकता वाले मूर्त शब्द प्रयोग में—किलकते हुए नये-नये जन्मे बच्चे (19), बटुरे रहने वाले गोल-गोल गूलर (91), कूद जाने की अदा में खड़ा सरकसी जवान (93), टुकुर-टुकुर देखते बया के बच्चे (92) आदि के उपमान मूलक प्रयोग प्रातिभ उन्मेष-पूर्ण भाषा के प्रमाण हैं।

नये कथाकारों ने हलवाई, बढ़ई, लुहार, गाड़ीवान, रेलवे स्टेशन में काम करने वाले खलासी-मजदूर आदि की विशिष्ट शब्दावली का भी व्यवहार किया है, जिसमें इन लोगों के दैनिक व्यवहार के शब्द आये हैं। हलवाई की छेने (तथापि 55), गुल्ले (55), मांड़ा जाना (55), चासनी के तार (55) जैसी शब्दावली; बढ़ई-लुहार की आड़ा (ठुमरी, 92), हरेस (92), रुखान (92), धौंकनी (92) जैसी शब्दावली; गाड़ीवान की टिकटी (ठुमरी, 114), वेलाग (114), दुलकी चाल (114), धुरी (114), लदनी (115), अगुआ (110), पिछुआ (115), दुआली (144) जैसी शब्दावली तथा रेलवे के खलासी-मजदूर की 'इसपेसल बायलर' (एक आदि रात्रि की महक, 45) 'थरू पास' (47), 'डिसटेन सिगल' (49) आदि शब्दावली 'प्रयुक्ति' के बतौर बहुतायत से प्रयुक्त हुई है।

पदरूपों और सन्धि के स्वच्छन्द प्रयोग :

'नयी कहानी' की भाषा में पद-रूपों के प्रयोग में स्वच्छन्दता बरती गयी है। कुछ पद मुख-सुख के कारण उच्चरित रूप में व्यवहृत हुए हैं। जैसे—'चाय-

बगान' का 'चावगान' (तथापि, 8) तथा 'मुँह अँधेरे' का 'मुँहधेंरे' प्रयोग (एक समर्पित महिला, 31)। साठोत्तरी पीढ़ी के कथाकारों में महेन्द्र भल्ला ने 'एक पति के नोट्स' में कई ऐसे शब्दों के प्रयोग किये हैं, जो हिन्दी की परम्परित प्रकृति से मेल नहीं खाते। इसका चलन भी हिन्दी में पहले नहीं था, पर इससे हिन्दी का विकास स्पष्ट होता है। प्रतिप्यार (4), हैरानीजनक (34), हमदर्दीहीनता (37), लड़कीहीनता (39), पानीहीन (43) आदि ऐसे ही प्रयोग हैं। तीसरे प्रकार के स्वच्छन्द शब्द-प्रयोग व्याकरण-सम्मत नहीं हैं। जैसे, निर्मल वर्मा द्वारा प्रयुक्त ललाहट (जलती झाड़ी, 85), कराहट (89); महेन्द्र भल्ला द्वारा प्रयुक्त लम्पटता (एक पति के नोट्स, 12), नरमाहट (36), कौतुकता (42), चैतन्यता (103); नरेश मेहता द्वारा प्रयुक्त सौजन्यता (एक समर्पित महिला, 34), नक्काशित (75); झकझोरित (114) आदि शब्द। चौथे प्रकार के स्वच्छन्द प्रयोग व्याकरणतः तो शुद्ध हैं, लेकिन उनका प्रयोग एक नयापन ले आया है। जैसे 'निरुत्तरा' की जगह सुरेश सिन्हा द्वारा 'अनुत्तरा' का प्रयोग (कई आवाजों के बीच, 49)। पाँचवें प्रकार के प्रयोग में स्वच्छन्द सन्धि का नव्य निदर्शन प्रस्तुत किया गया है। जिस प्रकार 'प्रपद्यवाद' में सन्धि के नये प्रयोग किये गये हैं; 'और उसे' को 'औरुसे' लिखा गया है, उसी प्रकार 'नयी कहानी' में 'हमहीं' को 'हम्हीं' (कई आवाजों के बीच, 40) तथा 'हिम आधियों' को 'हिमांधियों' (तथापि, 3) लिखा गया है।

अपशब्दों के प्रयोग :

कथ्य को यथार्थ बनाने के लिए तथा अर्थ को सही परिप्रेक्ष्य में तीव्रता देने के लिए 'नयी कहानी' में अपशब्दों के किये गये प्रयोग भी महत्त्वपूर्ण हैं। रेणु ने साला (ठुमरी 9), चोट्टा (27), हरजाई, छिनार (43), सतबेटा बिऔनी (43), मुंहझौंसा (59), ससुरी (60), पतल जीभी (95), भाई खोकी (157), पुत खोकी का भतार (158), लुक्कड़ (161) आदि; शिवप्रसाद सिंह ने हरामी; सूअर का पिल्ला (इन्हें भी इन्तजार है, 54), मेहरमच्छा (59), कुत्ते की जम्मी (68), चौपट, कुलच्छन (96) बहिरबंड (102), चूल्हे भाड़ में जाय (119), भकचोन्हर (146) तथा कृष्णा सोबती ने बहन-चोद ('नयी कहानियाँ' जनवरी 67 में प्रकाशित 'यारों के यार' कहानी, (पृष्ठ-33), चूतियानन्दन (30), हगता है साले हगता है (13), चुदक्कड़ (35) जैसे अपशब्दों का व्यवहार किया है। 'नयी कहानी' में शायद ही कोई ऐसा कथाकार हो, जिसने अपशब्दों के प्रयोग न किये हों। रेणु और शिवप्रसाद सिंह के प्रयोग स्वाभाविक ग्राम्य गालियों के प्रयोग हैं, पर कृष्णा सोबती के प्रयोग आक्रोशपूर्ण भाषा के हैं, जिनमें अश्लीलता सीमान्त पर पहुँच गयी है। आज लम्बी-लम्बी डिग्रियाँ लेने के बाद

बैंक, एल० आई० सी०, सेक्रेटेरियट प्राइवेट, फर्म आदि में किरानी की जिन्दगी जीने के लिए बाध्य नवयुवक आम तौर पर आक्रोश की भाषा का इस्तेमाल करते हैं। कृष्णा सोबती ने इस अछूते वर्ण्य को भाषा दी है।

वैयक्तिक शब्द प्रयोग :

(क) तकियाकलाम के प्रयोग :

'नयी कहानी' की भाषा तकिया-कलाम के प्रयोग की भी भाषा है। इससे पात्रों के बोलने की सूक्ष्मता, दुर्बलता, दृढ़ता आदि अवरेखित हुई है। कथाकारों ने पात्रों की निरर्थक शब्दावली में भी सांकेतिक अर्थ भरा है तथा चरित्र को विविधतः प्रकाशित करने के लिए इसका सहारा लिया है। रेणु द्वारा प्रयुक्त हिस्स (ठुमरी, 115), इस्स (112, 126, 138), ए-ह् (137), धेत्त (47), मुदा (49), ओ-ओ (104); अमरकान्त द्वारा प्रयुक्त 'हायदैया, (जिंदगी और जोंक, 78), राजेन्द्र यादव द्वारा प्रयुक्त 'हरिओम, (किनारे-से-किनारे तक, 311), हेऽऽऽ (55-65), मोहन राकेश द्वारा प्रयुक्त 'अम् ' अ '',(एक और जिंदगी, 84, 85) आदि शब्द तकिया-कलाम के सुन्दर उदाहरण हैं।

(ख) वैयक्तिक शब्द और कथन-भंगी के प्रयोग :

इस भाषा में शब्द और कथन-भंगी के वैयक्तिक प्रयोग भी मिलते हैं। 'सुबह के बादल' में शिवप्रसाद सिंह ने ओठों को गोल बना कर किये गये 'पू' के (इन्हें भी इन्तजार है, 93), राजेन्द्र यादव ने रोमन अंक 'आठ' (8) के आकार के ढीले जूड़े के (किनारे-से-किनारे तक, 24), रमेश बक्षी ने परीक्षा-कक्ष में निरीक्षक की चहलकदमी से बन रहे अँगरेजी 'एस' (s) के (मेज पर टिकी हुई कुहनियाँ, 90) ऐसे ही वैयक्तिक प्रयोग किये हैं। रेणु में भी 'अयि' (एक आदिम रात्रि की महक, 176) का वैयक्तिक प्रयोग द्रष्टव्य है। कथन-भंगी के वैयक्तिक प्रयोग में पोपले मुँह के ओठों को एक ओर मोड़ कर ऐंठती हुई बोली के ये शब्द—'अर-रें-हाँ-हाँ बी-र-र-ज्जू की मैं ' या के आगे नाथ औरं-पीछे पगहिया ना हो सब्ब ना-आ-आ' (ठुमरी, 152) देखे जा सकते हैं।

लेखकीय-पात्रीय शब्द प्रयोग :

'नयी कहानी' की भाषा के शब्द-प्रयोग में सबसे खलने वाली बात पात्रीय भाषा में पच सकने वाले अव्याकरणिक तथा अपभ्रष्ट शब्दों का लेखकीय भाषा में प्रयोग है। नरेश मेहता द्वारा बत्ती के 'बुझने' के अर्थ में 'बुता' शब्द का प्रयोग (तथापि, 123) हुआ है। रमेश बक्षी और कमलेश्वर ने 'प्रत्येक', 'हर एक' और 'हर' के साथ बहुवचन-परक विशेष्य और क्रिया का व्यवहार (द्रष्टव्य-मेज पर टिकी हुई कुहनियाँ, कमलेश्वर की श्रेष्ठ कहानियाँ, 93) किया है।

निर्मल वर्मा और नरेश मेहता ने 'बावजूद' के साथ 'भी' का गलत प्रयोग (द्रष्टव्य-एक दुनिया समा० 166; तथापि-27) किया है। निर्मल वर्मा द्वारा 'वापस लौटना' शब्द का (एक दुनिया समानान्तर, 181) तथा सुरेश सिन्हा द्वारा 'अपनी निजी व्यवस्था' का एक साथ व्यवहार भी (कई आवाजों के बीच, 38) लेखकीय भाषा में ही हुआ है। रेणु भी ऐसे दोष से मुक्त नहीं है। उन्होंने लेखकीय भाषा में अव्याकरणिक प्रयोग तो नहीं, पर अपभ्रष्ट शब्दों के प्रयोग किये हैं। कुछ कथाकारों ने तो बँगला शब्दों का अपनी कहानियों में मथा-अर्थ प्रयोग किया है, जहाँ हिन्दी की अर्थवत्ता खंडित हो गयी है। जैसे—'वह आसन्न रह गयी।' (तथापि, 55) तथा 'उस मीनार को और भी नितान्त बना दिया था। (एक समर्पित महिला, 107) यहाँ 'आसन्न का अर्थ 'सन्न' हो जाना' और 'नितांत' का अर्थ 'एकांत' है। इस भाषा में लेखकीय भाषा के पूर्ण मार्जन का अभाव खलता है; जबकि कहानी के भाषा-सर्जन और भाषाध्ययन की पहली महत्वपूर्ण शर्त लेखकीय और पात्रीय भाषा के वैभिन्न्य को ध्यान में रखना है। लेखक की भाषा सामान्यतः मार्जित होती है और पात्रों की भाषा यथार्थतः दैनिक जीवन में प्रयुक्त ध्वनि, शब्द, वाक्य आदि के व्यवहारों से भरी, फलतः व्याकरणहीन और अपभ्रष्ट भी। कथा-भाषा के ये दोनों पहलू मिल कर ही किसी कथाकार को सर्जनात्मक भाषा की सामर्थ्य प्रदान करते हैं।

वाक्यगत प्रयोग :

वाक्यीय दृष्टि से 'नयी कहानी' की भाषा में एक ओर वाक्य-विन्यासगत प्रयोग हुए हैं तो दूसरी ओर शब्दों और वाक्य-खंडों की आवृत्ति से गद्यराग उत्पन्न किये गये हैं। एक ओर ताजे और अछूते विविधस्तरीय बिम्बों के प्रयोग हुए हैं तो दूसरी ओर लोकोक्तियों के। मुहावरों की नवीनता के साथ-साथ मौलिक अनुभूत सूक्तियाँ भी आयी हैं। एक ओर मिथकीय वाक्यों के प्रयोग हुए हैं तो दूसरी ओर वाक्य में क्रिया के पूर्ववर्ती और कारक-परसर्ग, संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया-विशेषण, पूर्वकालिक क्रिया, वाक्यांश आदि के परवर्ती प्रयोग हुए हैं। ऐसा कहीं शैली की दृष्टि से किया गया है तो कहीं कथ्य पर बल देने के लिए, और कहीं संलापगत वाक्य के प्रकृत रूप की रक्षा के लिए। कहीं अँगरेजी वाक्यों का प्रयोग हुआ है, तो कहीं बंगला, मराठी, पंजाबी जैसी प्रान्तीय भाषा के वाक्यों का प्रयोग; कहीं गँवई बोली के वाक्यों का प्रयोग हुआ है तो कहीं बच्चों की तोतली बोली वाले वाक्यों का; साथ-ही-साथ गैर-जानकार द्वारा बोले गये हिन्दी वाक्यों का भी प्रयोग हुआ है। गैर-जानकार की कोटि में एक ओर अँगरेज और बँगाली आते हैं, दूसरी ओर देहाती बोली बोलने वाले अपढ़-अशिक्षित व्यक्ति! इन सबसे परे राजकमल चौधरी जैसे कथाकार के वाक्य-प्रयोग हिन्दी की मार्जित प्रकृति के हैं, जो चरित्रों पर आधारित हैं। यहाँ अत्यन्त स्वाभाविक

और अनुकूल भाषा का प्रयोग हुआ है। उन्होंने जिन विविध चरित्रों के मुंह से वाक्य कहवाये हैं, वे ठीक वैसे ही हैं, जैसा वे अपनी सही जिन्दगी में बोलते हैं, पर उनकी भाषा की प्रकृति परिनिष्ठित-संयमित है। इनके अतिरिक्त भी चरित्रों के संस्कार, परिवेश, उनकी शिक्षा, वृत्ति आदि पर 'नयी कहानी' की भाषा में अधिकाधिक ध्यान दिया गया है। मन्नू भंडारी जैसी लेखिका की वाक्य-संरचना पूर्णतः व्याकरणिक है। 'नयी कहानी' के वाक्यों का गठन लघु से विस्तृत-शृंखल तक है, वह क्रियाहीन है और क्रियापूर्ण भी, विशेषण से सर्वथा वियुक्त है और युक्त भी। कथ्य की तीव्रता को ध्यान में रखते हुए कर्तृ-वाच्य से कर्मवाच्य तक व्यवहृत है। किसी सर्वनाम के लिए कभी गंभीर और कभी व्यंग्यात्मक संकेत रूप में व्यक्तिवाचक संज्ञा का ही व्यवहार है। कुछ कथाकार अपनी वाक्य-शृंखला में निक्षिप्त वचन और उपवाक्यों के प्रयोग के भी आग्रही हैं। ऐसे निक्षिप्त वाक्यों में गीत-लोकगीत की छोटी कड़ी से लम्बी कड़ियाँ तक अन्तर-पाठीयता (Inter-textuality) के कौशल को उपस्थित करती हैं। पाठीय वाक्यों में यति और गति का भी सम्यक् निर्वाह है। अनुच्छेदीकरण भी कथ्य और भाव के अनुरूप हैं।

इस भाषा में देहात में औरतों के बीच बोली जाने वाली सांकेतिक वाक्यावली—चि गो, चि घ्ऽऽ, चिन (ठुमरी, 87), रस्सी के गोल में उछल-उछल कर अपने को पैठाती-निकालती और गिनती करती लड़की की वाक्यावली—एक्दो, तीन्चार, पांच्छे, सात्ताठ, नौदस्स, ग्यारे-बारे (मेज पर टिकी हुई कुहनियाँ, 155), देहाती गिनती की पदावली—दो कम दो बीसी आम (इन्हें भी इन्तजार है, 93), रोते बच्चे को चुप कराने की पदावली—या-यां-या-या-या-या-या-या (मेज पर टिकी हुई कुहनियाँ, 17), तथा बेबी के पेट पर ओंठ रख कर उचारने वाली पदावली—ब-ब-ब-बा-बा (वही, 20) प्रयुक्त हुई हैं।

अंग्रेजी वाक्य-संरचनात्मक प्रयोग :

'नयी कहानी' के वाक्य-गठन पर हिन्दी की अन्य गद्य-विधाओं की तरह ही अंग्रेजी वाक्य-संरचना का प्रभाव पड़ा है। 'असफल बहाने' की जगह 'लँगड़े बहाने' (मेरा दुश्मन, 129), 'यात्रा के लिए जाने का निर्णय किया' की जगह 'यात्रा पर जाने का निर्णय लिया' (एक समर्पित महिला, 116), दो वाक्यों को मिलाने में 'जिसका' की जगह 'कि इसका' (95) तथा 'मैं वह गन्दी मक्खी हो उठा था' (81), 'नयी आदत ने जन्म लिया' (तथापि 96) आदि वाक्यों के प्रयोग, मिश्र वाक्यों के अधिकाधिक प्रयोग और 'डायरेक्ट नैरेशन' की जगह 'इनडायरेक्ट नैरेशन' के प्रयोग अंग्रेजी प्रभाव के उदाहरण हैं। प्रधान वाक्यों के बाद वाक्यांशों के प्रयोग भी अंग्रेजी प्रभाववश हुए हैं। फलतः 'हवा छत पर चलती है', जैसे हिन्दी के सरल वाक्य को 'द विंड ब्लोज ऑन द रूफ' के आधार पर 'हवा चलती है छत पर' (जलती झाड़ी, 55) लिखा गया है।

आवर्तन-मूलक गद्यरागात्मक प्रयोग :

शब्दों और वाक्यांशों की आवृत्ति से प्रायः कथाकारों ने गद्यराग का सर्जन किया है। ये आवृत्तियाँ कई प्रकार की हैं। निर्मल वर्मा जैसे कथाकार में तो आवृत्ति एक विशेष सांकेतिक लय उत्पन्न करती है, जिसके नौ प्रकार हैं—

1. सामान्यावृत्ति (पैलीलाजिआ)—'लाल-लाल-से गढ़े, छोटे-छोटे चाँद-से गढ़े' (जलती झाड़ी, 98)।

2. अन्त्याद्यावृत्ति (एनेडिपलोसिस)—'फिर चुनचुनाता-सा दर्द, दर्द को काटती एक साँस, साँस पर मरती हुई एक निहायत बेचैन सिसकी, और सिसकी को रास्ते में ही तोड़ती वह चीख।' (वही, 18)।

3. आद्यावृत्ति (एनेफोरा)—'जैसे मैं एक बहुत पेचीदा रहस्यमय ढंग से उस पर आश्रित होऊँ, जैसे उसके जाने भर से ही कुछ खो दूँगा'''जैसे उसका यहाँ रहना खुद मेरे रहने से जुड़ा है।' (वही, 82)।

4. आन्तिक आवृत्ति (एपिस्ट्रोफे)—'शम्मो भाई को नहीं मालूम कि वह उनके हाथ को देख रही है, हवा मे उड़ती हुई उनकी टाई, उनकी झिपझिपाती आँखों को देख रही है।' (98)

5. तीव्रभाविक आवृत्ति—'वह रोएगी, बिलकुल रोएगी।' (99)

6. विविध व्याकरणिक आवृत्ति (पोलियोपटोटन)—हम सबके हाथों में एक-एक थैला था, जिसमें हमने रात की ड्यूटी के कपड़े, खाने का सामान बाँध रखा था। हममें से किसी के लिए यह विश्वास करना कठिन था कि हमें अगले ट्यूब से वापस लौट जाना होगा।' (105)

7. पूर्व-मध्य-आवृत्ति (इपेनडोस)—'एक पब, एक नाई की दूकान और दो जेनरल स्टोर।' (142)

8. पूर्व-पर-आवृत्ति (इपेनलेप्सिस) –'क्या याद आ गया था—वह मुझ पर झुक आया जैसे अभी गले पर लटक जाएगा—बताओ, क्या याद आ गया था?' (119)

9. मिश्र-आवृत्ति—'वह क्या-कुछ है जो हमें चलाये चलता है, हम रुकते हैं तो भी अपने बहाव में वह हमें घसीट लिये जाता है? लतिका से आगे कुछ नहीं कहा गया, जैसे जो वह कहना चाह रही है वह कह नहीं पा रही है, जैसे अँधेरे मे कुछ खो गया है, जो मिल नहीं पा रहा है और शायद कभी नहीं मिल पाएगा।' (एक दुनिया समानान्तर, 17।)

इस प्रकार निर्मल वर्मा अपनी कहानियों में ऐसी बहुविध आवृत्तियों से लयवत्ता का अभूतपूर्व सर्जन करते हैं, जिससे उनकी भाषा में संगीत के राग-धर्म और अर्थ-धर्म की निष्पत्ति होती है। इन्हीं जैसी कई आवृत्तियाँ कुछ अन्य कथाकारों की भाषा में भी हुई हैं, पर उनकी संख्या कम है। नरेश मेहता की कहानियों

में आन्तिक आवृत्ति (तथापि, 19) तथा रमेश बक्षी की कहानियों में अन्ताद्या-वृत्ति (मेज पर टिकी हुई कुहनियाँ, 7) के एक-दो सुन्दर उदाहरण मिलते हैं।

कमलेश्वर आदि कथाकारों द्वारा आवृत्ति के अन्यान्य प्रयोगों से भी गद्य-राग को अनूठे रूप में सिरजा गया है। कहीं गद्य-राग की विकारी आवृत्ति है—'कभी कोई अपनी जरूरत से बुलवा लेता और कभी बेजरूरत भी' (राजा निरबंसिया, 1), तो कहीं द्वि-आवृत्ति—'घड़ी हथेली पर रखती तो जंजीर हथेली के उस पार झूल जाती' (वही, 3); कहीं त्रि-आवृत्ति—'ये कुछ बोलती क्यों नहीं, देर से आने पर डाँटती क्यों नहीं, कुछ पूछती क्यों नहीं ?' (वही, 3), तो कहीं चतुर्थावृत्ति—'जब वापस आता तो धूप चढ़ आयी होती, दोपहरी तपती होती और माँ पहिया पर सूत रखे हाँफते-हाँफते खटती होती, बालों की लटें रूखी-सी झूलती होतीं' (वही, 4); कहीं पंचावृत्ति है—'पर कहीं कुछ था, जो उसे बुलाता था, ढाढ़स बँधा देता था, उसकी आँखों में पानी का सैलाब लाता था और सोख लेता था' (वही, 13), तो कहीं षष्ठावृत्ति—'एक बेहद उदास शहर है। उस शहर में स्कूल है, रेलवे स्टेशन है और अस्पताल भी है। माँ दूध का प्याला लिये बैठी है और बाप फाइलें सिराहने रखे सो रहा है' (खोयी हुई दिशाएँ, 122); कहीं सप्तावृत्ति है—और तब चन्दर ने पहली बार उसे बिल्कुल अपने पास महसूस किया था और उसके माथे पर रंग से बिन्दी बना दी थी और कई क्षणों तक मुग्ध-सा देखता रह गया था। और अनजाने ही उसने होंठ इन्द्रा के माथे पर रख दिए थे। इन्द्रा की पलकें झँप गयी थीं और रोम-रोम से गंध फूट उठी थी। उसकी उँगलियाँ चन्दर की बाँहों पर थरथराने लगी थीं और माथे पर आया पसीना उसके होंठों ने सोख लिया था। रेशमी रोएँ पसीने से चिपक गये थे और उन उन्माद के क्षणों में दोनों ने ही प्रतिज्ञा की थी...' (खोयी हुई दिशाएँ, 89) तो कहीं विरोधी पदों की आवृत्ति—'इस हाथ ले उस हाथ दे' (राजा निरबंसिया, 1); कहीं समध्वन्यात्मक पदावृत्ति है—'माँ कोठरी से निकलती, आसन बिछाती और खाना परोस कर देवा को आवाज देती' (वही, 3) तो कहीं विशेष पदावृत्ति—'इसीलिए सोचता हूँ जैसा वहाँ तैसा यहाँ (वही, 7); कहीं अनावृत्ति में आवृत्ति है—'साईं की कोठरी पनाहगाह भी है और शिकारगाह भी।' (वही, 44) तो कहीं 'था-था-था-थी' की लयात्मक आवृत्ति (माँस का दरिया, 16)।

बिम्बात्मक उपवाक्यों, वाक्यों के प्रयोग :

'नयी कहानी' की भाषा में ताजे, अछूते विविधस्तरीय बिम्बों के प्रयोग हुए हैं। ये बिम्ब सामान्य और उपमानमूलक दोनों ही प्रकार के हैं। सामान्य बिम्ब कहीं क्रिया के सहारे और कहीं विशेषण के सहारे उजागर किये गये हैं।

प्रकार की दृष्टि से ये चाक्षुप और श्रौत तथा प्रक्रिया की दृष्टि से अयुत और संयुत हैं। ये विम्ब—1. नक्षत्र-परक—चांद, लाल डूबता सूरज, तारे (शिवप्रसाद सिंह); 2. प्रकृति-परक—नीरस बादलों का झुंड, भूरे बादल, इन्द्र-धनुप, गाढ़ी चाँदनी (वही), गमकती घाटी, नीली झील, चढ़ी नदी, थरथराता पानी (कमलेश्वर); 3. पशु-परक—बन्दर के बच्चे, चिग्घाड़ते हाथी, पालतू हाथी, बाघिन, सूअर, कुत्ते, बिल्ली, बकरी, गाय, बैल, हरिण, साही (शिवप्रसाद सिंह) भेंड (कमलेश्वर); 4. सर्प-परक—भूरे अजगर, अधमरे सांप की लहर, मरे सांप का रेंगना, घिनौना सांप, नागिनों की आवाज, केंचुल छोड़े नागिन की बिछलन (शिवप्रसाद सिंह), 5. मत्स्य-परक—मछली की बिछलन, रोहू का मुंह, रोहू का मुलायम गलफर, रोहू की पीठ, उसकी चमकदार त्वचा (शिवप्रसाद सिंह), 6. पक्षी-परक—नुचे पछी, बाज, खंजन, पपीहे, कबूतर, सुरखाब, तोता, सारस, बत्तख, मुर्गी, कौआ, गिद्ध (शिवप्रसाद सिंह); अबाबील, हंस, चील, बगुला (कमलेश्वर), 7. जीव-परक—चूहा, छिपकली, बिच्छू, गिलहरी, चमगादड़ (शिवप्रसाद सिंह); 8. कीट-परक—मकड़ा, मधुमक्खी, भौरा, तितली, इन्द्रगोप, टिड्डी (शिवप्रसाद सिंह); 9. पौधा-परक—कुकुरमुत्ता, नागरमोथा, रेंड (शिवप्रसाद सिंह); नरकुल, केला (कमलेश्वर); 10. पदार्थ-परक—पतंग (गुड्डी), कुमकुम, लासा, इत्र का फाहा, गुब्बारा, नन्हा तिनका, खूटा, रेंड का बीज, शरीफे का बीज और सूरजमुखी का बीज (शिवप्रसाद सिंह); 11. वृक्ष-परक—फटे बांस, घुनलगा बांस, नागफनी, गुलचीन की काली, नंगी डाल, पीपल की छाया (शिवप्रसाद सिंह); 12. फल-परक—करौंदे की ललाई, शरीफे के दाने, पेशावरी बादाम, टमाटर (शिवप्रसाद सिंह); 13. पुष्प-परक—जटामासी का फूल, कुईं का फूल, महुए का फूल, केतकी, पारिजात, गुलाब के फूल, करेम के बैंगनी फूल, कपास के फूल (शिवप्रसाद सिंह); चमेली के फूल, कमल का फूल, (कमलेश्वर) 14. धातु-परक—लोहा, अबरख, रांगा, सीसा (शिवप्रसाद सिंह); पीतल, पारा, ताँबा (कमलेश्वर); 15. यंत्र-परक—मशीन का पुर्जा (शिवप्रसाद सिंह); 16. रोग-परक—चेचक, लम्बी बीमारी (शिवप्रसाद सिंह); 17. अस्त्र-शस्त्र-परक—बन्दूक, धनुप, भाला (कमलेश्वर), तीर (शिवप्रसाद सिंह); 18. वर्ण-गंध-परक—उघड़े रंग की उदासी, अगरबत्ती की गंध, कचनार पत्तियों से निकली गंध (शिवप्रसाद सिंह); 19. मिथकीय-बिम्ब—यमराज की भैंस, लोक-कथा की देवी, अलादीन के चिराग वाला जिन्न, दैत्य, सुरसा, राकस, भूत (शिवप्रसाद सिंह) और 20. मनुष्य-परक—वैयक्तिक रूप मे विभिन्न शारीरिक अवयव—जलती हुई आँख, मुर्दे की आंख, कुआंरी मांग, पारिवारिक रूप मे नये जन्मे बच्चे, नयी लाजवन्ती बहू और सामाजिक रूप मे रोजमर्रे की हलचल तथा दुनियादारी की यथार्थता आदि (शिवप्रसाद सिंह) हैं।

'नयी कहानी' की भाषा में बिम्बों के व्यापक प्रयोग के साथ-साथ घनत्वपूर्ण प्रयोग भी हुए हैं। इसका सम्बन्ध बिम्ब की रचना-प्रक्रिया से है। एक ही बिम्ब प्रस्तुत करने में कहीं-कहीं कथाकार ने विशेषण, क्रिया और उपमान तीनों का ही सहारा लिया है। 'नयी कहानी' का बिम्ब-विधान प्रायः कथ्य को स्पष्ट करने के लिए हुआ है। इन बिम्बों ने सामान्य अर्थ को तीव्रता, भास्वरता, चित्रवत्ता और स्थायिता दी है। उपमान-मूलक बिम्ब सादृश्य-ज्ञान को संपुष्ट करते हैं और अर्थ-बोध को सटीक तथा प्रसरणशील बनाते हैं। इस भाषा मे प्रयुक्त बिम्ब अधिकांशतः मूर्त्त हैं, तथा स्वप्निल और काल्पनिक न होकर जीवन से उठाये हुए हैं। वाक्यों का प्रयोग भी विविधतः हुआ है। अप्रस्तुतों का विधान करते हुए शिवप्रसाद सिंह ने 'की तरह' 'जैसे', 'मानो', 'सा-से-सी', 'गोया'; कमलेश्वर ने की तरह', 'जैसे, मानो', निर्मल वर्मा ने' जैसे', 'मानिन्द'; नरेश मेहता ने 'की तरह', 'जैसे', 'भांति'; राजेन्द्र यादव ने 'की तरह' तथा रमेश बक्षी ने 'जैसे' आदि वाचकों के प्रयोग किये हैं।

कथाभाषा में बिम्ब-प्रयोग का औचित्य :

'नयी कहानी' में उपमान-मूलक बिम्ब के प्रश्न को उठाते हुए एक-दो आलोचकों ने उसका निषेध किया है। एक कथाकार ने यह आरोप लगाया है कि 'ऐसे उपमानों को 'इंसर्ट' करने मे कहानीकार की निगाह भटकती रहती है और वह चालाकी से वर्ण्य-विषय के स्थितिगत चैलेंज से बच जाता है।' (धर्मयुग, 13 मार्च 1966) वे उपमा को पात्र की मनःस्थिति स्पष्ट करने वाली भी नहीं मानते हैं, जबकि एक सच्चे कहानीकार का कोण सदैव कहानी कहने का होता है। ऐसे में यह कथाकार की भाषा, ज्ञान और अनुभव-समृद्धि पर निर्भर है कि वह साधन-रूप में उपमानों से स्वानुकूल अथवा कथा के अनुरूप सहायता लेता चले। पर यदि हर कथाकार हर कहीं उपमान का प्रयोग करना चाहेगा तो निश्चयतः उसे उपमानों को 'इन्सर्ट' करने में ध्यान देना होगा। बावजूद इसके कहानी में वह मौलिक और प्रभविष्णु कतई नही हो सकेगा। इतना मानते हुए हुए भी यह कहना गलत न होगा कि 'नयी कहानी' मे शिवप्रसाद सिंह आदि कथाकारों ने जो उपमान-मूलक बिम्ब विधान किया है, वह उन सबकी भाषा-समृद्धि और अनुभव-समृद्धि का द्योतक है। इन लोगों ने वर्ण्य को अधिकाधिक स्पष्ट करने के लिए ही उपमान का सहारा लिया है। इससे पात्र की जिस मनः-स्थिति के अस्पष्ट रह जाने की बात राजेन्द्र यादव करते हैं, वह निरर्थक है। 'नयी कहानी' के विविध-स्तरीय उपमान पाठक की अमूर्त्त मनःस्थिति को मूर्त्त और स्पष्ट करने में बहुविध सहायक हैं। फिर कहानी मे केवल पात्र की मनःस्थिति स्पष्ट नही की जाती, बल्कि परिवेश का चित्रण, संलाप की उपयुक्तता,

व्यापक कथा-भूमि में अर्थ की आच्छन्नता आदि भी देखी जायी है। कहना न होगा कि उपमान इन सबकी पूर्णता के लिए अपना योगदान करता है। डॉ० नामवर सिंह ने कहानी की सादृश्य-मूलक भाषा की आलोचना करते हुए लिखा है कि 'जिस प्रकार कहानियों में शिवप्रसाद सिंह जैसे लेखक कदम-कदम पर उपमानों का कोष लुटाते चलते हैं उससे एक दिन कहानी के ही लुट जाने का खतरा है।' (कहानी: नयी कहानी, 46) पर महज इसलिए कि उपमान और बिम्ब काव्य में प्रयुक्त होते हैं, काव्य-क्षेत्र में उन्हें सीमित कर देना और कहानी में उनका विरोध करना उचित नहीं है। फिर कहानी की भाषा पर विचार करते हुए ऐसा निर्णय भी नहीं दिया जा सकता कि एक प्रकार की श्रेष्ठ कहानी की जो भाषा है वही भाषा दूसरे प्रकार की श्रेष्ठ कहानी की भी होनी चाहिए; क्योंकि 'नयी कहानी' अपनी भाषा आप उठाती है। अतः ऐसा कहना कि कहानी का गद्य केवल सपाट होता है, वह उपमान-मूलक नहीं हो सकता, यदि होगा तो कहानी लुट जाएगी, फतवेबाजी के सिवा कोई गहरा मानी नहीं रखता। इसके अतिरिक्त कहानी की भाषा अपने औचित्य में वैयक्तिक लेखन-शैली से भी सम्बन्ध रखती है। यदि उसमें कथा-गद्य की श्रेष्ठ विशेषता और स्पष्टता बरकरार है तो उसे वैयक्तिक शैली में लिखा होना ही चाहिए। इस वैयक्तिकता की छाप को हटा कर यदि सारी 'नयी कहानी' की भाषा को एकरूप किया जाए तो इससे अनुकरणशीलता आएगी और सर्जनशील भाषा का संकट पैदा हो जाएगा। वास्तविकता यह है कि कहानी चित्र उपस्थित करने की एक संश्लिष्ट पद्धति है, जो कहने से अधिक दिखा देना चाहती है। इसी कारण कथा-गद्य की पद-सज्जा और वाक्य-संरचना विवरणात्मक गद्य से अपना फर्क जाहिर करती है। कहानी में इस चित्र-विधान को भाषा दृश्य-चित्र, चरित्र-चित्र, परिदृश्य-चित्र, शब्द-चित्र आदि के सहारे ही उपस्थित करती है।[1] यानी ये बिम्ब और उपमान कहानीकार की उस दृष्टि के भी परिचायक हैं, जिससे कहानीकार किसी के चलने-बोलने, उठने-बैठने आदि की सूक्ष्मताओं और विशेषताओं का परिचय देता है। जैसे—'रोही मछली की तरह मुंह निकाल कर कमली बोली।' (मुरदा सराय, 1) दरअसल ये ऐसे तत्त्व हैं, जो पाठ्य-विधा के दायरे में वर्णन की एकरसता भंग कर बीच-बीच में दृश्य-बोध कराते चलते हैं। अतः वैयक्तिक होते हुए भी इस भाषा में वैयक्तिक होने का वह खतरा नहीं है, जिसकी ओर कमलेश्वर ने इशारा करते हुए जैनेन्द्र और अज्ञेय को अपराधी के कटघरे में ला खड़ा किया है।[2]

1. जेम्स एल० कैल्डरवुड ऐण्ड हेराल्ड ई० टालियर, 'लैंग्वेज ऑव फ़िक्शन', पर्सपेक्टिव ऑव फिक्शन (लंडन : ऑक्सफोर्ड यूनि० प्रेस, 1968), पृष्ठ-64
2. कमलेश्वर, नयी कहानी की भूमिका (दिल्ली : अक्षर प्रकाशन; प्र०सं०), पृ 303

लोकोक्तियों के प्रयोग :

नये कथाकारों ने लोकोक्तियों का व्यवहार कथा की पृष्ठभूमि को देखते हुए बड़ी जीवन्तता और स्वाभाविकता से किया है—खाएँगे गेहूँ, नही रहेंगे एहूँ (मुरदा सराय, 149), नानी के आगे ननिहाल का बखान (इन्हे भी इन्तजार है, 109), देशी चिरई मरहट्ठी बोली (आरपार की माला, 53), मरा हाथी भी एक लाख का (राजा निरबंसिया, 124), कथरी के नीचे दुसाले का सपना (ठुमरी, 157), जोरू, जमीन जोर के नही तो किसी और के (158), जैसी लोकोक्तियाँ नयी कहानी की भाषा मे अभिनवता और ताजगी ले आयी हैं। इनसे भाषा को एक खास अन्दाज तथा लोक-जीवन की वार्ता और वर्णनात्मकता को अच्छा समर्थन मिला है।

मुहावरों के प्रयोग :

'नयी कहानी' के मुहावरों में रूढ़ मुहावरों के अतिरिक्त ताजे मुहावरे भी आये हैं, जिनसे हिन्दी की लक्षणा-शक्ति पूर्वापेक्षया अधिक समृद्ध हुई है। ठेंगा दिखाना (*जिंदगी और जोंक, 16*), *लटक जाना (71)*, चूना *पोतना* (77), बबूल का लासा होना (73), दो जौ आगे होना (68), भूसा बना देना (131), पेट में आरियाँ चलना (*तथापि*, 17), गूलर का फूल बनना (इन्हे भी इन्तजार है, 223), आदि सैकड़ों मुहावरे अपनी पूरी अर्थवत्ता और व्यापकता के साथ 'नयी कहानी' की भाषा में प्रयुक्त हुए हैं।

सूक्तियों के प्रयोग :

'नयी कहानी' की भाषा में सूक्ति अपनी मर्मस्पर्शिता, संक्षिप्तता और अनुभूत सत्यता के साथ आयी है। सूक्ति की भाषा पाठक को विचार करने के लिए पल भर रोक लेती है। छोटी-छोटी सूक्तियाँ कहानी के भाषा-प्रवाह में छोटी-छोटी भँवर की तरह हैं। सूक्ति की शुरुआत लोकोक्ति और मुहावरों की तरह पूर्ववर्ती कहानी की परम्परा से ही हुई है। पर जैसे इस भाषा की लोकोक्तियों और मुहावरों की विशेषता उनका नयापन है वैसे ही सूक्तियों की विशेषता विविध-स्तरीय अनुभूतियों का अभिव्यक्तीकरण है। 'कह दिये जाने पर न तो व्यक्ति न फूल किसी में भी गंध नही रह जाती है।' (तथापि, 8); 'अच्छा मित्र पाना अच्छी पत्नी पाने से भी बड़ा सौभाग्य है।' (वही, 106); 'आदर्श की आवाज ऊपर की सतह से ही सुनायी जा सकती है।' (सुहागिनें, 13); 'अकेला तो वह होता है जो अकेलेपन को महसूस करे।' (फौलाद का आकाश, 54); 'दिलखोल गप तो गाँव की बोली में ही की जा सकती है।' (ठुमरी, 118) आदि सूक्तियाँ इस भाषा की मर्मस्पर्शिता को बढ़ाती हैं।

मिथकीय वाक्यों के प्रयोग :

'नयी कहानी' में ढेरों मिथकीय वाक्यावलियाँ भी हैं। पौराणिक मिथक में महावीर जी के समुद्र मे कूदने का (जिन्दगी और जोंक, 135) तथा सनीचरी देवी का ('जब तक बरन की बहू को कोढ़ न फूटेगा वह दाढ़ी न मुड़ाएगा। इसी काम के लिए वह सनीचरी देवी पर रोज जल भी चढ़ाता है।' वही, 132) उल्लेख; सामाजिक मिथक मे कौए के सर पर बैठने का ('कौआ का सर पर बैठना बहुत अनसुभ माना जाता है। उससे मौअत आ जाती है···यह मौअत वाली बात किसी सगे-सम्बन्धी के यहाँ लिख देने से मौअत टल जाती है।' वही, 143) उल्लेख; राजनीतिक मिथक में गाँधी जी के व्यक्तित्व में जादू का ('गान्ही महात्मा को सरकार सब जेहल मे डाल देती है तो एक दिन क्या होता है कि सभी सिपाही-प्यादा के होते हुए भी गान्ही महात्मा जेहल से निकल आते है और सबकी आंख पर पट्टी बंधी रह जाती है।' वही, 135) उल्लेख; तथा पारिवारिक मिथक मे लुकाठी खेलने पर चारपाई पर पेशाब करने का ('रानी महराजी बोल पड़ी—ना, छोटे, लुकाठी ना खेलो, नही तो चारपाई पर मूतोगे।' काल सुन्दरी, 40) उल्लेख हुआ है।

क्रमभंग-मूलक विचलित वाक्यों के प्रयोग :

'नयी कहानी' के वाक्यों में कथ्य पर बल देने के लिए और शैली के चमत्कार के लिए वाक्यों का सामान्य क्रम भंग कर किये गये क्रिया के पूर्व-प्रयोग और कारक-चिह्नों के पर-प्रयोग द्रष्टव्य हैं—

1. कर्त्ता—'वहाँ से बिदा करा लिया मैंने।' (मेज पर टिकी हुई कुहनियाँ, 31)।
2. कर्म—'सिपाही भेज कर जेल ही भेज दें तुमको!' (वही, 8)
3. करण—'झेला ही जाता नही मुझसे।' (वही, 24)
4. सम्प्रदान—'मन होता है उससे यह सीखने को।' (वही, 28)
5. अपादान—'लाल मोहर की गाड़ी पर ही आयी है मेले से।' (ठुमरी, 148)
6. सम्बन्ध—'खुलवा दें कंगन-स्टोर हरी चूड़ियों का।' (मेज पर टिकी हुई कुहनियाँ, 96)
7. अधिकरण—'कमाल का घुंघरालापन था उसके बालों मे!' (वही, 71)
8. सम्बोधन—'यह बात झूठ है न जीजी!' (ज्ञानोदय, जनवरी' 59 मे प्रकाशित रमेश बक्षी की 'इंग्लिशतानी राजा और हिन्दुस्तानी जीजा' कहानी, पृ० 57) ऐसे प्रयोग रमेश बक्षी, रेणु, राजकमल चौधरी आदि मे प्राप्त होते है। कारक-चिह्नों के अतिरिक्त सर्वनाम, निपात, संज्ञा, विशेषण तथा पूर्वकालिक क्रिया के पर-प्रयोग भी हुए हैं—

1. सर्वनाम—'भीड़-भाड़ है यह !' (रमेश बक्षी : 'बाजार,' नयी कहानियाँ, जून, 65, पृ० 18-19)

2. निपात—'एस्ट्रे थी नहीं दूर तक।' (रमेश बक्षी : 'राख,' नयी कहानियाँ, अक्तूबर, 66, पृ० 47)

3. संज्ञा—'दिखा है तो एक मिडल स्कूल !' (दुहरी जिन्दगी, 51)

4. विशेषण—'यह आदमी भले ही घोड़ा हाँकता है, है बड़ा दूरदर्शी !' न० क०, जून 65, पृ० 23)

5. क्रिया-विशेषण—'सिपाय का दिल ठंडा होने लगता है धीरे-धीरे !' (ठुमरी, 108)

6. पूर्वकालिक क्रिया—'राह सूंघते, नदी-नाला पार करते भागे पूंछ उठा कर !' (वही, 114)

संज्ञा से पहले कथा कहने की शैली की दृष्टि से गीतिमय होने के अन्दाज में क्रिया के पूर्व-प्रयोग किये गए हैं—'बड़े ऊँचे थे उसके बोल। बड़ा भारी था उसका मोल। न थे उसमें गिन्नी, अशर्फी, न थे रुपये गोल-गोल !' (मेज पर टिकी हुई कुहनियाँ, 45) कहीं-कहीं संलाप की स्वाभाविकता के आग्रहवश भी क्रिया का पूर्व-प्रयोग हुआ है जैसे—मैं आता हूँ तुरत ! (ठुमरी, 125)

अंग्रेजी वाक्यों के प्रयोग :

नागर कथाकारों ने पात्रीय भाषा में अंग्रेजी वाक्यों का धड़ल्ले से प्रयोग किया है। नरेश मेहता, राजेन्द्र यादव, निर्मल वर्मा, मोहन राकेश रमेशबक्षी आदि कथाकारों की भाषा में ऐसे ढेरों प्रयोग मिलते हैं। हरिशंकर परसाई और शरद जोशी जैसे व्यंग्य-लेखक की रचनाओं में भी पात्र अंग्रेजी वाक्य बोलते पाये जाते हैं—'ह्वाट ए हॉरिबुल डिस्कशन वाज देयर !' (एक समर्पित महिला, 8' जैसे एक वाक्यीय प्रयोग से तीन-तीन, चार-चार वाक्यों के शृंखल प्रयोग तक 'नयी कहानी' की भाषा में देखे जा सकते हैं। (वही 7 और 27) ऐसे अधिकाधिक वाक्यों के प्रयोग से 'नयी कहानी' की भाषा सामान्य पाठक के दायरे से बाहर हो गयी है। हल्के-फुल्के वाक्य तो ठीक भी हैं, पर अंग्रेजी के लम्बे शृंखल वाक्यों से अर्थ की प्रेषणीयता में सामान्यतः कठिनाई होती है। कहानी की भाषा में अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग तो एक सीमा में स्वीकार्य हैं, पर लम्बे अंग्रेजी वाक्यों और अधिकाधिक लघु अंग्रेजी वाक्यों के प्रयोग से तो भाषा में 'कोड-मिक्सिंग' की समस्या खड़ी हो जाती है। अंग्रेजी ने हिन्दी को मूलतः शब्द-भंडार और वाक्य-गठन के रूप में प्रभावित किया है न कि हिन्दी की प्रकृति को ज्यों-के-त्यों अंग्रेजी वाक्य दे कर। यदि ऐसे वाक्यों के हिन्दी अनुवाद कहानी में दिए जाएँ तो इससे पात्रौचित्य भी नहीं मिटता है और सामान्य हिन्दी पाठक के अर्थ-बोध की कठिनाई भी दूर हो जाती है।

प्रान्तीय भाषा के वाक्यों के प्रयोग :

'नयी कहानी' की भाषा मे प्रान्तीय भाषा के वाक्यों के प्रयोग हुए हैं; कहीं बंगला, कहीं मराठी और कही पंजाबी वाक्यों के। नरेश मेहता, रमेश बक्षी, रेणु आदि ने बंगला वाक्यो के प्रयोग किए है। जैसे—'कोपाय होलो तुमि ?' रमेश बक्षी के कथा-पात्रों ने मराठी वाक्यों का भी प्रयोग किया है—'तुमि एकदा सांगितला होत न ?' (मेज पर टिकी हुई कुहनियां, 130) मोहन राकेश, कमलेश्वर, नरश मेहता आदि कथाकारों के पात्र पंजाबी भी बोलते हैं। जैसे—'छकोजी बादशाओ ! मैं नूं तां काम ए अजे।' (सयापि, 14)।

गँवई बोली या आंचलिक वाक्यों के प्रयोग :

अंग्रेजी और प्रान्तीय भाषा के अतिरिक्त 'नयी कहानी' के पात्र गँवई बोली भी बोलते हैं। धर्मवीर भारती की कहानी 'गुलकी बन्नों, में आंचलिक बोली का प्रयोग द्रष्टव्य है—'अबहिन बित्तो भर नाहीं ना, पतुरियन के गाना गावे लगें। (एक दुनिया समानान्तर, 156) अन्याय ग्राम्य कथाकारों की भाषा में भी ऐसे प्रयोग हुए हैं। बच्चों के तोतले वाक्यों के प्रयोग नरेश मेहता की 'निशाजी' और मोहन राकेश की 'एक और जिन्दगी' कहानी में बड़े आकर्षक बन पड़े हैं। 'नयी कहानी' की भाषा मे बीच-बीच में कहीं लोकगीत और कहीं कलागीत की पंक्तियां भी उद्धृत हुई हैं।

विराम-चिह्नों के नए लेखकीय प्रयोग :

'नयी कहानी' की साठोत्तरी पीढ़ी में भाषा में और भी कई प्रयोग मिलते हैं। इस पीढ़ी की भाषा में खास तौर पर विराम-चिह्नों का नया प्रयोग हुआ है। लघु-लघु वाक्यांशों अथवा एक शब्द के ही बाद पूर्ण विराम का प्रयोग नयी विराम-चिह्न-पद्धति की विशेषता है। इस पीढ़ी के पहले के दशक में शिवप्रसाद सिंह ने विराम चिह्नों का स्वच्छन्द प्रयोग किया था। साठोत्तरी पीढ़ी का विराम-चिह्न-प्रयोग उन्ही की परम्परा का महत्त्वपूर्ण विकास है। दूसरे, इस पीढ़ी में शब्द-विशेष को इकहरे उद्धरण-चिह्न में लिखने की भी प्रवृत्ति है। पहले हिन्दी-तर भाषा के शब्द इकहरे उद्धरण-चिह्न में लिखे जाते थे। अब जिन शब्दों पर चाप डालना होता है अथवा जिन शब्दों मे अर्थ-तीव्रता भरनी होती है, उन सब शब्दों के ऐसे प्रयोग किए जाते हैं। प्रयाग शुक्ल, महेन्द्र भल्ला, दूधनाथ सिंह और सुरेश सिन्हा की भाषा मे ऐसे प्रयोग बहुतायत से मिलते हैं। 'नयी कहानी' के वाक्यों में बिंदु-चिह्न (डॉट्स) भी लगाए गए हैं। वाक्यान्तर्गत ऐसी रिक्तता के के दो प्रयोजन रहे हैं। एक तो अपशब्दों की सीमान्त अश्लीलता का प्रत्यक्ष कथन न कर उसे संकेतित कर देना; दूसरे, शब्द के परे अर्थ-जगत् में मौन की

गूँज से पाठकों का प्रवेश करना। ऐसे कथाकारों में निर्मल वर्मा और शिवप्रसाद सिंह के नाम आते हैं।

अर्थगत प्रयोग :

भाषा का अर्थगत संकल्प (कंसेप्ट) 'नयी कहानी' को पूर्ववर्ती कहानी की भाषा से स्पष्टतः विलग कर देता है। अर्थगत प्रयोग 'नयी कहानी' की भाषा में चार प्रकारों से हुआ है। पहला प्रयोग किसी खास पंक्ति में अर्थ भर कर सम्पूर्ण कहानी पर रोशनी डालने का है। ऐसी विशेष पंक्ति कहानी के आदि, मध्य, अन्त किसी भी स्थल पर हो सकती है। इसे पाठ की स्थैतिकी कहते हैं। कभी-कभी अर्थोद्रेक का काम एक ही पंक्ति से चल जाता है, पर कहीं-कहीं अर्थ को दो-तीन पंक्तियों की लम्बी लड़ियों में नियोजित किया जाता है, और कभी विशेष पंक्ति ही कहानी में कई बार अपनी गूंज उठती हुई आवृत्त होती है। इससे पाठ की समंजस गतिकी बनती है। निर्मल वर्मा की 'परिन्दे' का 'हम कहाँ जाएँगे' वाक्य ऐसा ही अर्थ व्यक्त करता है, जो कहानी के समग्र पात्रों और कहानी के देश-काल के लिए एक व्यापक प्रश्न बन जाता है। अर्थ की यह व्यापकता कहानी के पूरे परिवेश मे फैल जाती है। यहाँ अर्थ-नियोजन पाठ की स्थैतिकी के द्वारा कहानी के मध्य में हुआ है। रामनारायण शुक्ल की 'एकाउंट्स' कहानी की अन्तिम पंक्तियां—'यह सुनकर मुझे लगा क्या इस देश के बच्चे-बच्चे नहीं रहेंगे—उन्हें भी बड़ों की तरह बात करनी पड़ेगी ?' पूरी कथा की अर्थ-परतों को इसी स्थैतिकी के जरिये भक्-भक् खोल देती है। कहानी को अर्थ-संकेत इन्हीं अन्तिम पंक्तियों से मिलता है।

'नयी कहानी' की भाषा में अर्थ-सर्जन का दूसरा प्रयोग परिवेश-चित्रण के सहारे हुआ है। यह अर्थगत प्रयोग द्विकोटिक है। पहला अर्थ-सर्जन प्रकृति-चित्रण के माध्यम से हुआ है तथा दूसरा वस्तु-चित्रण के माध्यम से। प्रकृति-चित्रण में 'स्टिल फोटोग्राफी' से ऊपर उठ कर अर्थ-सर्जन के प्रयोग शिवप्रसाद सिंह, नरेश मेहता आदि की कहानियों में हुए हैं। नन्हों शीर्षक कहानी की पंक्तियाँ हैं—'चबूतरे के पास कलसी के नीचे पानी गिरने से जमीन नम हो गयी थी। जौ के बीज गिरे थे। जाने कब के इकट्ठे एक में सटे हुए उजले, हरे, अँखुए फूटे थे।' (इन्हें भी इन्तजार है, 12) ये पंक्तियाँ सिर्फ कलसी के नीचे फूटे जौ के अँखुए का अर्थ नहीं बताती, बल्कि नन्हों के भीतर भी कहीं ऐसे ही फूटे अँखुए का संकेत देती हैं। यहां अर्थ, अपने तयशुदा संकल्पन से एक इंगित के सहारे ऊपर उठ जाता है। 'सुबह के बादल' शीर्षक कहानी में पंडित घूरेलाल के यहां दीनू के जाते वक्त की ये पंक्तियां—'बादल घने होते जा रहे थे। हवा बिल्कुल बंद थी…बड़ा उदास मौसम था। गलियां बिल्कुल सुनसान थी (इन्हें भी इन्तजार है, 97) एक साथ ही बाहर-भीतर का अर्थ प्रकट करती हैं। मौसम के

साथ-साथ दीनू की मानसिक स्थिति की ओर भी इनका संकेत है। दीनू : गहराता दुःख, आश्वासन का अभाव, मायूस मन, दिल की उचाट गैल ! यहाँ अर्थ पिच करता है ! नरेश मेहता की 'निशाजी' कहानी में गौरा जी से प्रश्न करने पर कि 'सब ठीक-ठीक तो हैं न, गौराजी ?' लेखक की ये पंक्तियाँ—'क्या कहूँ कि उस गौरा-मुख पर क्या हुआ ? हवा तेज हो आयी थी। बादल एक-दूसरे मे गुँथते हुए, घुलते हुए नीचे उतर कर घाटियाँ भरने लगे थे। अब तो वे लम्बे फैलते एक-एक देवदार के ऊपर से होते बढ़ आये हैं। लाल-पीली छतों से तैरते मकानो, चारजों, बालकनियो और खिड़कियो में भी घुसने लगे हैं। बस जहाँ निशा का पलंग था, उसी खिड़की के बन्द शीशों के पार टहलने लगे हैं। उन झाँकते बादलो की गीली भाप कैसे शीशो पर झलक आयी है !' (तथापि, 42) में बादल के घनीभूत रूप से गौरा की गहरी पीड़ा ही व्यजित होती है।

वस्तु-चित्रण के माध्यम से अर्थ-व्यंजना का उदाहरण उषा प्रियंवदा की 'वापसी' कहानी की ये पंक्तियां हैं—'जैसे किसी मेहमान के लिए कुछ अस्थायी प्रबन्ध कर दिया जाता है, उसी प्रकार बैठक मे कुर्सियों को दीवार से सटा कर बीच मे गजाधर बाबू के लिए पतली-सी चारपाई डाल दी गई थी।' (जिंदगी और गुलाब के फूल, 147) साथ ही कहानी के अन्त की ये पंक्तियाँ भी—'अरे नरेन्द्र ! बाबूजी की चारपाई कमरे से निकाल दे। उसमे चलने तक की जगह नही है। !' (वही, 154) इन दोनों संदर्भों से यह अर्थ स्पष्ट होता है कि जैसे बैठक में जिस-किसी तरह उनकी चारपाई की व्यवस्था की गयी थी वैसे ही जिस-किसी तरह उन्हें घर मे अभियोजित किया गया था। साथ ही जैसे चारपाई के लिए किसी कमरे में कही कोई जगह नही थी वैसे ही उनके लिए भी घर में कही कोई जगह नही हो सकी। बाहर से लायी चारपाई घर की व्यवस्था को भंग करती थी और उकडूं लगती थी, गजाधर बाबू भी वैसे ही पहले से चली आती घरेलू व्यवस्था में बाधा डालते-डालते स्वयं उकडू बन गये थे। भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत' कहानी मे भी वस्तु-चित्रण के माध्यम से अर्थ व्यंजित हुआ है। 'चीफ की दावत' में जब घर का फालतू सामान छिपाया जाने लगता है तब मां को भी छिपाने की बात उठ खड़ी होती है। लेखक ने फालतू सामान को छिपाने का चित्रण कर तथा उस पृष्ठभूमि मे मां को उपस्थित कर मां को भी फालतू सामान बना दिया है। फालतू सामान कभी-कभी उपयोग और लाभ का भी हो जाता है। वैसे ही 'चीफ की दावत' के अन्त मे शामनाथ की माँ शामनाथ के लिए लाभ और उपयोग की साबित होती है।

'नयी कहानी' की भाषा मे अर्थ-नियोजन का तीसरा प्रयोग प्रोक्ति-संश्लेष के सहारे हुआ है। शिवप्रसाद सिंह का 'बरगद का पेड़' और कमलेश्वर का 'राजा निरबंसिया' की भाषा प्रोक्ति-संश्लेष के सहारे ही कथा को अर्थ देती है। भाषा मे प्रोक्ति-संश्लेष का शिल्प आ जाने से कथा का अभीष्ट अर्थ अधिक तीव्र

और शाणित हो उठता है। यह भाषा साम्य-वैषम्य के तुलनात्मक वर्णन से भरी होती है।

इस भाषा में अर्थ का चौथा प्रयोग प्रतीक का है। शास्त्रीय दृष्टि से बिम्ब का नियोजन जहाँ ज्यादा स्पष्ट होता है वहां प्रतीक का नियोजन अपेक्षया दुरूह। पर ध्यान देने की बात है कि कहानी और कविता दोनों की प्रतीक-पद्धति अलग-अलग होती है। कविता की प्रतीकात्मकता किंचित् दुरूह और स्पष्ट होती है। इससे उसकी सार्थकता मे कोई कमी नही पड़ती। पर कहानी मे प्रतीक-नियोजन अनिवार्यतः स्पष्टता के उद्देश्य को सामने रख कर होता है। एक कविता में एकाधिक प्रतीक सम्भव हैं, पर एक कहानी मे प्रायः एक ही प्रतीक होता है। जहां ऐसा नही होता वहां थोड़ी दुरूहता आ जाती है। जैसे—शिवप्रसाद सिंह की 'सुबह के बादल' कहानी। इसमें स्वातंत्र्योत्तर नयी पीढी की दो प्रवृत्तियो, निरर्थ लंगी लगाने वाली और किसी को कुछ नही मानने वाली प्रवृत्ति तथा बड़ी सावधानता से कुसली और फिसलन से बच-बच कर चलने वाली प्रवृत्ति—को प्रतीकित किया गया है, जो किंचित् अस्पष्ट है। स्पष्ट प्रतीकात्मक रूप मे अर्थ-नियोजन शिवप्रसाद सिंह की 'केवड़े का फूल', रमेश बक्षी की 'थर्मस मे क़ैद कुनकुना पानी' तथा दूधनाथ सिंह की 'रीछ' जैसी कहानियो से हुआ है।

निष्कर्ष :

अन्ततः 'नयी कहानी' की भाषा हिन्दी भाषा और कथा-भाषा की विकास-यात्रा का गन्तव्य तो नही, पर एक महत्वपूर्ण स्थल अवश्य है। इस युग-काल-सापेक्ष विधाई भाषा की यत्किंचित् सीमाएँ भी हैं, जिनसे इनकार नही किया जा सकता। बावजूद इसके जैसा राजकमल चौधरी ने अपने 21 फरवरी' 66 के पत्र में मुझे लिखा था—"मैं भाषागत उपलब्धियों में आस्था रखता हूँ"; 'नयी कहानी' की भाषा निर्विवाद रूप मे कहानी के विधागत और हिन्दी के भाषागत गद्य के लिए उपलब्धि की भाषा है। और इसीलिए न केवल राजकमल की और मेरी, बल्कि आज के समग्र पाठक-वर्ग की आस्था इसके साथ है; क्योंकि इस 'नयी कहानी' ने हिन्दी गद्य को जड़ियाये-सठियाये भाषा-रूपों की परिधि से निकाल कर, उसे उसकी पंगुता, मूकता, स्थूलता और अस्पष्टता से सर्वथा विलग कर; प्रेमचन्द-सी नीर-क्षीर न्यायी और राधिकारमण सिंह-सी तिल-तंडुल-न्यायी उर्दू-हिन्दी की फेंट की झंझट से परे रख कर; प्रसाद जैसी पुस्तकीय शब्दावली और जैनेन्द्र जैसी चक्करदार वाक्य-संरचना से मुक्ति दिला कर; अज्ञेय की कोमल-वैयक्तिक भाषा और उग्र की की गरमागरम भाषा से अलग मार्ग बना कर; अश्क की भाषा-विषयक-सावधानता और यशपाल की भाषा-विषयक अनवधानता से विमुख हो कर; बदली हुई संवेदना के अनुकूल भाषा तलाश कर, उलझे-से-उलझे कथ्य को भी व्यक्त करने की क्षमता दे कर; एक भाव को व्यक्त करने के

लिए अनेकानेक पर्यायों में सर्वाधिक उपयुक्त और स्वाभाविक शब्द की चयन-कुशलता सिद्ध कर; बात कहने की सूक्ष्मता-सांकेतिकता निरूपित कर; शैलीगत नवीनता प्रस्तुत कर; 'बंद', 'घेराव', 'लूप', 'नसबंदी' जैसी समसामयिक शब्दावली को पहले-पहल साहित्यिक संस्कारिता प्रदान कर; बहुविध व्यापक अर्थवत्ता नियोजित कर तथा सबकी एकजुट प्रभावोत्पादकता कायम कर विभिन्न सार्थक प्रयोगों के सहारे कथा-भाषागत और हिन्दी-भाषागत—दोनों ही प्रकार की उपलब्धियों से समृद्ध-सम्पन्न किया है; जिसमें अमरकान्त ने मुहावरेदार मिथकीय शैली के साथ-साथ ठेठ गद्य की सपाटता; रेणु ने लोक-तत्त्वों को उजागर करने वाले असंख्य आंचलिक ध्वनि-रूपों, शब्दों, पदों आदि की सटीकता; शिवप्रसाद सिंह ने सैकड़ों अछूते ग्राम्य शब्दों, बिम्बों, उपमानों, प्रतीकों के माध्यम से सर्जनात्मकता तथा प्रकृति-चित्रों वाली अभिनव अर्थवत्ता; निर्मल वर्मा ने सूक्ष्म संवेदनशीलता, गद्यराग और लयमयता तथा अर्थ की आद्यन्त आच्छन्नता; कमलेश्वर ने बिम्ब-उपमान-मूलक सर्जनात्मकता, प्रवाहमयता और कथारसता; नरेश मेहता ने अपने प्रयोगों से भविष्योन्मुखता और बहुविध विकसनशीलता और हरिशंकर परसाई ने बाजारू शब्दों को साहित्यिक प्रतिष्ठा तथा अर्थ की तीखी व्यंग्यात्मकता से भरी-पूरी जीवन्तता प्रदान की है।

संदर्भिका

1. अमरकांत — जिन्दगी और जोंक, इलाहाबाद : नया साहित्य प्रकाशन, 1958
2. अज्ञेय — अपने-अपने अजनबी, दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ, प्रथम संस्करण।
3. अज्ञेय — जयदोल, इलाहाबाद : सरस्वती प्रेस, प्रथम संस्करण।
4. अज्ञेय — नदी के द्वीप, इलाहाबाद : सरस्वती प्रेस, प्रथम संस्करण।
5. अज्ञेय — ये तेरे प्रतिरूप, इलाहाबाद : सरस्वती प्रेस, प्रथम संस्करण।
6. अज्ञेय — शेखर : एक जीवनी (उत्थान), इलाहाबाद : सरस्वती प्रेस, 1980
7. अज्ञेय — शेखर : एक जीवनी (संघर्ष) इलाहाबाद : सरस्वती प्रेस, 1977
8. अवस्थी, देवीशंकर — नयी कहानी : संदर्भ और प्रकृति, दिल्ली : अक्षर प्रकाशन, 1964
9. आइसलर, एफ० गोल्डमैन — सायकोलिंग्विस्टिक्स : एक्सपेरीमेंट्स इन स्पाटेनियस स्पीच, लंदन : एकेडमिक प्रेस, 1968
10. कमलेश्वर — मेरी प्रिय कहानियाँ, दिल्ली : राजपाल एँड संज, 1980
11. कमलेश्वर — नयी कहानी की भूमिका, दिल्ली : अक्षर प्रकाशन प्रथम संस्करण।
12. कालुजा, इरेना — द साउंड एण्ड द फुरी : ए स्टडी इन लिंग्विस्टिक स्टायलिस्टिक्स, काकोव : नकलोदय युनिवर्सतेचु, 1967
13. चतुर्वेदी, रामस्वरूप — अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या, दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ, प्रथम संस्करण।

14. चतुर्वेदी, रामस्वरूप — भाषा और संवेदना, कलकत्ता : भारतीय ज्ञानपीठ, प्रथम संस्करण।
15. टॉयनबी, आर्नेल्ड — इतिहास का अध्ययन-1, लखनऊ : सूचना प्रकाशन, उत्तर-प्रदेश, प्रथम संस्करण।
16. डविशायर, ए० ई० — नार्म ऐंड डिविएशन, ए ग्रामर अव स्टाइल, लण्डन : आन्द्रे दच लिमिटेड, 1971
17. डिज्क, टी० ए० वान — सिमेंटिक रिलेशंज इन डिस्कोर्स, स्टडीज इन द प्रैग्मेटिक अव डिस्कोर्स, द हेग : मूतन पब्लिशर्ज, 1981
18. डैचिज, डेविड — अ स्टडी अव लिटरेचर, न्यूयार्क : द कार्नेल यूनिवर्सिटी प्रेस, 1984
19. तोल्स्तोय, अलेक्सेई — 'शब्द चिन्तन है', लेखन कला और रचना-कौशल, संपा० व० म० सत्तविचेल कुमेनेसा, मास्को : प्रगति प्रकाशन, 1977
20. द्विवेदी, हजारी प्रसाद — अनामदास का पोथा, दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, पेपरबैक संस्करण, 1979
21. द्विवेदी, हजारी प्रसाद — चारुचन्द्रलेख, दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, पेपरबैक सस्करण, 1989
22. द्विवेदी, हजारी प्रसाद — पुनर्नवा, दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, पेपरबैक संस्करण, 1977
23. द्विवेदी, हजारी प्रसाद — बाणभट्ट की आत्मकथा, दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, छात्र संस्करण, 1979
24. पाण्डेय, इन्दु प्रकाश — हिन्दी आंचलिक उपन्यासो में जीवन-सत्य, नई दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, 1979
25. प्रेमचंद — गोदान, इलाहाबाद : सरस्वती प्रेस 1975
26. फर्नांडो, चित्रा — 'कोहरेंस इन लिटरेरी टेक्स्ट', स्टाइल स्ट्रक्चर एँड क्रिटिसिज्म, सम्पा० डेविड बर्च, दिल्ली : बाहरी पब्लिशर्ज प्रा० लि०, 1985
27. बक्षी, रमेश — मेज पर टिकी हुई कुहनियां, कलकत्ता : भारतीय ज्ञानपीठ, 1963
28. ब्राउन, ई० के० — रिद्म इन द नावेल, कनाडा : यूनिवर्सिटी आफ टोरेंटो प्रेस, 1967
29. ब्रेंडर, लारेंस — इ० एम० फोर्स्टर: ए क्रिटिकल स्टडी, लण्डन : रूपट-ह्वार्ट डेविस, 1968

30. भल्ला, महेन्द्र,	एक पति के नोट्स, दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 1967
31. मित्तल, नंदकिशोर	'नकली क्रांतिकारी चेहरे : नकली समस्याएँ, नकली कहल', धर्मयुग, सम्पा० धर्मवीर भारती, बम्बई : टाइम्स ऑफ इण्डिया प्रकाशन, 14 फरवरी, 1971
32. मिश्र, विद्यानिवास	आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि अज्ञेय, दिल्ली : राजपाल एँड संज, प्रथम संस्करण ।
33. मेक्डोनल्ड, मार्गरेट	लैंग्वेज अव फिक्शन, पर्सपेक्टिव ऑन फिक्शन, संपा० जेम्स एल० केल्डरवुड एँड हेराल्ड ई० टालियर, लंदन : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1965
34. मेहता, नरेश	तथापि, बम्बई : हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर, 1971
35. मोहन राकेश	एक और जिन्दगी, दिल्ली : राजपाल ऐण्ड संज, 1961
36. मोहन राकेश	मेरी प्रिय कहानियाँ, दिल्ली राजपाल एँड संज, 1981
37. याकोब्सन, रोमन	ग्रैमेटिकल पैरलेलिज्म एँड इट्स रशन पेसिट; लैंग्वेज 42, 1966
38. यादव, राजेन्द्र	एक दुनिया समानान्तर, दिल्ली अक्षर प्रकाशन, प्रथम संस्करण ।
39. यादव, राजेन्द्र	छोटे-छोटे ताजमहल, दिल्ली : राजपाल एँड संज, प्रथम संस्करण ।
40. राइसर, हनीस	'ऑन द डेवलपमेंट अव टेक्स्ट ग्रामर' करेंट ट्रेंड्ज इन टेक्स्ट लिंग्विस्टिक्स, संपा० वूल्फ-गैन ड्रेस्लर, न्यूयार्क : वाल्टर-डी ग्रूटर, 1978
41. रेणु, फणीश्वरनाथ	ठुमरी, दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 1959
42. रेणु, फणीश्वरनाथ	मैला आंचल, दिल्ली : राजकमल, प्रकाशन, पेपरबैक सस्करण, 1979
43. लुट्बाक, लियोनार्ड,	'मिक्सर्ड एँड यूनिफार्म प्रोज स्टाइल्ज इन नॉवेल, पर्सपेक्टिव ऑन फिक्शन, संपा० जेम्स एल० कैलरवुड ऐंड टालियर, लण्डन : आक्स-फोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1968
44. वर्मा, निर्मल	जलती झाड़ी, दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 1964
45. वर्मा, निर्मल	परिन्दे, दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 1984

46. वात्स्यायन, सच्चिदानंद (संपा०) — दिनमान, बम्बई, टाइम्स अव इण्डिया प्रकाशन, 23 जनवरी, 1972

47. वैद, कृष्ण बलदेव, — मेरा दुश्मन, दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण।

48. वूल्फ, वर्जीनिया, — कलेक्टिड एसेज, वाल्युम-2, लण्डन; चाटो ऐंड विंडस, 1967

49. 'शीतांशु', पाण्डेय शशिभूषण — 'अज्ञेय की कथाभाषा', अज्ञेय, संपा० विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1978

50. 'शीतांशु', पाण्डेय शशिभूषण — 'गोदान के बहाने प्रेमचंद की कथाभाषा की पहचान', कथाकार प्रेमचंद, संपा० रामदरश मिश्र, ज्ञानचन्द्र गुप्त, दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1982

51. 'शीतांशु', पाण्डेय शशिभूषण — 'अलग-अलग वैतरणी : कितनी माटी : कितना पानी' कल्पना, संपा० बदरी विशाल पित्ती, हैदराबाद : कल्पना प्रकाशन, वर्ष 1970।

52. शीतांशु पाण्डेय शशिभूषण — 'नयी कहानी की भाषा', कल्पना अतिथि संपा०, शिवप्रसाद सिंह, हैदराबाद : कल्पना प्रकाशन, नवलेखन विशेषांक पूर्वार्द्ध, अगस्त-अक्तूबर, *1969*

53. 'शीतांशु', पाण्डेय शशिभूषण — 'नयी कहानी की भाषा', ज्ञानोदय संपा० रमेश बक्षी, कलकत्ता : भारतीय ज्ञानपीठ, मई 1969

54. 'शीतांशु', पाण्डेय शशिभूषण — 'मैला आंचल : आंचलिकता की अप्रस्तुति और अप्रस्तुति की आंचलिकता', प्राधिकृत, सम्पादक रमेश कुंतल मेघ, अमृतसर : गुरु *नानकदेव विश्वविद्यालय, प्रवेशांक-1984*

55. श्रीवास्तव, ओंकारनाथ — काल सुन्दरी, दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण।

56. सर्मेलियन, लियोन — टेक्नीक्स अव फिक्शन राइटिंग, डॉबुलेड ऐंड कम्पनी, 1968

57. सर्मेलियन, लियोन — 'टेक्नीक्स अव फिक्शन राइटिंग', पर्सपेक्टिव आन फिक्शन, सम्पा० केल्डरवुड ऐंड टाइलियर, लंदन : आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1968

58. सहाय, शिवपूजन — 'तुलसी प्रयुक्त क्रियाएँ', 'परिषद् पत्रिका', पटना : बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, वर्ष 1, अंक 1, अप्रैल 1961

59. सिंह, त्रिभुवन — हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, वाराणसी : हिन्दी प्रचारक संस्थान, 1955

60. सिंह, शिवप्रसाद — मुरदा सराय, कलकत्ता : भारतीय ज्ञानपीठ, 1966

61. सिन्हा, सुरेश — कई आवाजों के बीच, इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन, 1968

62. हाकेट, सी० एफ० — 'इडियोलेक्ट, डायलेक्ट ऐंड लैंग्वेज', अ कोर्स इन माडर्न लिंग्विस्टिक्स, न्यू दिल्ली : आक्सफोर्ड ऐंड आई० बी० एच० पब्लिशिंग कम्पनी, 1970

□□